॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

इसी जन्म में
भगवद्-प्राप्ति

भाग - 6



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन
श्रीमुकुन्ददास अधिकारी
श्रीहरिपद दास
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण व अन्य चित्रों के लिए
Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506-29044, 01421-217059

प्रथम संस्करण-2000 प्रतियाँ
श्रीगुरुपूर्णिमा, 9 जुलाई 2017

मुद्रण-संयोजन एवं ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन-281121 - मोबाइल : 07500 987654

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 6

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी
श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

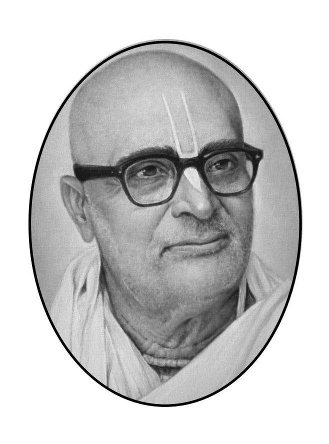
कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्धदास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।1।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मँझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न, इस संसार में।।2।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और भरा अभिमान है।।3।।
पाप बोझे से लदी, नैया भँवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।4।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दुःख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।5।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।6।।

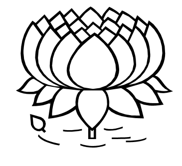
हे मेरे गुरुदेव करुणा सिन्धु करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।

***



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है



विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भाग– 6

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। ''**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**'' के छठे भाग का प्रथम संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं सभी को इसकी बधाई देता हूँ।

''**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**'' नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी–यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा-ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँच भागों के प्रकाशन का काम मेरे श्रीगुरुदेव, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की 108वीं आविर्भाव तिथि, उत्थान एकादशी (24 नवम्बर 2012) को पूरा हो गया था किन्तु इसके सभी भाग अलग–अलग प्रेसों में छपे थे। जो भी भाग छपता, वह कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता। भक्तों की माँग निरन्तर बढ़ रही थी और हमारे पास सभी भाग एक साथ

उपलब्ध नहीं थे। मेरी इच्छा थी कि इस ग्रंथ के पाँचों भाग एक ही जगह उपलब्ध हों। इन ग्रंथों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार हो इसलिये हमने श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन से संपर्क किया।

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन के संस्थापक व्रजविभूति श्रीश्यामदास (श्रीश्यामलालजी हकीम) की मुझ पर बड़ी कृपा रही। मैं जब भी वृन्दावन जाता था, उनके दर्शन जरूर करता था। श्रीश्यामलाल हकीम जी ने ग्रंथ सेवा का जो महान् कार्य किया है, उसके लिये आज पूरा वैष्णव समाज उनका ऋणी है। उनके द्वारा श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना सन् 1969 में हुई थी। आज श्रीहरिनाम प्रेस की अपनी एक अलग पहचान है। जिस काम को श्रद्धेय श्रीश्यामलाल हकीम जी ने शुरु किया था उसी महान् कार्य को उनके सुपुत्र दासाभास डा. गिरिराजकृष्ण एवं डा. भागवतकृष्ण नांगिया जी बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमने इनसे अपने मन की बात कही तो वे सहर्ष इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गये और अपना सौभाग्य माना।

'एक शिशु की विरह वेदना' 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के सभी भाग नियमित रूप से श्रीहरिनाम प्रेस में निरन्तर छप रहे हैं और उनका वितरण भी बहुत ही सुचारु रूप से वहाँ से ही चल रहा है।

अन्त में मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्रीगुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूँगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

प्रस्तावना

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

वर्तमान समय में अखिल विश्व इस 'हरे कृष्ण महामंत्र' के कीर्तन से आनन्दसागर में डुबकियाँ लगा रहा है। 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' नामक इस ग्रन्थ से नित्य 1 लाख, 2 लाख तथा 3 लाख हरिनाम का आस्वादन किया जा रहा है। इस महामंत्र के विषय में वेद, उपनिषद्, पुराण तथा संहिता में इसका प्रमाण पाया जाता है। इसकी पुष्टि करने हेतु तथा श्रद्धावान्, सौभाग्यवान पाठकों की हरिनाम के प्रति पूर्ण निष्ठा उत्पन्न होने हेतु इस ग्रन्थ में नाम-महिमा से सम्बन्धित अनेकों शास्त्रीय प्रमाणों को अर्थसहित प्रस्तुत किया गया है। इससे इस ग्रन्थ का विषय तथा लेखक के पत्रों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। इस ग्रन्थ के लेखक श्रीहरिनाम निष्ठ वैष्णव सन्त श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी अपने पत्रों में कई बार यह उल्लेख करते हैं कि, **'यह पत्र मैंने नहीं लिखे हैं, मेरे बाबा (भगवान् श्रीकृष्ण) ने मुझसे लिखवाए हैं।'**

श्रील अनिरुद्ध प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु और गुरु-शिष्य परम्परा षड्गोस्वामिवृन्द की गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय से जुड़े हुए एक अधिकृत रूपानुग वैष्णव सन्त हैं तथा गुरु-साधु-शास्त्र के अनुसार इनके दिव्य पत्रों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। साथ ही साथ ठाकुर जी (भगवान् श्रीकृष्ण) ने उनके पत्रों में उनसे यह भी लिखवाया है कि वे इस भौतिक जगत् के साधारण जीव नहीं है। उन्हें भगवान् ने हरिनाम ग्रहण कराने हेतु गोलोक धाम से इस धरती पर भेजा है। डेढ़ साल का शिशु तथा पोते के रूप में उनका भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध है। इसलिए यह ग्रन्थ स्वयं में ही एक प्रमाण है, इसे और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि, श्रील अनिरुद्ध प्रभु अपने पत्रों में बारम्बार यह

लिखते हैं कि, प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं आजमाकर देख लो! क्योंकि प्रभु जी स्वयं दार्शनिक स्वभाव के हैं, जब तक वह स्वयं किसी वस्तु विशेष को अनुभव नहीं करते, तब तक वह उसकी सत्यता स्वीकार नहीं करते।

लेखक का कहना है कि, **जो अति सुकृतिशाली सौभाग्यवान जीव होगा, केवल वह ही इस ग्रन्थ के रहस्य को समझ पायेगा। केवल उसे ही इस ग्रन्थ के अनुसार हरिनाम का पूर्ण आश्रय ग्रहण करने से अतिदुर्लभ कृष्णप्रेम की प्राप्ति हो जायेगी। तथा तुच्छ फल के रूप में उसके सांसारिक दुःख भी हल्के हो जायेंगे**, जैसा कि पद्मपुराण में वर्णन आता है कि,

नाम चिन्तामणिः कृष्णः चैतन्य रसविग्रहः।
पूर्ण शुद्धो नित्य मुक्त अभिन्नत्वात् नामनामिनो॥

अर्थात्, भगवान् का नाम तथा भगवान् में कोई भेद नहीं है, दोनों ही अभिन्न तत्व हैं। इसलिए हरिनाम से जो कुछ भी माँगोगे उसे देने में वह सर्वसमर्थ हैं। इस नाम में भगवान् का रूप, गुण, लीला, धाम तथा उनकी समस्त शक्तियाँ विद्यमान होने के कारण यह समस्त रसों से पूर्ण तथा आनन्दमय है। भगवान् के पूर्ण, शुद्ध, नित्य तथा मुक्त होने के कारण उनके नाम में भी वहीं लक्षण पाये जाते हैं, इसलिए इसका आश्रय लेने वाला सौभाग्यशाली जीव भी क्रमशः पूर्णत्व को, पवित्रता को, नित्य स्वरूप (दिव्य शरीर) को प्राप्त कर सदा-सदा के लिए इस दुःखमय संसार से मुक्त हो जाता है।

ग्रन्थकार का कहना है कि, 'नाम का आश्रय लेने वाले को कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। घर बैठे भगवान् मिल जाते हैं तथा समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति निश्चित है तथा मानसिक रूप से संसार की आसक्ति हटाकर वही आसक्ति भगवान् में लगाकर नित्य एक से तीन लाख हरिनाम करते समय भगवान् के प्रति तीव्र विरह उदय होने से

सम्बन्ध ज्ञान (स्वरूप ज्ञान) प्राप्त होकर इसी जन्म में गोलोक धाम की प्राप्ति निश्चित रूप से हो जायेगी।

ग्रन्थकार के इस भाव तथा उपदेश में तथा भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु की वाणी में यत्किंचित् भी अन्तर नहीं है। इसकी पुष्टि हेतु श्रीचैतन्यचरितामृत-मध्य लीला- 7.121-135 में उद्धृत निम्नलिखित घटना को हृदयंगम करें।

एक गाँव में कूर्म नाम का एक वैदिक ब्राह्मण था। उसने बड़े ही सत्कार तथा भक्ति से श्रीचैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया। यह ब्राह्मण महाप्रभु को अपने घर ले आया, उसने उनके चरणकमल धोये और उस जल को परिवार सहित ग्रहण किया। उस कूर्म ब्राह्मण ने महाप्रभु को बड़े ही स्नेह तथा आदर से सभी प्रकार का भोजन कराया। उसके बाद जो शेष बचा उसे परिवार के सारे सदस्यों सहित उसने खाया।

फिर उस ब्राह्मण ने प्रार्थना करनी शुरू की, "हे प्रभु, आपके जिन चरणकमलों का ध्यान ब्रह्माजी करते हैं, वे ही चरणकमल आज मेरे घर में पधारे हैं। हे प्रभु, मेरे महान् सौभाग्य की कोई सीमा नहीं रही। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आज मेरा परिवार, जन्म तथा मेरा धन सभी धन्य हो गये।" उस ब्राह्मण ने श्रीचैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की, "हे प्रभु, आप मुझपर कृपादृष्टि करें और मुझे अपने साथ चलने दें। मैं अब और अधिक समय तक भौतिक जीवन से उत्पन्न दुःख की लहरों को सहन नहीं कर सकता।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब फिर से ऐसा मत कहना। अच्छा यही होगा कि तुम घर पर रहो और सदैव कृष्ण-नाम का जप करो। हर एक को उपदेश दो कि वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करें। इस तरह गुरु बनो और इस देश के हर व्यक्ति का उद्धार करने का प्रयास करो।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कूर्म ब्राह्मण को यह भी उपदेश दिया, "यदि तुम इस उपदेश का पालन करोगे, तो तुम्हारा गृहस्थ जीवन तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं बनेगा। यदि तुम इन नियमों का पालन करोगे, तो पुनः मेरा सानिध्य प्राप्त करोगे।

दक्षिण भारत की यात्रा से जगन्नाथपुरी लौट आने तक महाप्रभु सबको इसी प्रकार प्रचार करते रहे।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु का सबको यह निवेदन है कि, इस ग्रन्थ को एक शिक्षागुरु के रूप में स्वीकार करें। शुद्ध धन की कमाई के द्वारा अपना स्वधर्म निभाते हुए तुलसी माला पर नित्य कम से कम एक लाख हरिनाम जप करें। तुलसी पूजन, नित्य तीन प्रार्थना, वैष्णव प्रार्थना, भगवान् श्रीराधा– कृष्ण के चित्र की पूजा करें। भगवान् को भोग लगाकर फिर स्वयं प्रसाद पाना, एकादशी व्रत पालन, द्वादश–तिलक धारण इत्यादि वैष्णव सदाचार का पालन करें। कपटवृत्ति परित्याग कर भगवद् प्राप्ति की उत्कट लालसा हृदय में रखने से सद्गुरु–वैष्णव तथा भगवान् प्रसन्न होकर साधक के पास कृपा करने हेतु स्वयं दौड़े चले आयेंगे। इस कपट भरे कलियुग में भगवान् को ढूँढ़ने के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।

इस ग्रन्थ के पहले 4 भागों में धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष का तथा 5 वें भाग में 'प्रेम' इस विषय का वर्णन है। छठे भाग में विरहप्राप्ति तथा 7 वे भाग में अन्तिम सोपान 'सम्बन्ध ज्ञान' की प्राप्ति का वर्णन होगा, जिसे प्राप्त होने के पश्चात् और कुछ प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। लेखक का कहना है, 'दुनिया के सभी कथा–प्रवचनकार बहुत सारी बातों का वर्णन करते रहते हैं, लेकिन भगवान् के पास जाने का सीधा रास्ता कोई नहीं बताता। नाम ही साध्य तथा साधन तत्व है। इसका आश्रय किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए यह कोई नहीं बताता।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' ग्रन्थ में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन '**हरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग**' इस लेख में स्पष्ट किया गया है।

यह मार्ग श्रील अनिरुद्ध प्रभु को पाँचों भागों के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के बाद दि. 24 नवम्बर 2013 को स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया था।

तब से श्रील अनिरुद्ध प्रभु इसी मार्गानुसार तथा क्रमानुसार हरिनाम करते हैं और दूसरों को भी इसीप्रकार से हरिनाम करने की प्रार्थना करते हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह महामंत्र कोई साधारण शब्दों की रचना नहीं बल्कि शाश्वत मंत्र है। यह उस स्थान से इस धरती पर प्रकट हुआ है, जहाँ पर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अन्तरंगा आह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधारानी तथा अपने अनन्त पार्षदों के साथ मधुररस का तथा अन्य रसों का नित्य आस्वादन करते हैं। शुद्ध-भक्त उस स्थान को 'गोलोक धाम' के नाम से सम्बोधित करते हैं।

गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।

गोलोक धाम का सर्वोच्च विषय है- **प्रेम**! इस प्रेमधन को वितरित करने के लिए साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधा का महाभाव धारण कर लगभग 530 साल पूर्व पश्चिम बंगाल में स्थित नवद्वीप धाम में शचीमाता के गर्भ से प्रकट हुए। और उन्होंने हरिनाम संकीर्तन यज्ञ के रूप में एक दिव्य आन्दोलन की शुरुआत कर इस प्रेम को '**हरे कृष्ण महामंत्र**' के रूप में प्रचुर मात्रा में बिना किसी जाति-भेद तथा वर्णभेद के वितरण किया।

यजुर्वेदीय-कलिसन्तरणोपनिषद् में भी 'महामन्त्र' का स्वरूप और माहात्म्य इस प्रकार बतलाया गया है—

हरिः ॐ।। द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम, कथं भगवन्! गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छ्रुणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नाराणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः

पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति ? स होवाच हिरण्यगर्भः—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते।। इति षोडशकलावृतस्य जीवस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परंब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति। पुनर्नारदः पप्रच्छ। भगवन्! कोऽस्य विधिरिति ? स होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति।

द्वापर के अन्त में श्रीनारद श्रीब्रह्मा के निकट गये और प्रणाम करके बोले कि, 'हे भगवन्! भूतल पर भ्रमण करता हुआ मैं कलि–काल को किस प्रकार पार कर सकूँगा ?'

श्रीब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। सभी वेदों का जो गोपनीय रहस्य है उसे सुनो, जिसके द्वारा तुम कलिरूप–संसार से अनायास ही तर जाओगे। आदिपुरुष भगवान् श्रीमन् नारायण (कृष्ण) के नामोच्चारणमात्र से ही, कलियुग विशेष रूप से काँपने लगता है।

श्रीनारद ने पुनः पूछा कि वह नाम कौन–सा है ? उसका स्वरूप क्या है ?

इसके उत्तर में श्रीब्रह्मा ने कहा कि—**"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"** इस प्रकार सोलह नामोंवाला यह जो 'महामन्त्र' है, यह कलिके कल्मषों को सम्पूर्ण रूप से विनष्ट करने वाला है। सभी वेदों में इससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं दीखता है। यह मन्त्र षोडशकलाओं से आवृत अर्थात् पञ्चभूत एवं ग्यारह इन्द्रियों के आवरण से युक्त जीव के आवरण को विनष्ट करने वाला है। उसके पश्चात् तो जीव के सामने, परब्रह्म उसी प्रकार से प्रकाशित हो जाते हैं जैसे बादलों के विनष्ट होने पर सूर्य की किरणों का समुदाय प्रकाशित हो जाता है।

श्रीनारद ने पुनः पूछा कि भगवन्! इस 'महामन्त्र' के जप की विधि क्या है ?

श्रीब्रह्मा ने कहा—इसकी कोई विधि नहीं है। पवित्र अथवा अपवित्र किसी भी अवस्था में कोई भी व्यक्ति, इस 'महामन्त्र' का स्पष्ट उच्चारण करता हुआ, पाँचों प्रकार की मुक्तियों को आनुषंगिक रूप से प्राप्त कर लेता है।

केवल इतना ही नहीं; किन्तु मुख्य रूप से तो पञ्चम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेमपर्यन्त प्राप्त कर लेता है।

(इस विषय में श्रीचैतन्यचरितामृत आ० 7/83-86; म० 25/147, 192; अ० 3/177; अ० 7/104; अ० 20/11 भी द्रष्टव्य है)।

अन्धकार की तुलना शैतान से की जाती है तथा प्रकाश की तुलना भगवान् से। विश्वविख्यात जर्मन वैज्ञानिक आइन्स्टाईन जब पाठशाला में पढ़ते थे तब एक बार उनके अध्यापक ने कहा कि, इस दुनिया में भगवान् का अस्तित्व नहीं है, केवल शैतान का ही अस्तित्व है, इसलिए इस जगत में दुःख तथा क्लेश है। तब यह सुनकर आइन्स्टाईन, जो कि उस समय एक छोटा सा, नन्हा सा बच्चा था उठ खड़ा हुआ और उसने अपने अध्यापक से सवाल पूछा–

'सर! क्या इस जगत में, अन्धकार का अस्तित्व है ?

अध्यापक ने कहा, 'हाँ, है!' तब आइन्स्टाईन ने जबाव दिया–

'गलत! केवल प्रकाश का ही अस्तित्व है। परन्तु, जब प्रकाश का अभाव होता है, तो अन्धकार अनुभव होता है, अन्धकार का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार हमारे हृदय में जब भगवद्प्रेम का अभाव होता है, उसी का नाम शैतान, अज्ञान तथा अन्धकार है, जिसके कारण हम दुःख तथा क्लेश अनुभव करते हैं।'

चैतन्यचरितामृत मध्यलीला श्लोक 22.31 में भी कहा गया है कि,

कृष्ण-सूर्य-सम माया हय अन्धकार।
याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार।।

भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं, तथा माया अन्धकार के समान है। जहाँ कृष्ण उपस्थित होते हैं, वहाँ माया का कोई अस्तित्व नहीं होता।

इसलिए इस घोर कलियुग में मायारूपी पिशाचिनी की गोद में निश्चिन्त होकर अज्ञानता से सोये हुए बद्ध जीवों को जगाने के लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए।

जीव जागो, जीव जागो, गोराचाँद बले।
कत निद्रा जाओ माया-पिशाचीर कोले।।
भजिबो बलिया एसे संसार भीतरे।
भुलिया रहिले तुमि अविद्यार भरे।।
तोमारे लइते आमि हइनु अवतार।
आमि बिना बन्धु आर के आछे तोमार।।
एनेछि औषधि माया नाशिबार लागि।
हरिनाम महामंत्र लाओ तुमि मागि।।
भकतिविनोद प्रभु चरणे पड़िया।
सेइ हरिनाम-मंत्र लइल मागिया।।

श्रीगौरसुन्दर कह रहे हैं—अरे जीव! जाग, जाग, और कितनी देर तक मायारूपी पिशाची की गोद में सोयेगा। तू इस जगत में **"मैं हरिनाम करूँगा"**, ऐसी प्रतिज्ञा करके आया था। परन्तु जगत् में आकर अविद्या (माया) में फँसकर तू सब भूल गया है। अतः तुझे लेने के लिए मैं स्वयं ही इस जगत में अवतरित हुआ हूँ। अब तू स्वयं विचार कर कि मेरे अतिरिक्त तेरा बन्धु और कौन है ? मैं माया का विनाश करने वाली औषधि "हरिनाम महामंत्र" लेकर आया हूँ। अतः तुम मुझसे वह महामंत्र मांग लो। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी ने भी श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों में गिरकर वह हरिनाम मंत्र मांग लिया है।

परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ वैष्णव सन्त श्रीमद् अनिरुद्ध दास अधिकारी जी भी अब इस धरती पर प्रकट होकर इस प्रस्तुत ग्रन्थ के रूप में हमसे भी यही माँग कर रहे हैं कि,

हरिनाम करो! हरिनाम करो! हरिनाम करो!

हरिनाम से क्या नहीं हो सकता? असम्भव भी सम्भव हो जाता है। समस्त इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, इस अमूल्य रत्न से भगवान् भी खरीदे जा सकते हैं।

श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु नाम की महिमा बताने के लिए अक्सर यह भजन गाते हैं–

हरि से बड़ा हरि का नाम
अन्त में निकला ये परिणाम।
हरि से बड़ा हरि का नाम
हरि ने तारे भक्त महान।
और नाम ने तारे अनन्त जहाँन।।
हरि से बड़ा हरि का नाम, प्रभु से बड़ा प्रभु का नाम।
सुमिरो नाम रूप बिन देखे, कौड़ी लगे न दाम।।
नाम के बाँधे खिंच आयेंगे, आखिर एक दिन श्याम।
द्रौपदी ने जब नाम पुकारा, झट आ गए घनश्याम।
साड़ी खैंचत हारा दुःशासन, साड़ी बढ़ाई श्याम।
जल डूबत गजराज पुकारो, आये आधे नाम।।
नामी को चिन्ता रहती है, नाम न हो बदनाम।
जिस सागर को लांघ सके ना, बिना पुलके राम।।
कूद पाए हनुमान उसी को, लेके हरि का नाम।
वो दिल वाले डूब जायेंगे, जिनमें नहीं है नाम।।
वो पत्थर भी तैरेंगे जिन पर, लिखा राम का नाम।
हरि से बड़ा हरि का नाम, प्रभु से बड़ा प्रभु का नाम।।

इससे बड़ी हरिनाम की और क्या महिमा हो सकती है ?

जो हरिनाम का रहस्य जानता है, वह कृष्ण को जानता है और जो कृष्ण को जानता है वह सबकुछ जानता है।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

(श्रीभगवद्गीता 15.15)

यस्मिन् विज्ञाने सर्वमिदं विज्ञाने भवति।

(मुण्डकोपनिषद 1.3)

इस प्रमाण के अनुसार– यदि कोई भगवान् श्रीकृष्ण को जान लेता है, तो वह सबकुछ जान जाता है।

इस प्रकार 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' नामक इस ग्रन्थ के लेखक श्री श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु जी समस्त शास्त्रों के ज्ञाता तथा भक्तिशास्त्र में निपुण हैं। तथा उन्हें एक साधारण गाँव में रहने वाले एक साधारण मनुष्य समझने की तथा उनके पत्रों में दोष देखने की भूल न करते हुए इस ग्रन्थ की विषयवस्तु को गम्भीरता से ग्रहण करें।

अतः पाठकगणों! परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्री श्रीमद् अनिरुद्ध अधिकारी जी द्वारा लिखित ग्रन्थ 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' उन भक्तों के लिए नहीं प्रकाशित किया गया है जिनकी नाम में निष्ठा नहीं है। "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" में छापे हुए सभी पत्र सर्वसाधारण के लिए लिखे ही नहीं गये हैं। ये पत्र तो उन्होंने अपने शिक्षागुरुदेव तथा श्रीहरिनाम– निष्ठ, त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज को लिखे हैं और इसे गोपनीय रखने की प्रार्थना भी की है कि जिस साधक की हरिनाम में निष्ठा नहीं है, श्रद्धा नहीं है, विश्वास नहीं है, उनके लिए इन पत्रों का कोई औचित्य नहीं है। वे इन पत्रों के मर्म को नहीं जानने के कारण वैष्णव अपराध तथा नामापराध करेंगे। इसलिए श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ने इन्हें गोपनीय रखने की प्रार्थना की और कई पत्रों में यह भी लिखा है कि जो इस वाणी को काल्पनिक या मनगढंत समझेगा वह घोर अपराध का भागीदार होगा। परमदयालु,

परम उदार सभी का हित चाहने वाले परमपूज्य श्रीमद् निष्किंचन महाराज जी ने सभी के कल्याण के लिए इन पत्रों को प्रकाशित करने का निर्णय लिया ताकि साधकगण श्रीहरिनाम के महत्व को समझें और निष्ठा पूर्वक हरिनाम करके अपना जीवन सफल करें!

9 अक्टूबर 2016 को मैं वृन्दावन पहुँचा। 26 अक्टूबर 2016 को मेरा वापसी का टिकट था। 15 अक्टूबर को श्रीमान हरिपद प्रभु जी मेरे घर वृन्दावन में पधारे। तब उन्होंने मुझे कहा कि आप श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु के शिष्य हो तथा आप उनकी वाणी का प्रचार करना चाहते हो, इसलिए मैं आपको बड़े विश्वास और प्रेम से यह सेवा भेंट के रूप में सौंप रहा हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने मुझे गुरुदेव के उन बचे हुए पत्रों को सौंप दिया, जो 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' के पहले पाँच भागों में नहीं छपे थे। मैं उन पत्रों को देखकर अवाक् रह गया।

आगे उन्होंने कहा- "ये पत्र आपको छपवाने हैं, ऐसी ठाकुर जी की इच्छा है।"

फिर मैंने वह सारे पत्र देखने शुरू किये। वह सब छायांकित पत्र थे। उसमें से कौन से पत्र छपे हुए हैं, उन सारे पत्रों को मैंने अलग किया, इसमें कुछ दिन व्यतीत हुए क्योंकि Photo State के अक्षर समझ में नहीं आ रहे थे। फिर बचे हुए पत्रों के पन्ने अलग-अलग लगे हुए थे, उन्हें ढूँढ़कर उनके सम्बन्धित पत्रों से जोड़ा। इसमें बहुत समय व्यतीत हुआ।

बीच-बीच में मैं श्रीहरिनाम प्रेस के संचालक श्रीभागवतकृष्ण जी से परामर्श लेता रहा। उनका मुझे पहले से ही बड़ा प्रेमपूर्ण सहयोग रहा है। उन्होंने मुझे सलाह दी कि पहले इन पत्रों के अलग हुए पन्नों को ठीक से जोड़ लो फिर उन्हें अपने लेख में लिखना शुरू करो।

11 दिसम्बर 2016 को श्रीभागवतकृष्ण जी और मैं गुरुदेव के घर छींड की ढाणी उन्हें मिलने हेतु गये। तब श्रीभागवतकृष्ण जी ने श्रीगुरुदेव से कहा कि, अब इन पत्रों का सम्पादन कार्य मुकुन्द करेगा। और यह सारे पत्र 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' ग्रन्थ के 6 वें तथा 7 वें भाग के रूप में प्रकाशित होंगे। तब श्रीगुरुदेव ने इसकी सहर्ष अनुमति दे दी।

फिर मुझे आदेश दिया कि 17 दिसम्बर 2016 से इस सेवा का शुभारम्भ करो, क्योंकि उस दिन **श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद** का तिरोभाव महोत्सव दिवस है, अतः यह अतिपवित्र दिवस है। इस आदेश के पश्चात् ग्रन्थ छपने तक श्रीगुरुदेव की अनुमति से मुझे वृन्दावन धाम वास का सौभाग्य प्राप्त हो पाया।

फिर 17 दिसम्बर 2016 से मैंने श्रीगुरुदेव के पत्रों का पुनर्लेखन करने की सेवा आरम्भ की। पहले-पहले मुझे वह पत्र समझ में नहीं आ रहे थे, परन्तु श्रीगुरुदेव की कृपा, श्रीभागवतकृष्ण जी के विशेष सहयोग से मैं इन पत्रों को समझ पाया और बीच-बीच में श्रीमान् हरिपद प्रभु जी का मार्गदर्शन मुझे मिलता रहा, परिणाम स्वरूप 26 अप्रैल 2017 को सारे पत्र लिख के पूरे हो गए।

उसके बाद श्रीभागवतकृष्ण जी ने बड़ी तीव्रगति से अथक परिश्रम करके इस ग्रन्थ को मूर्त स्वरूप प्रदान करने में बहुत बड़ा योगदान दिया। साथ ही साथ उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं के वर्णन द्वारा तत्त्वज्ञान तथा भक्तिरस का संगम करके गागर में सागर भरने की भाँति '**श्रीश्री निताई-गौर चालीसा**' को व्याख्या सहित प्रस्तुत कर समस्त गौड़ीय वैष्णव परम्परा तथा श्रीश्रीनिताई-गौर प्रेमी भक्तों को लाभान्वित किया है। मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर उन्होंने इस ग्रन्थ के शुरुआत में उसे समाविष्ट कर पाठक वर्ग को बड़ी भेंट प्रदान की है। अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

मुझ जैसे अज्ञ के द्वारा सम्पादन करने से ग्रन्थ में कुछ त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। श्रद्धालु पाठकगण उसे संशोधन कर कृपया हमें सूचित करें, जिससे कि अगले संस्करण में हम उन त्रुटियों का संशोधन कर सकें।

मैं श्रीगुरुदेव (श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु), श्रीमान् भागवतकृष्ण जी तथा श्रीमान् हरिपद प्रभु इनके चरणों की वन्दना करता हुआ कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके दयाभाव के कारण यह ग्रन्थ प्रकाशित हो पाया, जिसका लाभ समस्त विश्व उठायेगा!

अन्त में श्रीहरि–गुरु–वैष्णव के चरणों में मेरी सकातर प्रार्थना है कि, जिन भक्त, साधक तथा हितचिन्तकों ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में हमें सहयोग दिया है उनपर प्रचुर कृपावर्षण करें जिससे उन्हें **शुद्ध हरिनाम** की प्राप्ति हो जाये।

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी

–मुकुन्द दास





व्रज का खेल कुलेल-मगन-मन।
नदिया का रज-लुण्ठित-तन।।
व्रज का खेल मुरलिका वादन।
नदिया का हरिनाम भजन।।
व्रज का खेल कुसुम वन विहरण।
नदिया का दृग-जल-वर्षण।।

व्रज में कृष्ण का खेल है ग्वाल-बालों के साथ ऊधम मचाना पर नदिया में श्रीगौर का तन रज में लोट पोट होता है। व्रज में कृष्ण मुरली बजाकर खेल करते हैं पर नदिया में श्रीगौर हरिनाम का भजन करते हैं। व्रज में कृष्ण बाग-बगीचों में विहार करते हैं पर नदिया में श्रीगौर के नेत्रों से श्रीकृष्ण प्रेम के अश्रु बहते रहते हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, **''इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति'' भाग छह का प्रथम संस्करण** सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' नामक ग्रन्थ श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के प्राण हैं। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु-निष्ठा, श्रीनाम-निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा-वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा-सदा के लिये श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? – इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन-निष्ठा, नामनिष्ठा तथा बिना गृहत्याग किये केवल हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन-मयूर नाच उठेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' ग्रन्थ में श्री अनिरुद्ध प्रभु के संक्षिप्त जीवन-चरित्र के साथ-साथ उनके श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **5000 प्रतियाँ**
दूसरा संस्करण, श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2012
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **1000 प्रतियाँ**
श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगोपाष्टमी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1–2) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2013

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3–4) 2000 प्रतियाँ
श्रीगौर पूर्णिमा, 2014
एक शिशु की विरह–वेदना 1000 प्रतियाँ
शरद पूर्णिमा, 2014
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन 3000 प्रतियाँ
शरद पूर्णिमा, 2014
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) 1000 प्रतियाँ
श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 1 से 4) 2000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी, 2016
अहैतुकी कृपा 2000 प्रतियाँ
उत्थान एकादशी, 2016
अनन्त कृपा (पूर्ण रंगीन) 3000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी, 2017
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 6) 2000 प्रतियाँ
श्रीगुरुपूर्णिमा, 2017

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से विगत वर्षों में तेतीस हजार (33,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग तीस हजार (30,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कॅनडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, वेबसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुँच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

कार्तिक मास, 2012 में श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने 12 दिन तक श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) के पावन स्थल में सैकड़ों भक्तों को श्रीहरिनाम

की महिमा सुनाई जिससे भक्तों की नाम–संख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। कई भक्तों को तो अप्रत्यक्ष (indirect) रुप से दर्शन भी हुये हैं।

इन तेतीस हजार (33,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्रीश्रीराधागोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे–ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठको! इन पत्रों में कई बातों को बार–बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें।

अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रन्थों को बार–बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्णप्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

'**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति**' के इस छठे भाग का सम्पादन मुख्य रूप से, श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी के शिष्य श्रीमुकुन्ददास ने किया है। उन्होंने बड़ी निष्ठा और एकाग्रता से प्रभु जी के पत्रों के विशाल संग्रह में से चुनकर इन्हें इस भाग में बड़े परिश्रम से संगृहीत किया है और डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया के सहयोग से इसे मूर्त रूप प्रदान किया है। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्रीपादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुऐ, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णव दासानुदास

–हरिपद दास



अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‍यो वैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ीं सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधै जाके पाँव।
स्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै।
गौरकृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै।।

सर्वव्यापक – सर्वज्ञ
सर्वान्तर्यामी – सर्वशक्तिमान

OMNIPRESENT • OMNIFICENT • OMNISCIENT • OMNIPOTENT

भगवान् सर्वव्यापी होने के कारण यहाँ पर भी उपस्थित हैं।
हर समय होने के कारण इस वक्त में भी उपस्थित हैं।
सबके हृदय में होने के कारण हमारे हृदय में भी हैं।
और सबके होने के कारण हमारे भी हैं।
इसलिए भगवान् के यहाँ पर उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है।
इस वक्त उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए भविष्य की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।
हमारे अन्दर होने के कारण उन्हें बाहर कहीं भी ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है
आवश्यकता है तो सिर्फ और सिर्फ हरिनाम के बल से उनका साक्षात्कार करने की।

इस भाव से हरिनाम जपोगे तो
प्रत्यक्ष रूप में भगवान् को अपने पास में पाओगे!



श्रीसूरदास जी भजन कर रहे हैं और श्रीकृष्ण उसे सुन रहे हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

भगवान् के साक्षात् दर्शन

परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास जी अधिकारी (प्रभुजी) ने 13 मार्च से 30 मार्च 2013 तक ब्रज में वास किया। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन में चार दिन तक श्रीहरिनाम की महिमा सुनाकर 17 मार्च को उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में जाने का निश्चय किया। श्रीराधाकुण्ड पहुँचते ही उन्होंने श्रीराधाकुण्ड का दर्शन किया।

अगले दिन 18 मार्च, 2013 को पूज्यपाद श्रीविष्णुदैवत स्वामी, श्रीदाऊदयाल दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्राणेश्वरी दासी, जयपुर के श्रीरमेश गुप्ता व उनकी पत्नी डा. कनिका, सुश्री रसमंजरी देवी एवं श्रीहरिपददास जी के साथ श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी चन्द्र सरोवर गये। वहाँ पर महात्मा सूरदास की समाधि व भजनकुटीर के दर्शन किये। ज्यों ही सभी भक्त भजनकुटीर के द्वार पर खड़े दर्शन कर रहे थे तभी श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुये। उन्होंने अपने साथ आये सभी भक्तों को दर्शन करने के लिये कहा, पर उन सबको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हुए। अब तो श्रीअनिरुद्धप्रभु जी भावावस्था में चले गये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे सभी भक्तों को भी दर्शन दें।

देखते ही देखते भजनकुटीर में दीवार पर टँगे हुये सफेद रंग के परदे पर भगवान् श्रीकृष्ण की आकृति अंकित हो गई और सभी भक्तों ने उसके दर्शन किये और गद्गद् हो गये। यह सब श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की कृपा से ही हो सका। यह अप्रत्यक्ष दर्शन था जो भक्तों को हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण ● जय महात्मा सूरदास।।

श्रीहरिनाम

आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

1. रसना मेरी अति दुर्भागिनी, कटु वाचिनी और पापमयी।
अब-अवगुण बिसराओ इसके, आ जाओ प्रभु आ जाओ।।

2. कण्ठ मेरा अति कर्कष वाणी, नाम मधुरिमा नहीं जानी।
अपनी मधुरता आप बिखेरो, नाम-सुधा-रस बरसाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

3. चित्त मेरा अति मूल मलीना, अंधकूप सम सब दुःखदीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अंतर ज्योति जला जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

4. तन-मन में और श्वांस-श्वांस में, रोम-रोम में बस जाओ।
रग-रग में झनकार उठे प्रभु अंतर बीन बजा जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

5. पुत्र की जीवन नैया के खवैया, भव डूबत को पार लगैया।
जीवन नैया पार लगाने, आ जाओ प्रभु आ जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

इस ग्रंथ के लेखक
परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

प्रस्तुति : श्री हरिपददास अधिकारी

प्रणाम मंत्र

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे।
श्रीहरिगुरु-वैष्णवप्रियमूर्तिं, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 87 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्ध प्रभु आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्-पूर्णिमा (रास-पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी सन्त स्वरूप थे, को अवलम्बन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म-स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्रीजय सिंह शेखावत हुये। गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस

वक्त आपकी उम्र लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधा–गोविन्ददेव जी के श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुन्दर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबन्धकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों सन्त–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे ? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असन्तुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना सम्भव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्ददेव जी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करताल इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊँचे, लम्बे कद एवं अलौकिक सौन्दर्य वाले संन्यासी कीर्तन कर रहे थे। श्री श्रीराधा–गोविन्द जी के मन्दिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहे थे और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहे थे। ''ये संन्यासी कौन हैं ? ये रो क्यों रहे हैं ?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

''यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही मुझे भगवान् से मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''–ये सारे भाव श्रीअनिरुद्ध प्रभु के हृदय में हिलोरें लेने लगे।

श्रीअनिरुद्ध प्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मन्दिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्तिदयितमाधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम ?''–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

23 नवम्बर, 1952 को श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र (गोपाल मंत्र) सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र (गोपाल मंत्र) जप कर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधा कृष्ण जी के कुंजों में झाड़ू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का (**हरे कृष्ण महामंत्र का**) ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्ति से कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुए हो गया था, परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्त हों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक-एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति-अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया - रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन-काल बहुत बढ़िया बीता। सरकारी नौकरी के साथ-साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। अपनी नेक-कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये (उस जमाने के) श्रील गुरुदेव को भी भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह-सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी-

"While Chanting Harinam Sweetly, Listen by ears."

यह नाम-संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, सन् 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप

से तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक, अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप अकेले ही उनके शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने स्वेच्छानिवृत्ति (Voluntary Retirement) लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। इनके–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के तत्कालीन आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गाँव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गाँव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के

आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहाँ के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतों के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

''अनिरुद्ध ! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बाँटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग–राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो,

मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी एक अनुभूति-प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों-शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिह्नों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।





क्लीं का अर्थ

"क्लीं"– यह कामबीज है क, ल, ईं, इन अक्षरों से "क्लीं" निष्पन्न होता है। बृहद् गौतमीय तन्त्र में कहा गया है–

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ई-कारः प्रकृती राधा नित्य-वृन्दावनेश्वरी।।
लश्चानन्दात्मकं प्रेमसुखं तयोश्च कीर्तितम्।
चुम्बनानन्दमाधुर्यं नादविन्दुः समीरितः।।

'क'-कार का अर्थ है– सच्चिदानन्द– विग्रह परमपुरुष श्रीकृष्ण। 'ई'– कार का अर्थ है– परमाप्रकृति (सर्व प्रेयसी–शिरोमणि, सर्व शक्ति–वरीयसी) नित्य वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा। तथा 'ल'-कार का अर्थ–श्रीराधाकृष्ण का आनन्दात्मक प्रेम सुख है एवं नाद बिन्दु का अर्थ है– श्रीश्रीराधाकृष्ण का परस्पर चुम्बनानन्द माधुर्य। इससे स्पष्ट है कि "क्लीं"–काम बीज लीलाविलसित श्रीश्रीराधाकृष्ण के परम मधुर युगल स्वरूप को ही सूचित करता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुति : श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्रीरूपगोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म-स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद्-भक्तिदयित माधव महाराज नाम वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणा-वरुणालय-स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु-देव-भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु-प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म-स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी-गुरुदेव को नमस्कार है।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त

सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्ण-चैतन्य-आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन-पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप-लावण्य युक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृभक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र-ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते-करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी

दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ आकाशवाणी हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में आपने अपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्ति संगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्तसेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्‌भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था-भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुए श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा-

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोपीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु-निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थिति में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख-दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर

(आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की भक्ति मती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम जगन्नाथ पुरी में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

प्रभुपाद जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुए हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव, श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इसमें किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं है, बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

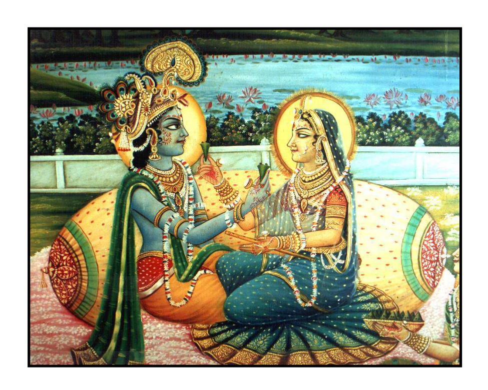
–Srila Prabhupada

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

नित्य प्रार्थना

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग महाराज को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो



मिनट का समय लगता है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आये और मेरे अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।''

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण-कण तथा प्राणिमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

● तीनों प्रार्थनाओं के अन्त में 'भूल मत करना' यह वाक्य इसलिए कहा गया है, क्योंकि हम भूल सकते हैं, लेकिन भगवान् कभी नहीं भूलते। इसप्रकार 'भूल मत करना' इस सम्बोधन से हमने भगवान् को बाँध लिया। अब आगे वह भगवान् की जिम्मेदारी बन गयी और हम निश्चिन्त हो गए। इसलिए भगवान् को इस प्रार्थना के अनुसार बाध्य होकर हमारे जीवन में बदलाव लाकर हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। और हमें **इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति हो जायेगी।**

● **नित्य प्रार्थनाओं के साथ हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करना परमावश्यक है।**

नित्य प्रार्थनाओं का भगवद्गीता में उल्लिखित शास्त्रीय प्रमाण

– पहली प्रार्थना –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(८.६)

भाषांतर : हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता है, मृत्यु के पश्चात् वह उस-उस भाव के अनुसार निश्चित रूप से पुनः शरीर प्राप्त करता है।

तात्पर्य : महाराज भरत ने मृत्यु के समय हिरन का चिन्तन किया, अतः अगले जन्म में उन्हें हिरण का शरीर प्राप्त हुआ। इसलिए मृत्यु के समय में दूसरे विषयों का स्मरण न हो, केवल भगवान् का ही स्मरण हो।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(८.५)

भाषांतर : और जीवन के अंतिम समय में जो केवल मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करते हैं, वे तुरन्त ही मेरे भाव को प्राप्त होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तात्पर्य : अतः मनुष्य को निरन्तर हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ इस महामंत्र का जप करना चाहिए ताकि मृत्यु के समय इसके उच्चारण मात्र से ही भगवद्प्राप्ति हो जाये।

- पहली प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्कृपा से इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाएगी।

– दूसरी प्रार्थना –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9.27)

भाषांतर : हे कौन्तेय! तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ भोजन करते हो, जो कुछ अर्पित करते हो या दान देते हो तथा जो भी तपस्या करते हो, उन सबको मुझे समर्पित करते हुए करो।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ (9.28)

भाषांतर : इस प्रकार तुम शुभ तथा अशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त हो सकोगे तथा इस कर्मफलत्यागरूप योग में अपने चित्त को स्थिर करके तुम मुक्त होकर मेरे पास आओगे।

उदाहरण : अर्जुन क्षत्रिय तथा गृहस्थ होते हुए भी उसने भगवान् को प्रसन्न किया।

● दूसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्भावना से युक्त कर्म हो जायेगा।

– तीसरी प्रार्थना –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (6.29)

भाषांतर : वास्तविक योगी समस्त जीवों में मुझको तथा मुझमें सबको देखता है। निस्सन्देह स्वरूपसिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत्र देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (6.30)

भाषांतर : जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबकुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है।

● तीसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही शुद्ध भक्ति, शुद्ध नाम तथा भगवद्दर्शन प्राप्त होंगे।

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति



जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियाँ हैं, वे गोपियाँ हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ? अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की अमर माँ है। वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

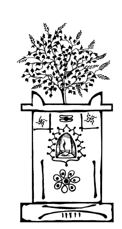
जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। फिर पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला–झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जप करने के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

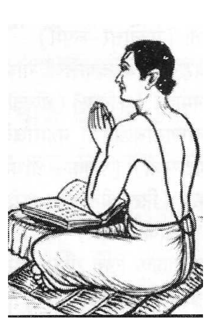
यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।





वैष्णव प्रार्थना !

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन



प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरूप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी। नित्य कम से कम 11 बार यह प्रार्थना बोलने से समस्त प्रकार की बाधाओं से व अपराधों से मुक्त होकर भक्ति में शीघ्र उन्नति होगी।

ग्रंथकार की प्रार्थना.....



हे मेरे गुरुदेव! हे मेरे प्राणनाथ!
हे गौर हरि!

आप कहाँ हो ?

कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ ?
आपके चरणारविंद!

हे हरिदास!

नाम की भूख जगा दो मन को,

नाम का अमृत पिला दो हम को,

तुम सा कोई नामनिष्ठ नहीं है,

नाम का रस पिला दो हमको,

अलमस्त रहें हम, नाम के बल पर,

ऐसी कृपा करो, न टालो कल पर।

हे गुरुदेव! हे पतितपावन! हे भक्तवत्सल गौरहरि! हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आपका दासानुदास, नराधम, अधमाधम, अनिरुद्धदास, आपके श्रीचरणों में बैठकर रात-दिन आपके वियोग में रोता रहता है। आपकी कृपा से, आपके आदेश से, जिस दिन से आपका यह दास श्रीहरिनाम की महिमा लिख रहा है, उसी दिन से वह रो रहा है। आप जो कुछ करवाते हो, वही करता है। हे नाथ! आप इच्छामय हो। आपकी जो इच्छा होगी, वही होगा। इस जगत का उद्धार कैसे होगा, यह आप भली भाँति जानते हो। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आपकी लीला परम स्वतंत्र है। आप जो चाहोगे, निश्चयपूर्वक वही होगा। फिर भी आपसे मेरा अनुरोध है कि आप

मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करना जिसे प्राप्त करके मैं अपने मन का भाव सब भक्तों के सामने खोलकर रख सकूँ।

हे मेरे प्राणनाथ! हरिनाम करते-करते आपके नाम की महिमा लिखते-लिखते मेरा कठोर हृदय द्रवित हो गया है। मेरे दोनों नेत्रों से अविरल, अश्रुधारा बहती रहती है, कण्ठ-स्वर अवरुद्ध हो जाता है। हे प्राणनाथ! मेरे रोने का अंत नहीं है और आपकी कृपा का भी अंत नहीं है। आपका अभागा अनिरुद्ध जब कागज पेन लेकर पत्र लिखने बैठता है तो उसके विरह का समुद्र उछलने लगता है। प्राण-विरह में तड़पने लगते हैं और मन मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। शरीर काँपने लगता है और दोनों आँखों से बहती अश्रुधारा से कागज भीग जाता है पर फिर भी मुझे यह सब लिखना पड़ रहा है क्योंकि यही आपका आदेश है। यह कार्य इतना कठिन था कि मैं इसे कभी भी नहीं कर सकता था आपने कृपा करके, मेरा हाथ पकड़कर जो लिखवाया, वह लिख दिया। जो बुलवाया, वह बोल दिया।

हे गोविंद! मेरे ये आँसू दुःख या शोक के आँसू नहीं है। ये आँसू मेरी मंगलमय अनुभूति के आँसू है। ये आँसू मेरी अमूल्य निधि हैं, मेरी श्रेष्ठतम सम्पत्ति हैं। मेरी आँखों में इन आँसुओं को देखकर, आप भी तो रोने लगते हो। आप अपने भक्तों की आँखों में आँसू देखकर रुक नहीं पाते और उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछने के लिये दौड़े चले आते हो। अपने प्यारे को गले से लगा लेते हो और मंद-मंद मुस्कुराते हो। उस समय आपके दर्शन करके जो परम आनन्द व परम उल्लास होता है वह अकथनीय है। यही है आपकी भक्तवत्सलता। यही है आपका प्रेम।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद! आपका यह प्रेम सबको उपलब्ध नहीं होता। यह प्रेम मिलता है, वैष्णवों की चरणरज को सिर पर धारण करने से। वैष्णवों-संतों की चरण-रज का सेवन करने से, भजन-साधन मार्जित होता है, उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आती।

यह प्रेम मिलता है आपके भक्तों को हरिनाम सुनाने से, उनके संग नाम–संकीर्तन करने से।

हे मेरे नाथ! आपका नाम चिन्तामणि है। हरिनाम करने से कर्मों के बंधन का नाश हो जाता है। आपने हरिनाम करने का जो मार्ग बताया है, उसे करने से, कलिकाल के जीवों का भवबंधन निश्चितरूप से समाप्त हो जायेगा। आपने हरिनाम करने की जो विधि मुझे बताई है, उस विधि द्वारा हरिनाम करने से भक्तजनों की आँखों से अश्रुधारा बहेगी और उन्हें भी आपका प्रेम प्राप्त होगा।

हे गोविन्द! इस कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कठोर हो गया है। इन कठोर हृदय वाले जीवों पर अहैतुकी कृपा करने के लिये ही आपने श्रीहरिनाम की महिमा लिखवाई है और भगवद्–प्राप्ति का सहज, सरल एवं श्रेष्ठतम मार्ग बताया है।

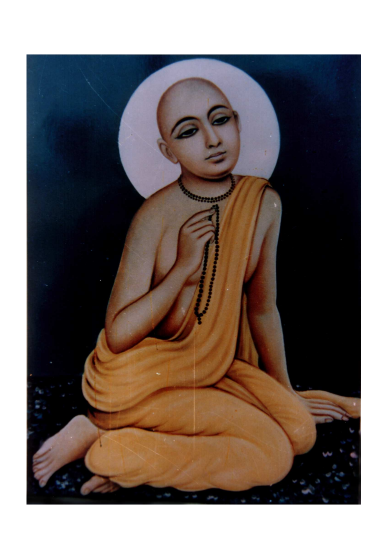
हे दीनानाथ! हे करुणा के सागर! हे भक्तवत्सल! आपकी दासी माया ने हम सबको बुरी तरह जकड़ रखा है। हे नाथ! इस दुर्गम माया से हमें बचाइये। हमारी रक्षा कीजिये। हे प्राणनाथ! हम सब पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब आपके हरिनाम गान में मस्त हो जायें। हमें आपके श्रीचरण कमलों की स्मृति सदा बनी रहे। गुरु, वैष्णवों एवं भगवान् के चरणकमलों में बैठकर हम नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहें। उन्हें हरिनाम सुनाते रहें। इसी में हम सबका मंगल है।

हे मेरे प्राणनाथ। मेरे मन में एक इच्छा है कि आपके दर्शन करने तथा आपकी चरण धूलि लेकर मस्तक पर लगाने का एक अवसर, कम से कम एक बार तो आपके सभी भक्तों को मिले और उन्हें इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो।

आपका श्रीचरणरेणु प्रार्थी

अनिरुद्ध दास

आप कहाँ हो ?



हा गौरांग! हा गौरांग !

कहाँ गौरांग। कहाँ गौरांग ।

कहाँ जाऊं ?

कहाँ पाऊँ आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप !

हे दयानिधान ! आप कहाँ हो ?

मैं आपको ढूँढ रहा हूँ ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ ।

आप कहाँ हो ?



कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ - हे कीर्तनानंद ।

दर्शन दो स्वामी !

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो !

श्रीचैतन्य महाप्रभु विरचित

श्रीशिक्षाष्टकम्

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनंपरं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।1।।

श्रीकृष्ण संकीर्तन की परम विजय हो जो वर्षों से संचित मल से चित्त का मार्जन करने वाला तथा बारम्बार जन्म-मृत्यु रूप महादावानल को शान्त करने वाला है। यह संकीर्तन-यज्ञ मानवता का परम कल्याणकारी है क्योंकि यह मंगलरूपी चन्द्रिका का वितरण करता है। समस्त आप्राकृत विद्या रूपी वधू का यही जीवन है। यह आनन्द के समुद्र की वृद्धि करने वाला है और यह श्रीकृष्ण-नाम हमारे द्वारा नित्य वांच्छित पूर्णामृत का हमें आस्वादन कराता है।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।2।।

हे भगवान्! आपका नाम अकेला ही जीवों का सब प्रकार से मंगल करने वाला है- कृष्ण, गोविन्द जैसे लाखों नाम हैं। आपने इन अप्राकृत नामों में अपनी समस्त अप्राकृत शक्तियाँ अर्पित कर दी हैं। इन नामों का स्मरण और कीर्तन करने में देश- कालादि का कोई भी नियम नहीं है। प्रभो! आपने तो अपनी कृपा के कारण हमें भगवन्नाम के द्वारा अत्यन्त ही सरलता से भगवत्- प्राप्ति कर लेने में समर्थ बना दिया है, किन्तु मैं इतना दुर्भागी हूँ कि आपके ऐसे नाम में मेरा अनुराग उत्पन्न नहीं हो पाया।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।3।।

स्वयं को मार्ग में पड़े हुए तृण से भी अधिक हीन मानकर, वृक्ष के समान सहनशील होकर, मिथ्या मान की भावना से सर्वथा शून्य रहकर एवं दूसरों को सदा ही पूर्ण मान देने वाला होकर ही सदा श्रीहरिनाम का कीर्तन विनम्र भाव से करना चाहिए।

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।4।।

हे सर्वसमर्थ जगदीश! मुझे धन एकत्र करने की कोई कामना नहीं है, न मैं अनुयायियों, सुन्दर स्त्री अथवा सालंकार कविता का ही इच्छुक हूँ। मेरी तो एकमात्र कामना यही है कि जन्म-जन्मान्तर में आपकी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकज स्थित धूलिसदृशं विचिन्तय।।5।।

हे नन्दतनुज (कृष्ण) मैं तो आपका नित्य किंकर (दास) हूँ किन्तु किसी न किसी प्रकार से मैं जन्म-मृत्युरूपी संसार में गिर पड़ा हूँ। कृपया इस विषमय मृत्युसागर से मेरा उद्धार करके अपने चरण-कमल की धूलि का कण बना लीजिए।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गदगद-रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम-ग्रहणे भविष्यति।।6।।

हे प्रभो आपका नाम-कीर्तन करते हुए, कब मेरे नेत्र अविरल प्रेमाश्रुओं की धारा से विभूषित होंगे? कब आपके नाम-उच्चारण करने मात्र से ही मेरा कण्ठ गद्‌गद् वाक्यों से रुद्ध हो जाएगा और मेरा शरीर रोमांचित हो उठेगा?

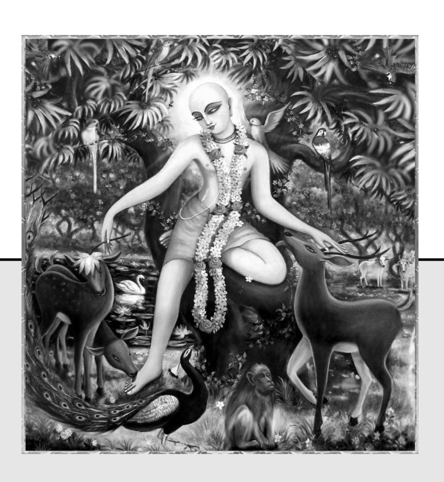
युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द-विरहेण मे।।7।।

हे गोविन्द! आपके विरह में मुझे एक निमेष काल (पलक लगने तक का समय) एक युग के बराबर प्रतीत हो रहा है। नेत्रों

से मूसलाधार वर्षा के समान निरन्तर अश्रु प्रवाह हो रहा है तथा आपके विरह में मुझे समस्त जगत् शून्य ही दीख पड़ता है।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टुमाम्
अदर्शनान्र्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।8।।

एकमात्र श्रीकृष्ण के अतिरिक्त मेरे कोई प्राणनाथ हैं ही नहीं और वे मेरे लिए यथानुरूप बने ही रहेंगे, चाहे वे मेरा गाढ़–आलिंगन करें अथवा दर्शन न देकर मुझे मर्माहत करें। वे कुछ भी क्यों न करें– वे तो सभी कुछ करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे नित्य, प्रतिबन्ध रहित आराध्य प्राणेश्वर हैं।



जब भाव की गाढ़ता होती है तो श्रीराधा–कृपा होती है।
जब रस की गाढ़ता होती है तो श्रीकृष्ण–कृपा होती है।
जब भाव और रस दोनों की गाढ़ता होती है तो
श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा होती है।

साभार : श्रीहरिनाम

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'श्रीलप्रभुपाद' की

उपदेशावली

1– 'परं विजयते श्रीकृष्ण–संकीर्तनम्'—यही श्रीगौड़ीय मठ के एकमात्र उपास्य हैं।

2– विषय विग्रह श्रीकृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं, तदतिरिक्त सभी उनके भोग्य हैं।

3– जो हरि–भजन नहीं करते, वे सभी निर्बोध और आत्मघाती हैं।

4– श्रीहरिनाम–ग्रहण और भगवत् साक्षात्कार दोनों एक ही बात हैं।

5– जो पञ्च–मिश्रित धर्मों का पालन करते हैं, वे भगवान् की सेवा नहीं कर सकते।

6– मुद्रण–यन्त्र के स्थापन, भक्ति–ग्रन्थों के प्रचार और नाम–हाट के प्रचार द्वारा ही श्रीधाम मायापुर (श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्मस्थान) की प्रकृत सेवा होगी।

7– हम सत्कर्मी, कुकर्मी अथवा ज्ञानी–अज्ञानी नहीं हैं; हम तो अकैतव (निष्कपट) हरिजनों के पाद–त्राण वाहक, "कीर्त्तनीयः सदा हरिः" मन्त्र में दीक्षित हैं।

8– केवल आचार–रहित प्रचार कर्म–अङ्ग के अन्तर्गत है। परस्वभाव की निन्दा न कर आत्म–संशोधन करना चाहिए; यही मेरा उपदेश है।

9– माथुर–विरह–कातर ब्रजवासियों की सेवा करना ही हमारा परमधर्म है।

10– यदि हम श्रेय–पथ चाहते हैं, तो असंख्य जनमत का परित्याग करके भी श्रौतवाणी का श्रवण करना चाहिए।

11– पशु, पक्षी, कीट, पतंग प्रभृति लक्ष–लक्ष योनियों में रहना अच्छा है, तथापि कपटता का आश्रय करना उचित नहीं, निष्कपट व्यक्ति का मंगल होता है।

12– सरलता का नामान्तर ही वैष्णवता है। परमहंस वैष्णवों के दास सरल होते हैं; इसलिए वे ही सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण हैं।

13– जीवों की विपरीत रुचि को परिवर्तन करना ही सर्वश्रेष्ठ दयालुता का परिचय है। महामाया के दुर्ग के बीच से यदि एक जीव की भी रक्षा कर सको, तो अनन्त कोटि अस्पतालों के निर्माण की अपेक्षा उसमें अनन्तगुना परोपकार का कार्य होगा।

14– हम इस जगत् में कोई काठ–पत्थर के कारीगर होने नहीं आए हैं; हम तो श्रीचैतन्यदेव की वाणी के वाहक मात्र हैं।

15– हम इस जगत् में अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरिकीर्तन करते–करते हमारा देहपात होने से ही इस देह धारण की सार्थकता है।

16– श्रीचैतन्यदेव के मनोऽभीष्ट–संस्थापक श्रीरूप गोस्वामी के पादपद्म की धूल ही हमारे जीवन की एकमात्र आकांक्षा की वस्तु है।

17– हमारा "निरपेक्ष सत्य" भाषण अन्य मनुष्यों को अप्रीतिकर होगा, इस भय से यदि सत्य कथन का परित्याग करूँ तो मेरा श्रौत–पथ का परित्याग कर अश्रौत पथ का ग्रहण करना हो गया, मैं अवैदिक नास्तिक हो गया–सत्यस्वरूप भगवान् में मेरा विश्वास नहीं रहा।

18– निर्गुण वस्तु का दर्शन करने के लिए कोई भी दूसरा पथ नहीं–एकमात्र कान को छोड़कर।

19– जहाँ हरिकथा होती है, वहीं तीर्थ है।

20– कीर्तन के माध्यम से श्रवण होता है और स्मरण का सुयोग प्राप्त होता है। उसी समय अष्टकालीय–लीला–सेवा की अनुभूति सम्भव है।

21– श्रीकृष्ण–नामोच्चारण को ही भक्ति समझना चाहिए।

22– जो प्रतिदिन एक लक्ष हरिनाम नहीं ग्रहण करते, उनकी दी हुई कोई वस्तु भगवान् ग्रहण नहीं करते।

23– अपराधों से दूर रहकर श्रीहरिनाम ग्रहण की इच्छा कर निरन्तर हरिनाम करते रहने से अपराध दूर होंगे और शुद्ध हरिनाम उदित होंगे।

24– श्रीनाम करते समय जड़–चिन्ताएँ उदित होने पर श्रीनाम–ग्रहण में शिथिलता नहीं करनी चाहिए। श्रीनाम–ग्रहण के गौण फलस्वरूप वृथा जड़–चिन्ताएँ क्रमशः दूर हो जाएँगी; इसके लिए घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। अत्यन्त आग्रह के साथ तन–मन–वचन से श्रीनाम की सेवा करने से ही श्रीनामी प्रभु अपना परम मंगलमय अप्राकृत स्वरूप का दर्शन कराते हैं। श्रीनाम ग्रहण करते–करते अनर्थ दूर होने पर श्रीनाम से ही रूप, गुण, लीला की अपने आप ही स्फूर्ति होती है।

बोल कृष्ण भज कृष्ण
लह कृष्ण नाम
कृष्ण माता कृष्ण पिता
कृष्ण धन–धाम

श्रीनित्यानन्द प्रभु

नितांई

श्रीसंकर्षण तत्व : श्रीबलरामजी का अवतार

अन्य नाम – निताई, निताई चाँद और बचपन में चिदानन्द
वस्त्र रंग – नीला
जन्म – माघ शुक्ला त्रयोदशी संवत् 1530
जन्मस्थान – ग्राम. एकचक्रा जि. वीरभूम (बंगाल)
माता – श्रीमती पद्मावती
पिता – श्रीहाड़ाई पण्डित, (श्रीमुकुन्द)
पत्नी – श्रीमती वसुधा एवं श्रीमती जाह्नवा (दोनों श्रीसूर्यदास पण्डित की पुत्रियाँ)
पुत्र – श्रीमती वसुधाजी के श्रीवीरचन्द्र (वीरभद्र) गोस्वामी
पुत्री – गंगा माता गोस्वामिनी
गुरुदीक्षा – श्रीलक्ष्मीपति प्रभुपाद (पंढरपुर में)
जीवनकाल – 12 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग
20 वर्ष तक अवधूत संन्यासी रहे।
35 वर्ष की अवस्था में श्रीचैतन्य के आदेश से विवाह किया।
श्रीचैतन्य से 12–13 वर्ष बड़े थे।
आज भी शृंगारवट, वृन्दावन में आपके वंशज हैं।
अप्रकट – संवत 1598, तिथि अज्ञात, श्रीगोपीनाथजी में लीन। कुल लगभग 68 वर्ष पृथ्वी पर रहे।

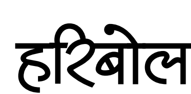


श्रीचैतन्य महाप्रभु

गौर

श्रीश्रीराधाकृष्ण का मिलित अवतार

अन्य नाम – निमाई, गौर, गौरांग एवं विश्वम्भर
वस्त्र रंग – पीला।
अंग रंग – स्वर्ण जैसा
जन्म – फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1542



जन्मस्थान – नवद्वीप (बंगाल)
माता – श्रीमती शची देवी
पिता – श्रीजगन्नाथ मिश्र
दादी – श्रीमती कलावती देवी
दादा – श्रीउपेन्द्र मिश्र
बड़े भाई – श्रीविश्वरूप (प्रकाण्ड पण्डित महापुरुष)
14–15 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर संन्यासी बने नाम हुआ शंकरारण्य।
दो–ढाई वर्ष बाद पंढरपुर में देहत्याग।
पत्नी – 1. श्रीवल्लभ आचार्य की पुत्री श्रीमती लक्ष्मीप्रिया। सर्पदंश से अप्रकट हुई।
2. श्रीसनातन मिश्र की पुत्री श्रीमती विष्णुप्रिया।
गुरुदीक्षा – श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के शिष्य–श्रीपाद ईश्वरपुरी जी से (गया में)
संन्यास – श्रीपाद केशव भारती जी से।
जीवनकाल – महाप्रभु 24 वर्ष गृहस्थ में रहे। संन्यास लेकर 6 वर्ष जगन्नाथपुरी (नीलाचल) में रहे। कुल लगभग 48 वर्ष पृथ्वी पर रहे। (अंतिम 12 वर्ष को गम्भीरा लीला भी कहते हैं)
अप्रकट – आषाढ़ शुक्ल सप्तमी सं. 1590 तीसरा प्रहर, श्रीजगन्नाथ जी में लीन

॥ जय जय श्रीनिताई-गौर ॥

।। श्रीश्रीनिताई-गौर चालीसा ।।

रचयिता : डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

दोहा-

श्रीचैतन्य कृपानिधि, कलियुग के अवतार।
प्रेमभक्ति वितरण करी, दिया सभी को तार।।
श्रीनित्यानन्द गदाधर, श्रीअद्वैत श्रीवास।।
बार बार सुमिरन करूँ, हरिदासन का दास।।

चौपाई-

श्रीचैतन्य कृपा के सागर। राधाकृष्ण मिलित तनु आगर।।1 ।।
नवद्वीप प्रकटे श्रीनिमाई। जगन्नाथ पितु शचि हैं माई।।2 ।।
मास फाल्गुन तिथि पूर्णिमा। चन्द्रग्रहण सुन्दर थी सुषमा।।3 ।।
भागीरथि का दिव्य किनारा। निम्ब वृक्ष का सघन सहारा।।4 ।।
हरि हरि बोलें नर और नारी। नारायण प्रकटे सुखकारी।।5 ।।
शिशु रूप चंचल अति भारी। पढ़ें लिखें नहिं मात दुखारी।।6 ।।
हुए युवा प्रकटी पंडिताई। अध्यापक बने गौर निमाई।।7 ।।
चारों ओर हुई परसिद्धि। कृष्ण प्रचारक नाम महानिधि।।8 ।।
यही पढ़ाते आठों याम। मात पिता धन कृष्ण ही धाम।।9 ।।
माता शीघ्र वचन है लीना। लक्ष्मीप्रिया विवाह शुभ कीना।।10 ।।
अल्प समय दुख देखी माता। सर्प दंश से सिधरी ब्याहता।।11 ।।
पुनः मात इक वधू ले आई। विष्णुप्रिया शुभ लक्षण ब्याई।।12 ।।
मात इष्ट वर सेवा करती। रहती कृष्ण शरण मन हरती।।13 ।।
अब प्रभु लीला विस्तर कीन्हा। नित्यानन्द मिले तब चीन्हा।।14 ।।
संकर्षण के रूप अपारा। सर्व जगत् के आप अधारा।।15 ।।
त्रेता में श्रीराम-लक्ष्मण। द्वापर में बलराम-कृष्ण बन।।16 ।।
कलि में गौर-निताई प्रेमधन। प्रकटे सच्चिदानन्दरूपघन।।17 ।।

नित्यानन्द बड़े अनुरागी। नाम–प्रेम की भिक्षा माँगी।।18।।
ब्राह्मण भ्रात जगाई–मधाई। दोनों मद्यप नीच कसाई।।19।।
मद–मदान्ध ह्वै घायल कीना। प्रकटे गौर शस्त्र गहि लीना।।20।।
चक्र–सुदर्शन गर्जन कीना। नित्यानन्द हरि वर्जन कीना।।21।।
मारण हित नहीं तव अवतारा। प्रेम प्रदायक रूप तिहारा।।22।।
साधु हुए जगाई–मधाई। हरि किरपा वरणी नहिं जाई।।23।।
मुसलमान काजी की लड़ाई। संकीर्तन पर रोक लगाई।।24।।
नरसिंह रूप भये तब गौरा। भय से अकुलित काजी बौरा।।25।।
नतमस्तक चरणन में दौड़ा। दिया वचन है तब प्रभु छोड़ा।।26।।
अभिमानी दिग्विजयी सुधारा। अरु प्रकाशानन्द उद्धारा।।27।।
आँगन कीर्तन नित्य श्रीवासा। परम एकान्त हरी के दासा।।28।।
जगन्नाथ तव धाम पियारा। निरतत रथ सँग अति विस्तारा।।29।।
श्रीहरिदास नाम अवतारा। राजा प्रतापरुद्र बलिहारा।।30।।
झारिखण्ड मृग व्याध नचाये। हरि हरि बोलें अश्रु बहाये।।31।।
श्री वृन्दावन को प्रकटाया। ब्रज गरिमा का दरश कराया।।32।।
राधा–कृष्णकुण्ड अति शोभित। श्रीगोवर्धनधर मन लोभित।।33।।
शिक्षा अष्टक निःसृत कीना। षड्गोस्वामी आदृत कीना।।34।।
शास्त्र प्रमाण भागवत मानी। जीव कृष्ण का दास बखानी।।35।।
जपतप संयम ज्ञान योग मधि। सर्वश्रेष्ठ मग भक्ति वारिधि।।36।।
कलि में केशव कीर्तन सारा। और नहीं गति इसके पारा।।37।।
महामन्त्र हरेकृष्ण है ध्याना। गोपी प्रेम है लक्ष्य बखाना।।38।।
प्रेम विरह ने सब कुछ हरना। झरझर अश्रु बहे ज्यों झरना।।39।।
तड़पत प्राण 'कृष्ण' बिनु हीना। जगन्नाथ में भये तब लीना।।40।।

दोहा–

गौर–निताई प्रेम से, जो ध्यावे चित लाय।
प्रेम भक्ति सुदृढ़ करे, निर्मल होत कषाय।।
श्रीवृन्दावन में वास लह, संकीर्तन आधार।
'कृष्ण' प्रेम की वारिधि, हरिनाम का सार।।

श्रीनिताई गौर चालीसा : भावार्थ

दोहा–

हे श्री चैतन्यमहाप्रभु आप सब पर कृपा करने वाले हैं और इस कलियुग में भगवान् का प्रेम–अवतार हैं। आपने सभी जीवों पर कृपा करके प्रेम भक्ति प्रदान की और सभी को इस संसार रूपी भव सागर से तार दिया।

भगवान् के अन्य अवतारों में देखा–सुना जाता है कि भगवान् ने दुष्टों का और पापियों का संहार कर उन्हें दण्डित किया। लेकिन श्रीचैतन्य महाप्रभु ने दुष्टों को मारा नहीं, उन्हें सुधारा। उनके पाप दूर किये और उन्हें भक्तियुक्त बनाया। यह उनके इस अवतार की एक प्रमुख विशेषता रही।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के साथ–साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीगदाधर पंडित, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु और श्रीश्रीवास पंडित इन 'पंचतत्त्व' नाम से प्रसिद्ध पाँचों भगवत् स्वरूपों का, हरि के दासों का दास मैं, बार–बार स्मरण करता हूँ। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीराधाकृष्ण का मिलित अवतार हैं। श्री नित्यानन्द प्रभु संकर्षण (बलरामजी) के अवतार हैं। श्री गदाधर पंडित श्रीराधा का अवतार हैं। श्री अद्वैताचार्य सदाशिव और श्री श्रीवास पंडित नारद जी का अवतार हैं।

(1)

श्रीचैतन्य महाप्रभु में अपार कृपा है। वे सब जीवों पर
कृपा करते हैं। तत्त्वतः वे भगवद् स्वरूप हैं
और श्रीराधा एवं कृष्ण का मिलित स्वरूप हैं।

'अन्तर्कृष्ण बहिर्गौर'–अर्थात् अन्दर से कृष्ण और बाहरी स्वरूप से गौरवर्ण राधा। ब्रजलीला में श्रीराधा को श्रीकृष्ण के प्रेम में कैसा आनन्द आता है इस रस का अनुभव करने के लिए राधा का रूप

धरकर स्वयं कृष्ण, श्रीचैतन्य के रूप में प्रकट हुए और श्रीकृष्ण–प्रेम का आस्वादन किया।

(2)

आपका प्राकट्य बंगाल के नवद्वीप धाम में हुआ। नीम के वृक्ष के नीचे जन्म होने से माता–पिता इन्हें निमाई कहते थे। श्रीजगन्नाथ मिश्र आपके पिता हैं और श्रीशचीदेवी आपकी माता हैं।

नवद्वीप बंगाल प्रान्त का एक छोटा सा गाँव है, जो पुण्यसलिला गंगा नदी के किनारे बसा है। श्रीजगन्नाथ मिश्र उस गाँव में 'मिश्र पुरन्दर' नाम से विख्यात थे। निमाई का जन्म नाम विश्वम्भर था और सोने की तरह चमकीला इनका शरीर था। इसलिए गौर या गौरांग के नाम से भी लोग इन्हें पुकारते थे।

(3)

फाल्गुन महीने की पूर्णिमा तिथि को आप प्रकट हुए। उस दिवस चन्द्र ग्रहण होने से पूर्णिमा की शोभा अद्भुत थी।

फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1542 तदनुसार 19 फरवरी सन् 1485 को संध्या के समय श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ। आजकल जिस दिन होली–धुलैड़ी का पर्व मनाया जाता है, यह वही तिथि है। गौड़ीय वैष्णव इस दिन व्रत रखकर विशेष भजन आयोजन पूर्वक उनका जन्मदिन मनाते हैं। मन्दिरों में अभिषेक किया जाता है और शोभायात्राएँ निकाली जाती हैं।

(4)

नवद्वीप गंगा नदी के तट पर बसा है वहीं गंगा के किनारे नीम के वृक्ष के घने सुरम्य वातावरण में आप प्रकट हुए।

राजा सगर के साठ हजार मृत पुत्रों को जीवित करने के लिए राजा अंशुमान ने कठोर तपस्या की। तदुपरान्त उनके पुत्र राजा दिलीप और सफलता न मिलने पर पुनः उनके पुत्र राजा भगीरथ ने कठोर तपस्या की। फलस्वरूप गंगा का देवलोक से आगमन हुआ। पहले

उसके वेग को शिव ने अपनी जटा पर धारण किया और वहाँ से पृथ्वी पर अवतरण हुआ। राजा भगीरथ के द्वारा गंगा पृथ्वी पर प्रकटीं, इसलिए गंगा का एक नाम भागीरथी भी है।

(5)

बालक के जन्म होने पर नर–नारी हरि–हरि उच्चारण कर रहे थे। नवजात बालक को देखकर ऐसा सुख मिलता था मानो नारायण स्वयं प्रकट हुए हों।

हरिबोल! हरिबोल! हरिबोल! हरिबोल!

चन्द्रग्रहण का अवसर होने के कारण अनेक लोग गंगा में स्नान कर रहे थे। और ऐसे अवसर पर उल्लासमय वातावरण में सभी लोग हरि–संकीर्तन कर रहे थे इसलिए वातावरण भक्तिमय था।

(6)

आप शिशु रूप में अति चंचल थे और जब विद्याध्ययन के लिए विद्यालय भेजा तो वहाँ भी पढ़ते–लिखते कम और ऊधम मचाते अधिक। माता को जब यह पता चलता तो वह बेचारी दुखी होती।

देखा जाता है कि मेधावी बालक बचपन में बड़े चंचल होते हैं। इसीप्रकार निमाई भी थे। अपने साथियों के साथ गंगा तट पर खूब मस्ती करते। कभी–कभी तो लोगों के घर के दरवाजे बाहर से बन्द कर देते और अन्दर बन्द लोगों के बहुत अनुनय विनय करने पर ही उसे खोलते।

(7)

जब युवा हुए तो आप सर्वज्ञानी 'पंडित' के रूप में प्रसिद्ध हुए तब गौर वर्ण वाले निमाई अध्यापक बन कर शिक्षा प्रदान करने लगे।

धीरे–धीरे निमाई की चंचलता समाप्त हुई और विद्या में मन लगने लगा तो माता–पिता ने निमाई का विद्यालय जाना बन्द करा दिया। उन्हें डर था कि बड़े भाई विश्वरूप की तरह ज्ञानी बनकर हमारा

निमाई कहीं संन्यासी न बन जाय। लेकिन युक्तिपूर्वक निमाई ने विद्या भी प्राप्त की और एक विद्यालय का संचालन करने लगे।

(8)

देखते ही देखते चारों दिशाओं में दूर–दूर तक
महाप्रभु की प्रसिद्धि होने लगी कि वे श्रीकृष्ण
और श्रीहरिनामरूपी महान् सम्पत्ति के प्रचारक हैं।

विद्यालय जाते–आते समय आप सखाओं के साथ हरिबोल– हरिबोल करते हुए नाचते–गाते जाते। आपकी उस छवि का दर्शन कर नर–नारी मुग्ध हो जाते थे। कभी चंचल रहे निमाई के इस भक्तिपूर्ण आचरण से सभी अत्यधिक प्रसन्न होते और मन ही मन आशीर्वाद देते।

(9)

पंडित निमाई विद्यालय में छात्रों को सब समय यही पढ़ाते कि देखो सब कुछ कृष्ण ही हैं। कृष्ण ही तुम्हारे माता–पिता हैं और कृष्ण ही मूल्यवान सम्पत्ति हैं तथा वे ही परम धाम हैं।

'बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम।
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन धाम।'

महाप्रभु जब संकीर्तन आनन्द में मत्त होते तो इस धुन का गान करते और लोगों को श्रीकृष्ण नाम का महत्व प्रतिपादित करते।

(10)

माता शचीदेवी ने शीघ्र ही निमाई से और कन्या पक्ष से वचन ले लिया और श्रीलक्ष्मीप्रिया जी के साथ पंडित निमाई (श्रीचैतन्य महाप्रभु) का शुभविवाह सम्पन्न कराया।

श्रीजगन्नाथ मिश्र का देहावसान हो चुका था। एक बड़े भाई विश्वरूप संसार की असारता को जानकर गृह त्याग चुके थे। पुनः निमाई की इस कृष्ण भक्ति को देखकर माता ने उन्हें बाँधना चाहा और मात्र 18 वर्ष की आयु में नवद्वीप के पंडित श्रीवल्लभ आचार्य की सुपुत्री से इनका विवाह करा दिया।

(11)

कुछ समय पश्चात् एक सर्प के काटने से नव ब्याहता श्रीमती लक्ष्मीप्रिया देवी ने शरीर त्याग दिया।

माता की आज्ञा से महाप्रभु ने पद्मावती नदी के तट पर स्थित सभी नगरों का भ्रमण किया और सभी को हरिनाम का उपदेश देते हुए अपने पूर्वजों के स्थान श्रीहट्ट में पहुँचे। तभी नवद्वीप में उनकी अनुपस्थिति में श्रीलक्ष्मीप्रिया देवी अप्रकट हुईं।

(12)

समय पाकर शचीमाता ने पुनः इनका विवाह कराया और इसबार सब शुभ लक्षण–मुहूर्त जाँच परखकर अति रूपवान श्रीमती विष्णुप्रिया जी को वधू बनाकर अपने पास ले आईं।

परमभक्त राजपंडित श्रीसनातन की कन्या को प्रतिदिन गंगा स्नान को जाते हुए माता देखती थी। वह कन्या उन्हें अपने निमाई के लिये पसन्द आ गई। माता द्वारा सम्बन्ध के आग्रह पर उसी रूपवान कन्या श्रीविष्णुप्रिया देवी से महाप्रभु का पुनः विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ।

(13)

विष्णुप्रिया देवी माता, अपने इष्ट व निमाई की प्रेम से सेवा करती। समस्त गृहकार्य करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में रहती और अपने आचरण से वह सभी का मन हर लेती थी।

महाप्रभु के संन्यास के उपरान्त विष्णुप्रिया माता की पर्याप्त सेवा करती और महाप्रभु की पादुकाओं का आश्रय लेकर रात–दिन भगवन्नाम में संलग्न रहती। खाने के नाम पर चावल के कुछ दाने ही उसके पेट में जाते। माता के अन्तर्धान के पश्चात् निजी सेवक ईशान ने क्रन्दनपूर्ण विष्णुप्रिया देवी को किस प्रकार सँभाला – वह अवर्णनीय है।

(14)

अब तक निमाई श्रीनित्यानन्द प्रभु से मिल चुके थे। उन्हें पहचान चुके थे। तब निमाई ने आगे की लीला करने की तैयारी की।

माता से आज्ञा लेकर आप पिण्डदान करने गया गये। ब्रह्मकुण्ड पर स्नान-तर्पण किया। वहीं आपने श्रीपाद ईश्वरपुरी जी से मन्त्र दीक्षा ली और श्रीकृष्ण प्रेमभक्ति का प्रकाश आरम्भ किया। हा कृष्ण! हा कृष्ण! कहते हुए आप गुरु आज्ञा से नवद्वीप लौट आये। कृष्ण-प्रेम में आप इतने मत्त रहते कि खाना-पीना-सोना कुछ भी सुध न रहती।

(15)

श्रीनित्यानन्द प्रभु संकर्षण के रूप हैं और इस जगत् का आधार (धुरी) वे ही हैं।

संकर्षण के ये अवतार- शेषनाग के रूप में अपने फन पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। आधारशक्ति होने से जब-जब प्रभु इस धरती पर प्रकट होते हैं उन्हें धारण करने के लिये ये संकर्षण तत्व भी उनके साथ प्रकट होते हैं। जैसे शेरनी का दूध स्वर्णपात्र में ही संग्रह किया जा सकता है उसीप्रकार प्रभु को धारण करने की योग्यता एकमात्र संकर्षण तत्व में ही है।

(16)

त्रेता युग में भगवान् राम के साथ आप लक्ष्मण रूप में प्रकटे। द्वापर में आप कृष्ण के साथ बलराम के रूप में प्रकट हुए।

(17)

कलियुग में सच्चिदानन्दघन स्वरूप आप दोनों प्रेमरूपी धन, श्रीगौर और श्रीनिताई के रूप में प्रकट हुए।

(18)

श्रीनित्यानन्द प्रभु बड़े ही प्रेमी और अनुरागी थे उन्होंने प्रेम के अधिष्ठान श्रीभगवन्नाम की भिक्षा माँगनी प्रारम्भ की।

वह प्रत्येक प्राणी से कहते– भाई ! एकबार कृष्ण बोलो, भगवन् नाम उच्चारण करो और ऐसा करते ही वह प्राणी नाम के प्रेम से मतवाला हो उठता था। कृष्ण–कृष्ण, हरिबोल–हरिबोल कहता हुआ पागलों की तरह नाचने लगता था। क्या कहें– साक्षात् प्रेम मूर्तिमन्त हो उठता था।

(19)

नवद्वीप के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्मे दो भाई थे– जगाई–मधाई। दोनों ही मदिरा पीने वाले, अति नीच और मांसाहारी थे।

महाप्रभु की आज्ञा थी, नित्यानन्द जाओ और सबसे कृष्ण नाम का कीर्तन कराओ। इसलिए भगवन्नाम का प्रचार करते हुए एक दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने साथियों के साथ इनके पास पहुँचे और कहने लगे– भैया कृष्ण कहो, कृष्ण बोलो। दोनों भाई इन्हें गालियाँ देने लगे।

(20)

मदिरा पान और अहंकार में अन्धे हुए भाइयों ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को मिट्टी की सुराही फेंककर मारी जो प्रभु के मस्तक पर लगी। प्रभु के माथे से रक्त बह निकला। अचानक श्रीगौर वहाँ प्रकट हो गये और अपने अभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु को चोटिल देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गये। स्मरण मात्र से उनके हस्तकमल में चक्र सुदर्शन प्रकट हो गया।

(21)

चक्र सुदर्शन के गर्जन से धरती–आकाश–पाताल कम्पायमान होने लगे तब नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु को रोका और प्रार्थना की–

(22)

हे महाप्रभु ! शान्त हो जाइये। आपका अवतार मारने के लिए नहीं, तारने के लिए है। आप तो सबको श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान करते हो।

(23)

जगाई–मधाई दोनों भाई साधु हो गये।
महाप्रभु गौरांग और श्रीनित्यानन्द प्रभु ने दोनों पर
ऐसी कृपा की जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

फिर महाप्रभु की कृपा से जगाई–मधाई का नशा चूर–चूर हो गया वे प्रभु के पैरों में पड़ गये और अपनी दुष्टता के लिए बार–बार क्षमा माँगने लगे। महाप्रभु ने दोनों के जन्म–जन्मान्तरों के पापों का संकल्प जल लेकर पी लिया और उन्हें पापमुक्त कर दिया। तब से दोनों भाई हरिनाम संकीर्तन करने लग गये।

(24)

स्थान–स्थान पर संकीर्तन का प्रचार होते देखकर द्वेष–वश नगर
के काजी ने फरमान देकर नगर में संकीर्तन पर रोक लगा दी।

महाप्रभु अनेक लोगों को साथ लेकर श्रीहरिनाम संकीर्तन करते हुए प्रतिदिन नगर–भ्रमण करने लगे। चारों ओर नाम–ध्वनि से पूरा नगर गूँज उठता था। उस समय यवनों का शासन था। इसलिए शासक लोग हिन्दुओं को धर्माचरण से रोकते थे, उन्हें परेशान करते थे। उनके द्वारा धर्म–प्रचार पर रोक लगाते थे।

(25)

जब महाप्रभु ने यह सुना तो उन्होंने उसे सुधारने के लिए एक
लीला की। एक रात स्वप्न में काजी ने भयंकर स्वप्न देखा–
उसने देखा कि एक सिंह (नृसिंह रूप) उसकी छाती पर चढ़ बैठा है
और अपने नाखूनों से उसका वक्षस्थल चीर डालने को उद्यत है।
वह सिंह कह रहा था– अच्छा! तू मेरा संकीर्तन बन्द करायेगा,
मैं तेरी छाती फाड़ दूँगा। ऐसा देखकर काजी भय से
थर–थर काँपने लगा और व्याकुल हो पागल सा हो गया।

(26)

प्रातःकाल होते ही काजी महाप्रभु के पास आया।
चरणों में प्रणाम कर क्षमा–याचना की और संकीर्तन पर
लगाई गई रोक को हटाने का काजी ने जब वचन दिया
तब महाप्रभु ने उसे भयमुक्त कर दिया।

काजी को दिये स्वप्न–भय की इस घटना के बाद कोई भी महाप्रभु के नगर संकीर्तन पर व्यवधान नहीं डालता था बल्कि आनन्दपूर्वक सभी उसमें सम्मिलित होते थे। महाप्रभु को अब एक दिव्य पुरुष के रूप में लोग स्वीकारने लगे थे।

(27)

विश्वविजय करते हुए आये एक विद्वान् का विद्या–अभिमान
प्रभु ने चूर किया और एक संन्यासी प्रकाशानन्द का उद्धार किया।

काशी में साठ हजार शिष्यों के गुरु को महाप्रभु ने श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान किया उन्हें मायावादी से वैष्णव प्रबोधानन्द सरस्वती बना दिया। फलस्वरूप श्रीवृन्दावन महिमा के एक सौ शतक अर्थात् दस हजार श्लोकों की उन्होंने रचना की। आज मात्र 17 शतक उपलब्ध हैं। पुस्तक रूप में प्रकाशित हैं। श्रीराधारससुधानिधि उनकी माधुर्यपूर्ण उज्ज्वल रचना है। श्रीहरिनाम प्रेस से निशुल्क प्राप्य है।

(28)

श्रीवास महाप्रभु के बड़े कृपापात्र थे। उनके निवास पर
आँगन में प्रतिदिन रात्रि में महाप्रभु उच्चस्वर से
संकीर्तन करते। उस स्थान पर महाप्रभु के केवल और
केवल ऐकान्तिक दास हुआ करते थे।

श्रीवास आंगन में एक वर्ष का अखण्ड संकीर्तन चला। एक दिन महाप्रभु ने सबको अपना अद्‌भुत ऐश्वर्य दिखाया। सात प्रहर (21 घंटे) तक वे महाभाव में आविष्ट रहे थे और सब भक्तों पर कृपा की थी। 'महाभाव' प्रेम की वह उच्चतम अवस्था है जिसमें केवल

श्रीराधारानी का प्रवेश है। साधारण जीव या महापुरुषों तक का भी प्रवेश कदापि नहीं है।

(29)

महाप्रभु श्रीचैतन्य का प्रिय धाम है जगन्नाथपुरी। जब पुरी में रथयात्रा का आयोजन होता है तो रथ के सामने महाप्रभु अति विस्तार से नृत्य करते हुए यात्रा में साथ चलते हैं।

महाप्रभु ने जीव–जगत् को शिक्षा प्रदान करने के लिए और अज्ञानी निन्दकों का उद्धार करने के लिए श्रीपाद केशव भारती जी से वैष्णवी संन्यास–दीक्षा ले ली और सब कुछ छोड़कर आप जगन्नाथपुरी में रहते हुए श्रीकृष्ण–प्रेम–भक्ति का प्रचार करने लगे।

(30)

यवन परिवार में पले–बढ़े एक भक्त श्रीहरिदास पर आपने अद्‌भुत कृपा की। भगवन्नाम में उनकी ऐसी प्रवृत्ति हुई कि लोग उन्हें 'नामावतार' कहने लगे। अनेक भक्तों के अनुनय विनय करने पर श्रीजगन्नाथपुरी के तत्कालीन राजा श्री प्रतापरुद्र पर महाप्रभु ने कृपा की जिससे राजा उन पर न्योछावर हो गया।

पुरी में रथ यात्रा के प्रारम्भ होने से पहले स्वर्ण में मढ़ी हुई झाड़ू से राजा प्रतापरुद्र मार्ग को स्वयं अपने हाथ से झाड़ते थे। यह परम्परा आज भी वहाँ जीवित है।

(31)

महाप्रभु जब झारिखण्ड के रास्ते होते हुए श्रीवृन्दावन पधारे तो जंगलों में हिरन–सिंह आदि हिंसक जानवर अपना नैसर्गिक द्वेषी स्वभाव भूलकर महाप्रभु के साथ हरिनाम संकीर्तन करते हुए नाचने लगे और प्रेम में गद्‌गद् हो अश्रु बहाते हुए हरि–हरि बोलने लगे।

वृन्दावन चलने को उद्यत असंख्य लोगों को रोककर महाप्रभु केवल एक सेवक के साथ श्रीधाम वृन्दावन पधारे थे। धाम आगमन की

यही रीति है, जो श्रीपाद सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु को बतायी थी।

(32)

महाप्रभु ने श्रीवृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न लीला–स्थलियों को प्रकटित एवं महिमामंडित किया। साथ ही व्रजमण्डल के सर्वश्रेष्ठत्व का प्रतिपादन कर जीवों को उसका दिग्दर्शन कराया।

वृन्दावन अर्थात् तुलसी का वन। आज से 500 वर्ष पूर्व का वह वृन्दावन आज ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। सब तरफ ऊँचे–ऊँचे भवन और एक से एक आलीशान आश्रमों से युक्त यह वृन्दावन बस मानसी सेवा में ही वृन्दा का वन शेष रह गया है। प्रभु की जैसी इच्छा!!!

(33)

महाप्रभु श्रीचैतन्य ने ही श्रीराधाकुण्ड और श्रीकृष्णकुण्ड की खोज की जो अत्यन्त शोभायमान हैं और स्वयं भगवान् श्रीराधा एवं कृष्ण के द्वारा निर्मित हैं। श्रीगोवर्धन पर्वत और गिरिराज–धरण श्रीकृष्ण तो मन को लुभाने वाले हैं।

महाप्रभु ने ब्रज के चौबीस घाटों पर स्नान किया। द्वादश वनों की यात्रा की। गोवर्धन परिक्रमा की। नन्दीश्वर तथा गुफा में श्रीनन्द–यशोदा व श्रीकृष्ण के दर्शन किये और भावावेश में अक्रूरघाट पर तो वे श्रीयमुना में कूद ही पड़े।

(34)

महाप्रभु श्रीचैतन्य ने शिक्षाप्रद मात्र आठ श्लोकों की रचना की जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी हैं। अपनी शिक्षाओं के प्रचार हेतु छह गोस्वामियों को व्रज में भेजा जो सभी के द्वारा यहाँ समादृत हुए।

वृन्दावन में सप्त–देवालयों की स्थापना श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, जीव, गोपालभट्ट, रघुनाथदास– इन्हीं छह गोस्वामियों के द्वारा हुई। चैतन्य सम्प्रदाय के अद्भुत दर्शन और सर्वमान्य सार्वभौम सिद्धान्त को प्रस्तुत करने वाले अनेक ग्रन्थों की रचना इन्हीं गोस्वामिगणों द्वारा हुई।

(35)

महाप्रभु ने श्रीभागवत महापुराण का उत्कर्ष स्थापन करते हुए उसे सर्वश्रेष्ठ शास्त्र एवं शब्द प्रमाण के रूप में स्थापित किया। जीव का स्वरूप निर्णय करते हुए उसे श्रीकृष्ण का नित्य दास बताया।

'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास'। और दास के रूप में अपने स्वामी की सेवा जीव का एकमात्र कर्त्तव्य बताया। हर मनुष्य परिवार के सदस्यों की सेवा भी इस रूप में करे कि ये सब भी मेरे प्रभु के दास हैं।

(36)

जप, तप, संयम, ज्ञान, योग आदि मार्गों में सर्वश्रेष्ठ है– भक्ति का मार्ग। भक्ति एक सागर के समान विस्तृत और सर्वव्यापक है।

अन्वय माने विधि और व्यतिरेक माने निषेध। इसके द्वारा महाप्रभु ने सिद्ध किया कि स्वामी की सेवा के लिए एकमात्र साधन भक्ति ही नित्य है, सर्वत्र है और सर्वशक्तिमान् है। भक्ति निरपेक्ष है और अपना फल 'श्रीकृष्ण प्रेम' प्रदान करने में किसी की अपेक्षा नहीं रखती।

(37)

महाप्रभु ने कहा कि कलियुग में केशव अर्थात् कृष्ण का कीर्तन करना ही जीवन का सार है। इसके बिना और कोई गति नहीं है।

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'

विधि *: तीन बार कहा– हरेर्नाम। एव माने ही। अर्थात् केवल हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम ही।* ***निषेध*** *: पुनः तीन बार कहा नास्त्येव। न+अस्ति+एव। अन्यथा गति नहीं ही है, नहीं ही है, नहीं ही है।*

(38)

'हरेकृष्ण' महामन्त्र का ध्यान करना और भक्तिपूर्वक कीर्तन करना ही जीव के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है और जीव का लक्ष्य है– उस प्रेम को प्राप्त करना जैसा प्रेम गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति किया था।

श्रीपाद रूप गोस्वामी ने कहा है– अन्य अभिलाषा से शून्य, ज्ञान–कर्म आदि से अनावृत, एकमात्र श्रीकृष्ण की अनुकूलतामयी सेवा ही उत्तमा भक्ति है।

(39)

महाप्रभु स्वयं इस प्रेम को प्राप्त कर श्रीकृष्ण के विरह में इतने व्याकुल हुए कि उनका सब कुछ लुट गया। उनकी आँखों से अश्रु ऐसे बहते थे जैसे मानो झरना बह रहा हो।।39।।

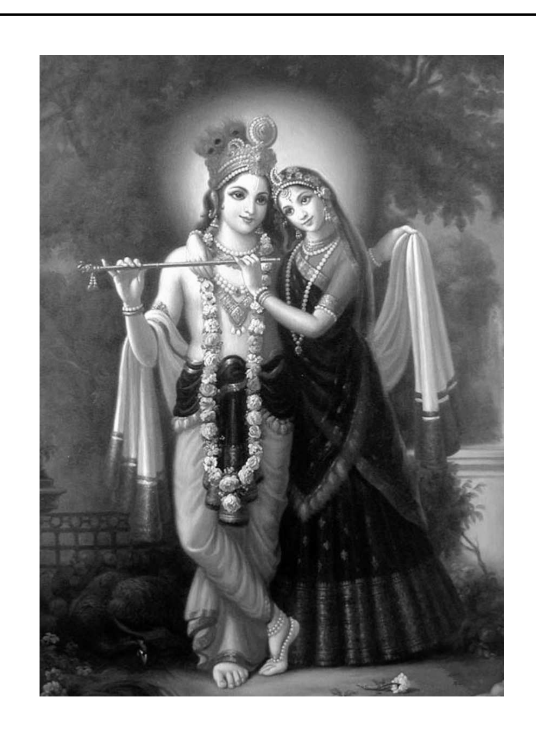
(40)

भगवान् श्रीकृष्ण के बिना वे ऐसे तड़पने लगे जैसे प्राण हीन हो गये हों। प्रेम की इस उच्च अवस्था को प्राप्त कर महाप्रभु श्रीगौरांग एक दिन पुरी मंदिर के श्रीजगन्नाथ विग्रह में लीन हो गये।

दोहा–

श्रीश्रीगौर–निताई प्रभु को प्रेम से चित्त लगाकर जो स्मरण करेगा, प्रेम भक्ति में उसकी निष्ठा सुदृढ़ होगी और काम–क्रोधादि कसैलापन उसके जीवन से दूर हो जायेगा अर्थात् वह निर्मल हो जायेगा।

श्रीवृन्दावन में रहते हुए (प्रत्यक्ष या मानसिक रूप से) हरिनाम संकीर्तन का आधार लेना चाहिए क्योंकि श्रीहरिनाम का सार ही श्रीकृष्णप्रेम रूपी समुद्र को प्राप्त कराने वाला है।



हरिनाम भक्ति से ऊँची कोई भक्ति नहीं।
हरिनाम स्मरण से ऊँची कोई शक्ति नहीं।
मानव जन्म सा ऊँचा कोई जन्म नहीं।
आत्मज्ञान सा ऊँचा कोई ज्ञान नहीं।
भगवत् भूल सी ऊँची, कोई भूल नहीं।
क्रोध सा ऊँचा कोई शूल नहीं।
गुरुभक्त चरणरज सी कोई धूल नहीं।
माया–जादू से ऊँचा कोई जादू नहीं।
इसको समझने से ऊपर कोई ज्ञान नहीं।
न समझने के ऊपर कोई अज्ञान नहीं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवी-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धाऽपसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

समष्टिगत-प्रणाम

गुरवे गौरचंद्राय राधिकायै तदालये।
कृष्णाय कृष्णभक्ताय तद्भक्ताय नमो नमः।।16।।

पंचतत्व-प्रणाम मंत्र

जय श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।17।।

महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।18।।

मंगलाचरण

– सपरिकर–श्रीहरि–गुरु–वैष्णव वन्दना –

मैं अपने गुरु के चरणकमलों में तथा समस्त वैष्णवों के चरणों में नमस्कार करता हूँ। मैं श्रील रूप गोस्वामी तथा उनके अग्रज सनातन गोस्वामी एवं साथ ही रघुनाथदास, रघुनाथभट्ट, गोपालभट्ट एवं श्रील जीव गोस्वामी के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द के साथ–साथ अद्वैताचार्य, गदाधर पण्डित, श्रीवास पण्डित तथा अन्य पार्षदों को सादर प्रणाम करता हूँ। मैं श्रीमती राधारानी तथा श्रीकृष्ण को श्रीललिता तथा श्रीविशाखा सखियों सहित नमस्कार करता हूँ॥1 ॥

– श्रीगुरुदेव–प्रणाम –

अज्ञान के अंधकार से अंधी हुई आँखों को ज्ञानाञ्जनरूपी शलाका से खोलने वाले श्रीगुरु के चरणकमलों में मेरा सादर प्रणाम है॥2 ॥

– श्रील माधव गोस्वामी महाराज–प्रणाम –

श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज नामवाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दोनों को तारनेवाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणावरुणालय–स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु–देव–भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु–प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरी धाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म–स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर

प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी–गुरुदेव को नमस्कार है।।3।।

– श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद–प्रणाम –

कृष्ण सम्बन्ध–विज्ञान के दाता, कृष्ण के प्रिय, श्रीवार्षभानवीदेवी राधिका के प्रियपात्र, इस भूतल पर अवतीर्ण ॐ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी नामक कृपा–वारिधि प्रभु की वन्दना करता हूँ। जो माधुर्य के द्वारा उज्ज्वलीकृत प्रेमपूर्ण, श्रीरूपानुग–भक्ति–दानकारी तथा श्रीगौरांग–महाप्रभु की करुणा–शक्ति के विग्रह–स्वरूप हैं, उन सरस्वती ठाकुर को मैं पुनः नमस्कार करता हूँ। जो गौर–वाणी के मूर्तिमान स्वरूप हैं, दोनों को तारने वाले हैं, तथा श्रील रूप गोस्वामी द्वारा प्रणीत भक्तिमय सेवा के सिद्धान्तों से विरुद्ध कोई कथन सहन नहीं करते।।4।।

– श्रील गौरकिशोर–प्रणाम –

मैं गौरकिशोरदास बाबा जी के चरणकमलों में सादर नमन करता हूँ, जो साक्षात् वैराग्य की मूर्ति हैं, एवं कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम व विरह भाव में ही सदा निमग्न रहते हैं।।5।।

– श्रील भक्तिविनोद–प्रणाम –

मैं उन सच्चिदानंद भक्तिविनोद को सादर नमन करता हूँ, जो गौरांग महाप्रभु की शक्ति का स्वरूप हैं तथा श्रील रूप गोस्वामी के नेतृत्वगत सभी गोस्वामियों के अनुयायी हैं।।6।।

– श्रील जगन्नाथदास बाबा जी–प्रणाम –

मैं उन जगन्नाथदास बाबा जी को सादर नमन करता हूँ, जो समस्त वैष्णव समुदाय द्वारा समादृत हैं तथा जिन्होंने गौरांग महाप्रभु की आविर्भाव भूमि की खोज की थी।।7।।

– श्रीवैष्णव प्रणाम –

मैं भगवान् के उन समस्त वैष्णव भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ, जो सबकी वाञ्छा (इच्छा) को पूर्ण करने में कल्पतरु के समान हैं, दया के सागर हैं तथा पतितों का उद्धार करने वाले हैं।।8।।

– श्रीगौरांग महाप्रभु–प्रणाम –

हे परम करुणामय अवतार! आप स्वयं कृष्ण हैं, जो श्रीकृष्ण–चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। आपने श्रीमती राधारानी का गौरवर्ण धारण किया हैं और आप कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का सर्वत्र वितरण कर रहे हैं। हम आपको सादर नमन करते हैं।।9।।

– श्रीराधा–प्रणाम –

मैं उन राधारानी को प्रणाम करता हूँ, जिनकी शारीरिक कान्ति पिघले हुए सोने के समान है, जो वृन्दावन की महारानी हैं। आप वृषभानु की पुत्री हैं और भगवान् कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।।10।।

– श्रीकृष्ण प्रणाम –

हे कृष्ण! आप दुखियों के सखा तथा सृष्टि के उद्गम हैं। आप गोपियों के स्वामी तथा राधारानी के प्रेमी हैं। मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।।11।।

– श्रीसम्बन्धाधिदेव प्रणाम –

उन श्रीराधा मदनमोहन की जय हो, जो मेरे जैसे पंगु एवं मंदमति की भी गति हैं तथा जिनके चरणकमल मेरे सर्वस्व स्वरूप हैं।।12।।

– श्रीअभिधेयाधिदेव प्रणाम –

परम शोभायमान श्रीवृन्दावन में, कल्पवृक्ष के नीचे, परमसुन्दर रत्नों के द्वारा बने हुए भवन में, मणिमय सिंहासन पर विराजमान एवं अपनी अतिशय प्रिय श्रीललिता–विशाखा आदि सखियों के

द्वारा प्रतिक्षण जिनकी सेवा होती रहती है, उन श्रीश्रीराधागोविन्ददेव जी का मैं स्मरण करता हूँ।।13।।

– श्रीप्रयोजनाधिदेव प्रणाम –

श्रीराधा गोपीनाथ जी हमारी कुशलता के लिए विद्यमान रहें क्योंकि वे रास सम्बन्धी रस का आरम्भ करने वाले हैं व वंशीवट के नीचे विराजमान होकर अपनी वंशीध्वनि के द्वारा गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं।।14।।

– श्रीतुलसी प्रणाम –

वृन्दा एवं सत्यवती नामक तुलसीदेवी के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है। श्रीकृष्ण की प्रियतमा तुलसीदेवी के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है। हे कृष्ण–भक्ति को देने वाली तुलसीदेवी! आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।।15।।

– समष्टिगत प्रणाम –

मैं श्रीगुरुदेव, श्रीगौरचन्द्र, श्रीमती राधिका और उनके परिकर तथा श्रीकृष्ण और उनके भक्त तथा उनके भक्तों के भी भक्तों को प्रणाम करता हूँ।।16।।

– पंचतत्व प्रणाम –

मैं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीगदाधर पण्डित तथा श्रीवास पण्डित सहित अन्यान्य सभी गौरभक्तों को प्रणाम करता हूँ।।17।।

– महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

गीता उपदेश

क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो ? किससे व्यर्थ डरते हो ?
कौन तुम्हें मार सकता है ? आत्मा न पैदा होती है, न मरती है।
जो हुआ वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है वह अच्छा हो रहा है।
जो होगा वह भी अच्छा ही होगा।
तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो।
वर्तमान चल रहा है।
तुम्हारा क्या गया जो तुम रोते हो ? तुम क्या लाये थे
जो तुमने खो दिया ? तुमने क्या पैदा किया था जो नाश हो गया ?
न तुम कुछ लेकर आये, न तुमने कुछ पैदा किया।
जो लिया यहीं से (इसी भगवान् से) लिया। जो दिया यहीं पर दिया।
खाली हाथ आये, खाली हाथ चले।
जो आज तुम्हारा है। कल किसी और का था, परसों किसी
और का होगा। तुम इसे अपना समझकर मग्न हो रहे हो,
बस! यही प्रसन्नता ही तुम्हारे दुःखों का कारण है।
परिवर्तन ही संसार का नियम है।
एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो तो दूसरे ही
क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया,
मन से मिटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है
और तुम सबके हो।
न यह शरीर तुम्हारा है न तुम शरीर के हो
यह पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश से बना है
और इसी में मिल जायेगा।
परन्तु आत्मा स्थिर है। इस जगत में आत्मा तथा हरिनाम ये दो ही
चिन्मय और सत्य वस्तु हैं, बाकी सब असत्य हैं।
इस सत्य को समझकर तू हरिनाम के पूर्ण आश्रित हो जा
फिर देख! तू भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त होकर भगवद्प्रेम
में डूबकर परमानन्द का अनुभव करेगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

1

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3-1-2001

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीश्री 108 श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन में रुचि होने की बारम्बार प्रार्थना।

अमूल्य लेख

प्राचीनकाल में बच्चों को गुरु आश्रम में माँ बाप सद्शिक्षा पाने के लिए भेजा करते थे। उनको वहाँ 25 साल तक आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी। जब 25 साल पूरे हो जाते थे, तो गुरुदेव शिष्य को पूछते थे कि आप गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करोगे या नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर संन्यास धर्म अपनावोगे? शिष्य अपनी मन की कामना बताता कि, मैं तो गृहस्थ बनना चाहता हूँ। आपका आदेश तथा आशीर्वाद चाहता हूँ। श्रीगुरुदेव उसको आदेश देते कि घर पर जाओ तथा कुलीन लड़की से शादी कर अपना जीवन संयम पूर्वक रखकर सन्तान पैदा करो। शीघ्र सन्तान प्राप्त कर गृहस्थी से अवकाश पाकर प्रभु का भजन करके आवागमन (जन्म मृत्यु का चक्कर) से जो दुःखों का घर है, उससे निवृत्त होना।

जब तुम्हारी सन्तान पाने की कामना हो तो पहले दोनों दम्पत्ति हरिनाम भजन सवा तीन माह करके कोई शुभदिन चुनकर हरिस्मरण पूर्वक संयोग कर्म करना। जब ऐसा करोगे तो सन्तान होगी सात्त्विक! ऐसा न करने पर सन्तान होगी तामस वृत्ति की, जो स्वयं को दुःखी करेगी तथा पड़ोस को भी दुःखी करती रहेगी। एकादशी, पूर्णमासी, अष्टमी, मंगलवार, पर्व, दोनों संध्या, दिन में, रुग्णावस्था में, क्रोध में, न चाहने पर, मासिक धर्म पर, इन पर संयोग करना वर्जित है। यदि करोगे तो राक्षस पैदा हो जायेंगे जो स्वयं को ही खा

जायेंगे। ऐसा श्रीमद्भागवत में अंकित है। जब संयोग करोगे तो उस क्षण यदि स्त्री जाति का स्मरण आ गया तो लड़की पैदा होगी एवं यदि पुरुष जाति का स्मरण हो गया तो लड़का पैदा होगा। यह 100% सत्य आविष्कार है। दोनों को 21 दिन तक संयम रखना होगा। सत इसबगोल तथा दूध का सेवन करना लाभप्रद है।

आजकल इन्द्रियतर्पण से गृहस्थ धर्म अपनाते जा रहे हैं। अतः सन्तान तामसी वृत्ति की प्रकट हो जाती है। जो माँ बाप को तंग करती है। तथा धन के लोभ में मार भी देती है। अतः अभी से नवयुवकों को चेत करना श्रेयस्कर होगा।

देखा गया है कि, आजकल के जो गृहस्थ हैं वह अपने घर में मंदिर बनवाकर उसमें भगवान् के विग्रह (किसी भी प्रकार की मूर्ति) स्थापित करते हैं। इससे तो अच्छा है कि, घर में भगवान् का चित्र रखे। क्योंकि इसमें पूजा, पाठ, अर्चनादि समयानुसार न होने से कोई अपराध नहीं होता। परन्तु धातु विग्रह सेवा (मूर्ति पूजा) समय के अनुसार होना परमावश्यक है। घर में पूजा, पाठ, अर्चनादि ठीक समयानुसार होना कठिन है, इसलिए विग्रह सेवा में अपराध होते रहते हैं। मठ–मंदिर में विग्रह सेवा के लिए पुजारी वर्ग नियुक्त किए गए होते हैं, इसलिए वहाँ पर समयानुसार और सुचारु रूप से विग्रह सेवा हो सकती है। परन्तु, घर में भगवान् के चित्र की पूजा ही सर्वोत्तम तथा शान्तिदायक होती है। चित्र के रूप में विग्रह सेवा करने का लाभ धातु विग्रह की सेवा से कम नहीं है! जितना प्रभाव धातु विग्रह का होगा उतना ही चित्र पूजा का होगा, बल्कि धातु विग्रह से भी अधिक होगा। चित्र पूजा में अपराध भी नहीं लगते।

अतः सोच विचार कर धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवनयापन करना श्रेयस्कर होगा।

2

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 1-2-2002

परमश्रद्धेय व आराध्यतम, श्रीनिष्किंचन महाराज के चरणकमलों में दासानुदास अनिरुद्ध- दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम व हरि-भजन के लिए करबद्ध प्रार्थना!

पुरश्चरण और जप

आपके आदेशानुसार पुरश्चरण भजन के लिए कुछ शब्द आपकी असीम कृपा से लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

वृद्धावस्था में पुरश्चरण पूरा होना असम्भव ही रहता है। इसमें बहुत से नियम विधि विधान में न होने से ठाकुर की प्रसन्नता पाना असम्भव ही है। अड़चनें आती रहती हैं। जिससे मन डाँवाडोल रहता है। तैलधारावत् (निरन्तर) जप नहीं हो पाता तो प्रेम जागृत नहीं हो पाता।

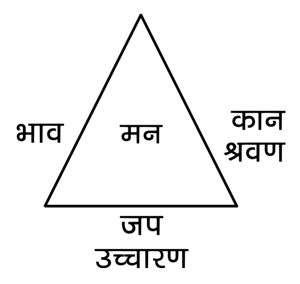
बुढ़ापे का तो सरलतम भजन हरिनाम जप ही है। इसी का पुरश्चरण अनुकूल रहता है। इसमें विधि और नियम रत्तीभर भी नहीं है। लेकिन तैलधारावत् होना भी अत्यन्त जरूरी है। तब ही संसार से वैराग्य प्रत्यक्ष में हृदय में जागृत हो जाता है। यदि अपराध से बचते रहे।

इन्द्रियों में सबसे बड़ा महत्व है कान का, कान से ही संसार बन्धन हुआ एवं कान से ही मुक्ति मिल सकती है। कान के द्वारा ठाकुर दर्शन होता है। कान को मन के साथ जोड़ दिया जाये तो सांसारिक तथा पारमार्थिक सेवा सरल हो जाती है। यदि कान को न जोड़ें तो सब व्यर्थ हो जाता है।

शास्त्र कह रहे हैं, कि शास्त्र श्रवण करो। कथा, कीर्तन श्रवण करो, श्रुतियाँ भी श्रवण का ही महत्व बता रही हैं। श्रवण बिना सब व्यर्थ हो जाता है।

हरिनाम जीभ से उच्चारण हो और कान इसे सुनता रहे, तो घर्षण पैदा होगा। इस घर्षण से विरहाग्नि हृदय में जल उठती है। जिससे रोने का ताता बँध जाता है व संसार से राग (आसक्ति) हट जाती है। प्रेमावस्था जागृत हो जाती है। तो समझिए उद्धार हो गया। जिस किसी साधन से ऐसी अवस्था न आये तो उसका साधन केवल श्रम ही है। किसी को नाम जप से, किसी को कथा श्रवण से, किसी को कीर्तन से, किसी को मन्दिर की सेवा भक्ति से, यह प्रेमावस्था जागृत हो जाती है। यदि इन उक्त भक्ति साधनों से ठाकुर के प्रति आकुलता विकलता न जागृत हो तो समझना चाहिए कि अपराध उपस्थित हैं।

जब चार माला कान से सुनकर हो जाती हैं, तो मन तड़पने लगता है। अश्रुबिन्दु छलकने लग जाते हैं। ठाकुर के प्रति आकर्षण होने लगता है। यह मेरा स्वयं का अनुभव है। Theory से Practical ज्यादा सत्य होता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, कोई करके तो देखे।



उक्त त्रिभुज में मन को जाने का रास्ता मिल ही नहीं सकता। मन का प्रतिबंध ही तो मुख्य है। मन ने ही हमें फँसाया और मन से ही हम छूट सकते हैं। कारण शरीर से जन्म-मरण होता है, यह स्वभाव का शरीर जब ठाकुर के प्रति हो जाता है, तो आवागमन हट जाता है।

भरत की तरह हरिनाम जपना चाहिए–

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
लखन राम सिय कानन बसहीं।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।।

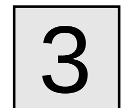
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम नाम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात।।

परमाराध्यतम श्रीगुरुदेव जब धाम पधारने लगे तो उन्होंने मुझे एक पत्र दिया था, जो मौजूद है, कि अनिरुद्ध तुम एक लाख नाम रोज करना। वह कैसे करना होगा ?

While chanting harinam sweetly, listen by ear

अर्थात्, नाम को कानों से सुनकर आतुरता से जपो। तब से मैं इस आदेश का पालन कर जीवनयापन कर रहा हूँ। कृपा कर मेरा पत्र किसी को दिखाना नहीं। प्रवचन में शिक्षा देने में कोई हर्ज नहीं।

संसार झूठा है। सब यहीं रह जाएगा। किया कराया ही साथ जाएगा। यदि अब भी समय निकल गया तो पश्चाताप के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। अब कोई भरोसा नहीं है। कब काल भक्षण कर जाये। अतः शक्ति रहते भजन कर ठाकुर जी से प्यार करने में ही भलाई है। अब करलेंगे, अब करलेंगे... कभी अन्त नहीं आएगा। जल्द ही सम्भलने में फायदा है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3-10-2002

पारमार्थिक प्रश्नोत्तर

भगवान् ने शास्त्रों द्वारा जीवों को अपना जीवन बिताने हेतु रास्ता बता रखा है। तब भी जीव उस रास्ते से चलकर अपना जीवन नहीं बिताता, अतः दुःख भोग करता रहता है। भगवान् का इसमें क्या दोष है ?

प्रश्न– भगवान् किससे खेलते हैं ?

उत्तर– भगवान् भक्तों से खेलते हैं। भक्तों के बिना उनका मन नहीं लगता व भक्तों का भी मन भगवान् के बिना नहीं लगता।

प्रश्न– माया से मुक्ति कैसे मिल सकती है ?

उत्तर– मायापति भगवान् को भजकर ही माया से मुक्ति का अधिकारी बन सकते हैं। भगवान् सबके बाप हैं। सब जीव उनके पुत्र हैं। जब बाप को पुत्र नहीं मानेगा तो बाप उसे अपनी सम्पत्ति का मालिक क्यों बनायेगा ? अतः वह दुःख भोगता ही रहेगा। माया उसे तरह-तरह के दुःख भोग कराती रहेगी।

प्रश्न– जीव का सच्चा घर कहाँ पर है ?

उत्तर– जीव का सच्चा घर भगवान् के चरणकमल रूपी **बृजधाम** ही है। जब तक वह यहाँ नहीं पहुँचेगा, भटकता ही रहेगा।

प्रश्न– जीव अपने सच्चे घर में क्यों नहीं जाना चाहता। ताकि दुःख से छुटकारा मिल जाये ?

उत्तर– असत्संग ही इसका मुख्य कारण है। किसी सच्चे संत का संग मिल जाये तो वह समस्त दुःखों से छूटकर भगवद्चरण में चला जाये। उक्त लेख सन्तों की कृपावर्षण से लिखा गया है। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है।

4

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 8/07/2004

परमाराध्यतम प्रातःस्मरणीय, मेरे हितचिंतक स्नेहास्पद श्री भक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणों में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम एवं भगवद्प्रेम प्राप्ति की असंख्यबार श्रीचरणों में प्रार्थना।

गुरुदेव का अपार वात्सल्य

आपका फोन रघुवीर के पास आया। इससे मुझे परमानन्द की प्राप्ति हुई कि इस दीन-हीन के सिर पर आप जैसे परम सन्त का हाथ है। ठाकुर जी की कृपा बिना सन्त का ध्यान जीव पर जा ही नहीं सकता। श्रीगुरु कृपा मुझ पर सदैव रहती है।

श्रीगुरुदेव की महिमा वर्णन करने का साहस मैं कर रहा हूँ कि कैसे मुझ पर श्रीगुरुदेव की असीम कृपा रही थी और अब भी है।

23 नवम्बर सन् 1952 को 3-4 साल बाद हम पति-पत्नि झूलन यात्रा में श्रीवृन्दावन धाम आए। श्रीगुरुदेव का दर्शन हुआ। गुरुदेव ने श्रीवीरभद्र ब्रह्मचारी को आदेश दिया कि अनिरुद्ध दास को मिर्जापुर धर्मशाला में अच्छा सा कमरा दिला देना। गुरुदेव ने मुझे उनके चरणों में बिठाकर सिर पर हाथ धरा और कहा- "यदि वहाँ कोई कष्ट हो तो मुझे बता देना। प्रसाद व प्रवचन के समय मैं ब्रह्मचारी से बुलवा लिया करुँगा।" मैंने कहा- "आपका मुझ पर कितना प्यार है।" ऐसा कहकर मैं सिसकियों से रोने लगा।

हमने सोचा मठ में गुरुचरणों में चढ़ाने को पैसे तो है नहीं, अतः बाजार में प्रसाद पा लेंगे। मैं पूरी तरह से नियमों से अनभिज्ञ था।

मैं प्रातः मंगला आरती में गया। महाराज जी बरामदे में बैठे रहते थे। सभी वहीं पर परिक्रमा के बाद दण्डवत् करते थे। मैंने भी पत्नी के साथ दण्डवत् किया। उठने पर महाराज जी बोले, 'अरे

ओंकार! तूने कल शाम का प्रसाद कहाँ पाया ?' मैंने कहा, 'बाजार में।' गुरुदेव बोले, 'बाजार में क्या तेरे माँ-बाप का घर है ?' मैं चुप! फिर उन्होंने हम दोनों को चरणों में बिठाया एवं ठोड़ी को अपने करकमल से छूकर बोले- 'क्या कोई अपने बाप के घर पर जाता है, तो घर से खाना लाता है या बाजार में जाकर खाता है ? अरे भोले भंडारी ऐसा नहीं करना चाहिए।'

सभी सन्तगण खड़े-खड़े गुरुजी का वात्सल्य भाव देख रहे थे। गुरुदेव बोले, 'देख अब तेरे पास पैसा नहीं है। जब भगवान् जी तुझे पैसा देवें, तब मठ की सेवा खूब करना। मैं भिखारी सन्त नहीं हूँ। तुम जब भी यहाँ पर आओ, तो कुछ नहीं देना।'

मेरी तनख्वा थोड़ी थी। मैं बिदा होने पर ग्यारह रूपये चरणों में चढ़ाता तो गुरुजी एक रुपया लेकर दस रुपये वापस कर देते थे। कहते थे, 'तुम्हारे पास भाड़ा कम पड़ जाएगा।' इसी प्रकार का प्यार कई बार हुआ। खड़ाऊँ की प्राप्ति, ताऊजी को घर पर दर्शन देना, मेरी पत्नी को दण्डवत् करने और माला पहनाने को मना करना, अन्तिम समय में हमें वृन्दावन बुलाकर अपनी जीवनी सुनाना आदि-आदि अनेक प्रसंग हृदयंगम हैं।

नोट : श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी का पूर्व नाम श्रीओंकार था।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज।।
ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय श्रीकृष्णचरण।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला 19/251, 22/25)

संसार में भ्रमण करते-करते किसी सौभाग्यवान जीव को श्रीगुरु और कृष्ण की कृपा से भक्ति-लता का बीज प्राप्त होता है। उसके फलस्वरुप गुरु की सेवा और कृष्ण का भजन करते-करते वह शीघ्र ही माया के जाल से मुक्त होकर श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को प्राप्त कर लेता है।

5

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 9/07/2004

परमाराध्यतम शुभचिन्तक, श्रीश्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में इस अधम दास अनिरुद्धदास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा हरि भक्ति बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

सभी सन्तों को मेरा बारम्बार दण्डवत् कहने की कृपा करें। मुझे उनकी कृपा का एकमात्र अवलम्बन है।

पावन पादुकाएँ

मेरे गुरुदेव जी साक्षात् वात्सल्यरस सिंधु की कृपामयी मूर्ति हैं। अगस्त सन् 1968 में जब झूलन उत्सव का समय था, तब हम पुत्र रघुवीर सहित गुरु चरणों में श्रीवृन्दावन धाम आये। तनख्वा थोड़ी थी, उधार करके आए।

दोपहर बाद जब सभी आराम कर रहे थे तब हम तीनों श्रीगुरुदेव के कमरे के बाहर चुपचाप बैठ गए। गुरुजी को Disturbance न हो जाये, यह सोचकर लगभग 1/2 घंटा बैठे रहे। गुरुजी तो अन्तर्यामी हैं। उन्होंने किवाड़ खोला और हमें देखते ही बोले, “आपको यहाँ बैठे काफी देर हो गयी। आप अन्दर आ जाओ।”

गुरुजी अपनी शय्या पर बैठकर किसी को पत्र लिख रहे थे और उसे बन्द कर रहे थे। हम दोनों जाकर चरणों में लिपट गए और रोने लगे।

गुरुजी ने अपना करकमल हमारे दोनों के सिर पर रखा और प्यार से बोले–‘आपको क्या तकलीफ है ? रहने की व्यवस्था ठीक नहीं है ?’ हमने कहा ‘नहीं महाराज! आपके चरणों में क्या तकलीफ हो सकती है ?’

गुरुदेव बोले, ‘बताओ! दोनों क्यों रोते हो।’ मैंने कहा–‘मैं आपका राजस्थान में इकलौता शिष्य (बेटा) हूँ। आपके सिवाय मेरा

कोई सहारा नहीं है। मुझे आपकी चरण पादुकाएँ चाहिएँ।' श्रीगुरुदेव ने कहा– 'अनिरुद्ध! मैं किसी को अपने खड़ाऊँ नहीं देता हूँ।' इतना कहते ही मैं जोर–जोर से रोने लगा, तो मैंने देखा कि, मेरे गुरुदेव भी आँसू बहा रहे हैं। रोना सुनकर श्रीपुरी महाराज जी कमरे में घुसे और प्रसंग मालूम किया।

श्रीपुरी महाराज जी महाराज जी को बोले– 'अनिरुद्ध अपना अधिकार माँग रहा है। श्रीराम ने भरत को भी तो पादुकाएँ दी थीं। आप न दोगे तो लो, मैं दे देता हूँ।' उन्होंने गुरुदेव की चरणपादुका उठाकर मेरे सिर पर रख दीं। बस फिर क्या था, मुझे त्रिलोकी का राज्य मिल गया। मैंने निवेदन किया, 'मेरी छुट्‌टी नहीं है। शाम को अजमेर जाना है।' श्रीगुरु महाराज जी ने कहा, 'ठीक है। आते–जाते रहा करो।' मैंने ग्यारह रुपये भेंट चढ़ाए। श्रीगुरुजी ने कहा– 'भाड़ा कम पड़ जाएगा। मैं एक रुपया ले लेता हूँ। जब भगवान् जी आपको देंगे तब मठ की सेवा करना।' इसी प्रकार कई बार श्रीगुरु महाराज बाप से भी ज्यादा खास प्यार करते थे। अमरेश जब तीन माह का था, तब गुरुदेव के पास उसे लिटाकर जब हम प्रसाद पाने चले गए थे तब गुरुदेव ने उसे अपने गोद तक में ले लिया था!

श्रीगुरु–वंदना

श्रीगुरु चरण–पद्‌म, केवल–भक्ति–सद्‌म
वन्दों मुत्रि सावधान मते।
यॅाहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया याई,
कृष्ण–प्राप्ति हय याहा हइते।।



हमारे गुरुदेव के चरणकमल ही एकमात्र साधन हैं जिनके द्वारा हम शुद्ध भक्तिमय सेवा प्राप्त कर सकते हैं। मैं उनके चरणकमलों में अत्यन्त भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होता हूँ। उनकी कृपा से ही जीव भवसागर (भौतिक क्लेश रुपी महासागर) को पार कर सकता है तथा कृष्ण की कृपा प्राप्त कर सकता है।

6

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 18/08/2004

परमश्रद्धेय व आराध्यतम, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में इस विषयी अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम में रुचि बनने हेतु बारम्बार प्रार्थना।

हीरा जनम गँवाया

आपने फोन के माध्यम से मुझ विषयी पामर जीव पर कृपा कर सम्भाल लिया। यह आपकी अहैतुकी कृपा ही है। ठाकुर व श्रीगुरुदेव की कृपादृष्टि होती है, तब ही कोई सन्त जीव पर दृष्टि डालता है।

इस कृपा के लिए मैं अपने तन के चर्म की अनन्तकाल तक जूतियाँ बनाकर पहनाता रहूँ, तो भी किसी जन्म में उऋण नहीं हो सकता।

मेरी कलुषित बुद्धि तथा बिगड़ा हुआ मन आपके सिवाय कौन सुधार सकता है। मन को अनेक क्लेश लगे रहते हैं। फिर भी इस मन को वैराग्य नहीं होता। ठाकुर व सन्त चरण में वह लगना नहीं चाहता। अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ की बातों व धन्धों में गँवाता रहता है।

ठाकुर व श्रीगुरुदेव ने कृपा कर के हमें हरिनाम का अमूल्य रत्न दिया। इसको बेकार समझकर यों ही कूड़े में फेंक दिया। सारा जीवन बेकार गँवा दिया। मन संसार में आनन्द ढूँढता है। वहाँ आनन्द की गंध भी नहीं। उल्टा काँटों में फँस जाता है।

अतः आपकी ही कृपा से मन की जागृति हुई है एवं मन सोच रहा है– जितना खो दिया, सो खो दिया, अब जो हीरा तुम्हारे पास है, उसे आजमाकर तो देखो!

तीन लाख हरिनाम नित्य करने की प्रेरणा हुई है। समय लगता है, परन्तु सन्तों की कृपा से सुचारु रूप से हो रहा है।

शास्त्र मानव को सचेत कर रहा है। चतुर्मास में भजन करना कल्याण का हेतु है। परन्तु, ठाकुर व सन्त कृपा के बिना ऐसा होना असम्भव ही है।

मैंने तो हरिनाम को ही पकड़ रखा है। शिव, नानकदेव, ईसा मसीह, रहमानादि ने नाम से ही उद्धार पाया है।

शास्त्रवचन

1. चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।

2. नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। हरिनाम अवलम्बन एकू।।

3. कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।

4. कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावे लोग।।

5. जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बन्धन काटहिं नर ज्ञानी।।

6. बिबसहुँ जासु नाम नर करहि। जन्म अनेक रचित अघ दहही।।

7. सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव वारिध गौपद इव तरहीं।।

8. यह कलिकाल न साधन दूजा। जोग यज्ञ जप तप व्रत पूजा।।

शास्त्रों में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। जिनसे मेरा मन कुछ जागृत हुआ।

हरिनाम कान से सुनने से कीर्तन व जप दोनों होने से गौरहरि के आदेश का पालन हो जाता है।

ठाकुर जी का वचन है–

मोहे, कपट, छल, छिद्र न भावा।

तब ही तो कलि का तमाशा हो रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में कलह नाच रहा है। मानव के हृदय में, घर–घर में, जाति–जाति में, समाज–समाज में, प्रान्त–प्रान्त में, देश–देश में व सारे संसार में जहाँ देखो वहाँ कलह का राज दिखाई दे रहा है। यहाँ तक कि धर्म क्षेत्रों में भी कलि आकर घुस गया है। इसका खास कारण है,

मालिक (ठाकुर) को भूलना व माया के हाथों में पड़ना। जहाँ होना चाहिए आपस में प्यार, वहाँ तेरा-मेरा होकर कलह नाच रहा है। क्योंकि सभी ठाकुरजी की सन्तानें हैं लेकिन मन में दरारें पड़ गयी **तेरा-मेरा** की। सभी ठाकुरजी का है। बिना बात हक जमाना, दुःख को मोल लेना है। यह दरार मिटेगी **हरिनाम** सुनकर, लेकिन सभी आलस्य में पड़े हैं। कोई आजमाकर देखना ही नहीं चाहता। अरे भाई 4-6 माला करके तो देखो, क्या गुल खिलता है! उक्त अवस्था ठाकुर को खींचकर हृदय में बन्द कर देगी तथा मस्ती में भर देगी।

धर्म का जो भी आयोजन होता है, संसार को रिझाने के लिए होता है। ठाकुर को रिझाने के लिए नहीं होता। अतः ठाकुर को छल कपट सुहाता नहीं। अतः वहाँ **कलह** होता है। कलि की वहाँ दाल गल जाती है। जहाँ सत्यता होगी, वहाँ कलि का प्रवेश हो ही नहीं सकता। वहाँ पर कृष्ण भगवान् का सुदर्शन चक्र घूमता रहता है तो कलह कैसे होगा! कलि महाराज वहाँ पर कैसे आयेंगे ?

भजन बिना कलह निश्चित है। अतः मन को समझाओ कि दुनियाँ जाये भाड़ में, तुम स्वयं को सम्भालो। दुनियाँ अपने कुसंस्कार वश बहती जा रही है। उसकी बाढ़ को रोकना तुम्हारे बस की बात नहीं है। यदि कोई सुधर जाए, तो भगवद् कृपा! जब तुम ही नहीं सुधरे तो दुनियाँ को क्या सुधारोगे? अतः चुप साधना ही उत्तम है।

शास्त्र कहते हैं कि, चतुर्मास में सब देवता सो जाते हैं। परन्तु सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, हवा, अग्नि सब पहले जैसे ही अपने कर्तव्य में नियुक्त हैं। फिर देवता कहाँ सोए ?

इसका मतलब कुछ और ही है, देवता सोते नहीं, 6 माह के विक्षेप से हटकर शान्त समाधि में चले जाते हैं। जहाँ विश्राम होता है वहाँ मन का निरोध हो जाता है। फुर्सत होने से सभी देवता देखते हैं, कि ठाकुर जी की सृष्टि में कहाँ पर क्या हो रहा है और कौन क्या कर रहा है। जो ठाकुर जी (मालिक) को याद कर रहा है उसे आशीर्वाद के रूप में **आनन्दवर्धन** कर देते हैं, एवं जो हाय-धाय में

फंस रहा है उसे और फंसाकर चले जाते हैं। दुःखसागर में डाल जाते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि चारों माह भजन में लीन रहो। अन्य बात मत सोचो, आवागमन से छूटकर भगवद्चरण प्राप्त कर लो।

शरीर क्षणभंगुर है। जितना प्रभु से प्यार करलो उतना ही कम है। सभी धीरे-धीरे मृत्यु की ओर जा रहे हैं एवं एक दिन तुझे भी जाना है। सँभलना ही कल्याणप्रद है, वरना पछतावा ही हाथ लगेगा। मन को ऐसा काबू में कर लो कि अन्त समय में जहाँ लगाओ वहाँ लग जाय अर्थात् हरिनाम को सुनते हुए इस संसार से निकल जाओ। तब ही जीवन का सार है। अन्त समय मन काबू में न रहा तो सारा साधन धूल है, बेकार है।

कर में तो माला फिरे। जीभ फिरे मुख माहि।।
मनवा तो चहुँ दिशि फिरे। यह तो सुमिरन नाहि।।
मनवा सोच जरा मन माहि। यह तो सुमिरन नाहि।।
मानुष देह न बारम्बारा। प्रभु कृपा मिला इस बारा।।
ठाकुर सन्त चरण में लग जा। तेरा आवागमन छुट जाय।।
कोई नहीं रे जग में अपना। ये तो सारा का सारा सपना।।
हरिनाम तू प्रेम से जपना। तेरा साकार हो जाए रे सपना।।

हे निष्किंचन महाराज जी! मैं तो दोषों का भण्डार हूँ। ये दोष मुझे क्षण-क्षण में सता रहे हैं। भजन में बाधा डाल रहे हैं। क्या आप दयालु होकर इन दोषों को मिटायेंगे नहीं? क्या आप मुझे अपना बनायेंगे नहीं? करुणा की चलती-फिरती मूर्ति आप ही तो हैं। जिससे अनभिज्ञ प्राणी जागृति को प्राप्त हो रहे हैं। क्या मुझे जागृति नहीं कराओगे?

गोविन्द जय जय गोपाल जय जय
राधारमण हरि गोविन्द जय जय

प्रार्थना

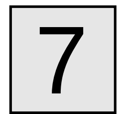
हे गुरु महाराज मुझे निष्किंचन बना दो।
विषयों की ज्वाला मेरे हृदय से बुझा दो।।
श्रीकृष्ण के विरह में रोता रहूँ मैं।
अन्त समय मेरा अब तो निभा दो।।
बार बार करूँ मैं चरणों में प्रार्थना।
हे दयालु करना न मेरी भर्त्सना।।
जग में तेरा ही मुझको जो सहारा।
हे शरणागत अब तो माया से करो छुटकारा।।
जी चाहता है आपके चरणों में चलकर रोऊँ।
सन्त ठाकुर अपना है जो अपने अपनत्व को मैं खोऊँ।।

श्रीशुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उपदेश देते हैं–

कलेर्दोषनिधे राजन् ह्यस्ति एको महान गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त संगः परं व्रजेत।।

(श्रीमद्भागवत 12.3.5)

हे राजन् यद्यपि कलियुग दोषों का सागर है, फिर भी इस युग में एक अच्छा गुण भी है– केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो सकता है और दिव्य धाम को प्राप्त करता है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/09/2004

परमश्रद्धेय आराध्यतम, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में इस विषयलीन अधमाधम अनिरुद्धदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा सप्रेम हरिस्मरण के साथ भजन बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना!

आपकी कृपादृष्टि

आपकी असीम कृपा से मेरा तीन लाख जप नित्य चल रहा है। हरिनाम को सुनकर ही जप का अभ्यास कर रहा हूँ। इससे मन भी लग जाता है। मन इधर-उधर भाग भी जाता है, तो पश्चाताप से फिर रुकने लग जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा भी है, कि 'मन को रोक-कर भजन करना चाहिए' जैसा कि भगवद्गीता के 6 अध्याय के 35 वें **श्लोक** में आश्वासन दिलाया है, कि 'अभ्यास करने से मन रुक जाता है। ऐसा मेरा मत है।' भगवान् सत्य संकल्प हैं, तो मन यदि अभी नहीं रुकता तो मृत्यु के समय में रुकने का सवाल ही नहीं है। कोई कहे उस समय मन को रोक लेंगे तो यह केवल कहने की बात है। मन उसी का रुकेगा जो साधन करते समय रोक सकेगा। मन ही गिराता है एवं मन ही चढ़ाता है।

रामायण में अनेकों उदाहरण हैं कि हरिनाम को जीभ से उच्चारण करो तब ही मन रुक सकता है वरना जप का कोई फल नहीं। श्रीभागवत महापुराण में भी लिखा है, बिना मन रुके जप का कोई मतलब नहीं, केवल श्रम ही है। (केवल सुकृति इकट्ठी होगी तथा सांसारिक लाभ होगा)।

जहाँ मन थोड़ी देर रुका नहीं कि अश्रुधारा बही। अश्रुधारा में **आराध्यदेव** बह कर बाहर आ जाते हैं ऐसा मेरा अनुभव है। ठाकुर तो, मन का उद्देश्य क्या है यह देखते हैं, लौकिक है या अलौकिक!

मैं आपको लिखकर शिक्षा नहीं दे रहा हूँ। यदि ऐसी मेरी भावना है, तो मेरा कभी उद्धार नहीं होगा। मैं तो आपको मेरा भजन मार्ग बताकर स्वयं को उत्साहित करता रहता हूँ। आपको लिखने से मेरा भजन बढ़ता है क्योंकि पत्र पढ़ने पर आपकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर पड़ती है तो ठाकुर की दृष्टि तो अपने आप आपकी कृपा से आ जाती है।

ठाकुर जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है कि, 'सन्त कृपा जिस पर हो जाती है उस पर मेरी कृपा स्वतः ही हो जाती है।' पत्र देने से यदि अपराध होता तो मेरा भजन स्तर गिर जाता। मेरा तो भजन बढ़ता ही है। आपके चरण दर्शन भटिण्डा में कार्तिक मास में कर सकूँगा। आपका व सन्तों का स्मरण ही मेरा भजन बल है। भजन करते समय मेरी तरफ भी ध्यान दे कर आशीर्वाद के रूप में कृपा कर दिया करें। आप ठाकुर के अत्यन्त नजदीक हैं। मैं तो आपके माध्यम से ही ठाकुर चरणों में रहता हूँ। बुढ़ापा ने मुझे सन्त चरणों के दर्शन से दूर कर दिया है।

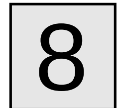
श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 6.35)

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–

हे महाबाहु कुन्तीपुत्र ! निस्सन्देह चंचल मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु निरन्तर अभ्यास द्वारा तथा वैराग्य द्वारा ऐसा सम्भव है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 24/09/2004
एकादशी

परमश्रद्धेय परमाराध्यतम, शिक्षागुरुदेव के चरणकमल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम व हरिनाम सम्पूर्ण होने की करबद्ध प्रार्थना।

मन रुकता है

आपके श्री चरणकमल में मेरे भावों को अर्पण करने में मुझे अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है। जितने क्षण पत्र लिखने में लगते हैं उतना समय आपकी निर्मल आकृति मेरे हृदय पटल पर अंकित रहती है। वहाँ पर आप जब इसे पढ़ेंगे तब आपको मेरा स्मरण होने से मेरा भजन स्तर बढ़ने लगता है। यह आपका अनुग्रह ही मुझे भजन पथ पर चलाता रहता है। मैं यहाँ अकेला आपके श्री चरणों की शरणागति से कृतार्थ हूँ।

रामायण में बहुत ही आकर्षण करने वाली पद्य व चौपाइयाँ है, जिनसे बिना साधुसंग से भी भजन में प्रोत्साहन मिलता रहता है। आपकी कृपा से व ठाकुरजी की प्रेरणा से श्रीरामचरितमानस से विधि, नाम महिमा, सन्त व जप का उत्कर्ष छाँटकर एक सूची तैयार की है। जो ठाकुर जी तथा सन्तों की कृपा से भाव जागृत हुए हैं उन्हें मैं अंकित करने जा रहा हूँ। और आपके श्रीचरणों में आपकी कृपा से अर्पण करने की चेष्टा कर रहा हूँ। नित्य 3 लाख हरिनाम श्रवण द्वारा आपकी असीम कृपा से साधन चल रहा है। श्रवण इन्द्रिय ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी से संसार घुसा है व इसी से परमार्थ (नाम) घुसेगा तो त्रितापों से हटकर जन्म-मरण से छुट्टी होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। मन रुकता है, मन रुकने पर ही हर विषय में सफलता मिलेगी। कहते हैं मन कभी नहीं रुक सकता, बिल्कुल गलत बात है! पत्र लिखने में मन कैसे रुका ?

बिना मन रुके कैसे डिग्री प्राप्त कर ली ? निष्कर्ष निकला, मन का स्वभाव तो एकाग्र होने का है, परन्तु इसमें कमजोरी स्वयं की है। भजन को महत्त्व न देकर संसार को महत्त्व दिया है। इसी वजह से हरिनाम की 4 माला जपने पर भी अश्रुपात नहीं हुआ। ठाकुरजी जापक का ध्येय देखते हैं कि जापक मुझे चाहता है या संसार को चाहता है। बस! भजन में केवल यही रुकावट नजर आती है।

रामायण हरिनाम जपने का रास्ता बता रही है–

1. भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

–यह चौपाई अभ्यास (Training) के लिए है। पहली कक्षा में बैठने वाले के लिए है। धीरे–धीरे मन लगने पर कुछ स्मरण भी होने लगेगा। वरना तो ऊब कर छोड़ देगा।

2. पुलक भरत हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।

–यह चौपाई उसके लिए है जो केवल ठाकुर को ही चाहता है। संसार को केवल जीवन चलाने हेतु ही महत्व देता है।

3. यह कलिकाल मलयातन मन कर देख विचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन उपाय।।

–यह गन्दे विचारों का समय है। अतः हरिनाम से उद्धार पा लेना चाहिए।

4. जेहि विधि कपट कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

सीताजी जीव को हरिनाम जपने की विधि बता रही हैं, कि जीभ से नाम उच्चारण करो जो कान सुनता रहे एवं ठाकुर लीलाओं का ध्यान करते रहोगे तो अन्त में प्रेमप्राप्ति होगी।

5. जासु नाम जपि सुनहुं भवानी। भव बन्धन काटहि नर ज्ञानी।।

–शिवजी भवानी को समझा रहे हैं कि जीभ से नाम जप करके साधु जन संसार का मोचन कर दिया करते हैं।

6. सादर सुमिरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरही।।

–प्रेम से सुनकर जो जप करते हैं वे सहज में ही जन्म मरण से छूटते हैं।

7. जपिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

–भगवान् को साधारण मानव ने देखा नहीं परन्तु प्यार से जपने पर वे हृदय में प्रकट हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वाल्मीकि मुनि हैं, जिन्होंने राम के प्रकट होने से पहिले ही रामायण लिख दी थी।

8. करहू सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालक राखहि महतारी।।

–माँ जैसे दूध पीते शिशु की देखभाल करती है, उसी प्रकार रामजी भक्त की देखभाल करते हैं। उसके सिर पर सुदर्शन चक्र घूमता रहता है।

9. कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तब सुमरन भजन न होई।।

–भजन (ठाकुर की याद) बिना जीवन ही बेकार है।

10. कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दुजा।।

–साधुसंग तथा गुरु कवच पहनकर जीवनयापन करते रहो। कोई संकट अन्दर–बाहर का आ ही नहीं सकता।

सन्त–अपराध

1. सुन मम वचन सत्य अब भाई। हरितोषण वृत्त द्विज सेवकाई।।
अब जानि करहि विप्र अपमाना। जानेसु सन्त अनन्त समाना।।

–सन्त का अपराध भूलकर भी न करना। श्रीराम कहते हैं, सन्त को मेरे समान ही समझना।

2. इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
जो इनको मारा नहिं मरहि। विप्र द्रोह पावक सो जरहि।।

–जो सुदर्शन चक्रादि से नहीं मरता वह साधु द्रोह से भस्मीभूत हो जाता है। अतः यदि साधु ताड़ना भी करे तो भी उनके चरणों में पड़कर प्रार्थना करनी चाहिए।

3. सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा।।
राखहि गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहीं कोइ जगत्राता।।

–सन्त एवं गुरु के क्रोध से कौन रक्षा कर सकता है। यदि ब्रह्मा भी क्रोध करे तो गुरुदेव बचा लेते हैं, परन्तु गुरुदेव क्रोध करें तो त्रिलोकी में कोई बचाने वाला नहीं है।

4. मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भुसुर सेव।
मो समेत विरंचि शिव बस ताके सब देव।।

–जो साधु सन्त की सेवा में रत हैं, तो ब्रह्मा शिवादि सभी देवता उसके वश में रहते हैं। अर्थात् सब प्रसन्न रहते हैं।

5. मुनि तापस जिनते दुख लहहि। ते नरेश बिनु पावक दहही।।
मंगल मूल विप्र परितोषू। दहहि कोटिकुल भुसुर रोषू।।

–सन्तों का क्रोध करोड़ों कुलों का नाश कर देता है।

6. जो अपराध भक्त कर करहिं। राम रोश पावक सो जरई।।

–भक्त अपराध बड़ा खतरनाक है। फिर भी लोग करते रहते हैं, तो आगे भजनवृद्धि होगी कैसे ?

आपसे कोई शास्त्रीय बात छिपी नहीं परन्तु वर्णन करने में मजा आता है। उक्त प्रकार की लगभग 200 पद्य चौपाईयाँ छांटकर अंकित की हैं। इन्हें बार–बार पढ़ने से मन संसार से हटकर साधु व ठाकुर जी की तरफ भागता है। श्रीराम जी ने बहुत बार आश्वासन देकर मन को खींचा है। बुद्धि की विकृति से मन डाँवाडोल रहता है। जिसकी बुद्धि स्थिरता में है उसका मन भी स्थिरता में रहता है। मन बुद्धि की भ्रान्ता नहीं है। यदि बुद्धि हावी हो तो मन कुछ नहीं कर सकता।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

विरहमयी विज्ञप्ति –

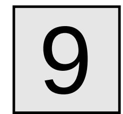
जीवन की आशा छोड़ चला तुम पर हे श्रीगुरु महाराज।
कब श्रीकृपा होगी मुझ पर, भक्ति से दूर हुआ मैं आज।।
बुढ़ापा ने आ घेर लिया, भजन का ह्रास हुआ अपना।
तुम मेरे और मैं तेरा, संसार में कोई नहीं अपना।।
सब स्वारथ के साथी जो यह सारा का सारा है सपना।
त्राहि त्राहि मैं करूँ चरण में अब तो अपनालो भगवन्।।
मानुष जन्म अकारथ जावे सर्वस्व कर दिया मैंने अर्पण।
दया करो हे करुणासागर अब तो राखो मोहि चरणन।।

भगवान् श्रीकृष्ण का श्रीउद्धव के प्रति उपदेश

शब्द ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः।।

(श्रीमद्‌भागवत 11.11.18)

यदि कोई गहन अध्ययन करके वैदिक साहित्य के पठन–पाठन में तो निपुण बन जाता है, किन्तु निरन्तर हरिनाम स्मरण के द्वारा मन को रोक कर उसे भगवान् में स्थिर नहीं करता, तो उसका श्रम वैसा ही होता है, जिस तरह दूध न देने वाली गाय की रखवाली करने में अत्यधिक श्रम करने वाले व्यक्ति का। दूसरे शब्दों में, मन को रोके बिना ज्ञान के श्रमपूर्ण अध्ययन का फल कोरा श्रम ही निकलता है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 19/10/2004

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणकमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

नाम जपने का शास्त्रीय तरीका

1. नाम जीह जपि जागहि जोगी। (जीभ)
बिरत बिरंच प्रपंच वियोगी।।

2. पुलक गात हिय सिय रघुवीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।। (जीभ)

3. बैठे देखि कुशासन जटा मुकुट कृसगात।
राम नाम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।।

(जीभ से नाम जप रहे हैं एवं आँखों से अश्रुधारा बह रही है)

4. बिबसहुँ जासु नाम नर कहही। जन्म अनेक रचित अघ दहही।।
सादर सुमिरन जो नर करही। भव वारिध गोपद इव तरही।।
(प्रेम से)

5. कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहि पारा।।

6. जपिए नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।
जाकर नाम मरन मुख आवा।
अधमहुँ मुक्त होई श्रुति गावा।।

(अतः नाम का अभ्यास करना अति आवश्यक है)

7. कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

8. उल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

(कैसे भी जपो परन्तु मन से जपो। संसार याद न आये)

9. मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद गिरा नयन बहे नीरा।।

(उक्त प्रकार से हरिनाम सुनकर मन निश्चित ही वश में होता है)

10. श्री रघुवीर नाम तजि नाहिन आन उपाय।।

(नाम के बिना अन्य उपाय नहीं)

11. नाम प्रभाव जान शिवजी को।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को।।

(नाम का प्रभाव शिवजी ही जानते हैं, जिनके लिए हलाहल जहर अमृत बना)।

12. भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

(यह पहली कक्षा के लिए है, ताकि धीरे धीरे मन नाम में लग जाये। इससे प्रेम प्राप्ति नहीं होगी। संसार की इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी)।

13. जाना चहहि गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ।।

(जानना चाहते हो तो हरिनाम को जपकर देखो, फिर देखो क्या गुल खिलते हैं! अष्ट सिद्धि, नवनिधि हस्तगत हो जाएँगी। जैसे हनुमान जी को हुई। दूर की वस्तु देखना, दूर का सुनाई देना आदि। अनेकों उदाहरण हैं, यह तो 10% भी नहीं है।

शीघ्र नाम की कृपा लेने के लिए महत् पुरुषों (सन्तों) की सेवा परमावश्यक है। वह तन से मन से तथा धन से होनी चाहिए।

सन्त सेवा के शास्त्रीय प्रमाण सहित उदाहरण–

1. सन्त चरण पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा।।

(सन्त समागम होने से ही तो भजन में दृढ़ता आयेगी)।

2. सुन मम वचन सत्य अब भाई। हरितोषण वृत्त द्विज सेवकाई।।
अब जानि करहि विप्र अपमाना। मम कुदृष्टि होय तुम जाना।।
3. इंद्र कुलिश मम शूल विशाला। काल दंड हरिचक्र कराला।।
जो इनको मारा नहीं मरहि। विप्र द्रोह पावक सो जरहि।।

(अम्बरीश, दुर्वासा प्रसंग)

(सन्त का अपराध भगवान् को सहन नहीं होता)

4. सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम।।

(सन्त महत् पुरुषों में जिनको प्रेम हो गया, समझो वे ठाकुर के हो गये)।

5. गिरजा सन्त समागम सम न लाभ कछु आन।
बिन हरि कृपा न होय सो गावहि वेद पुराण।।

(ठाकुर जी की कृपा ही सन्तों को घेर कर लाती है। अपने सामर्थ्य से नहीं)।

6. सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकहु बारा।।

(सच्चे संत का एक क्षण का संग मन को पलट देता है)।

7. भूपति भावी मिटहि नहिं जदपि न दूषण तोर।
किए अन्यथा होई नहिं विप्र शाप अति घोर।।

(सन्त का शाप ठाकुरजी भी नहीं मिटा सकते)।

8. भक्ति तात अनुपम सुख मूला। मिलई जो सन्त होय अनुकूला।।

(ज्ञानमार्गीय सन्त न मिलकर भक्ति मार्गीय सन्त मिल जाए तो आनन्द के समुद्र में ज्वार भाटा आ जाए)।

9. मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसर सेव।
मो समेत विरंचि शिव बस ताके सब देव।।

सन्तों से प्रेम करने के अनेकों उदाहरण हैं जिनसे ठाकुर को आना पड़ता है। 1% ही लिखने में आए हैं। जो सन्तों से तो दूर रहते हैं और घर में भजन करते हैं। उनको ऐसा ही समझना चाहिए जैसे मिट्टी से तेल निकालना चाहते हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव जी की बाहें घुटनों से नीचे तक लम्बी थीं। उन्हें श्रीकृष्ण जी ने गोलोक से अपना कल्याण करने के लिए भेजा था। ठाकुर जी की कृपा से जयपुर में सदैव फुर्सत पर रहने के कारण सदा उनके चरणों में बैठने का मौका मिला। हर मठ स्थापित करने के लिए 3 बार श्री विग्रह देखने के लिए उन्हें जयपुर आना पड़ता था। जब बड़ा लड़का रघुवीर 5–6 वर्ष का ही था वह भी संग में बैठा सुनता रहता था। अतः उस पर भी अच्छे संस्कार का प्रभाव हो गया। तीनों बच्चों को उमर के 12–13 साल के लगभग दीक्षा का मौका मिल गया। अतः सन्तों में प्रेम हो गया। सन्त सेवा से ही घर पर आनन्द ही आनन्द रहता है।

भक्ति प्राप्त करने के लिए शुद्ध कमाई का पैसा घर पर आ जाये तथा सन्तों की कृपा हो जाये तो समझना चाहिए कि अब जन्म–मरण छूटने का समय नजदीक आ गया। यह शास्त्र वचन है।

गुरुजी का मेरे लिए आदेश भी ऐसा ही था जो ठाकुर जी ने निभा दिया एवं अब भी तीनों बच्चों से निभ रहा है। पसीने का धन हृदय को निर्मल बनाता है। किसी भी प्राणी को कष्ट देकर कोई ठाकुर जी को प्रसन्न कर सकता है ? कदापि नहीं। ठाकुर जी को धोखा देता है। शुद्ध पैसा ही भक्ति प्राप्त करने की L.K.G. Class है। इसमें उत्तीर्ण होने पर ही U.K.G में बैठा जा सकता है। यह Class ही सन्तों से नाता जोड़ती है।

मेरे लिखे पत्रों पर आपको संशय होता है, कि यह जो पत्र लिखे जाते हैं, कहीं–कहीं वाक्य पंक्तियाँ शास्त्र सम्मत मालूम नहीं पड़ती। आपके चरणकमलों में करबद्ध प्रार्थना है कि जो भी मैं पत्र डालूँगा शास्त्रसम्मत ही होगा। अनन्त कोटि शास्त्र हैं, जिनको

एक व्यक्ति पूरी उम्र भर में भी पढ़ नहीं सकता। अतः संशय होना स्वाभाविक ही है।

आप कहेंगे कि मैंने ऐसा **गुरु कवच** पढ़ा ही नहीं। श्रीवाल्मीकि मुनि ने वाल्मीकि रामायण के अलावा अनेक शास्त्र लिखे जो वर्तमान में अप्रकट हो गए। जिसका कारण मुसलमान शासक तथा नास्तिक युग था। वाल्मीकि तो त्रेतायुग के आरम्भ में प्रकट हुए थे। इतने लम्बे समय के बाद कोई भी वस्तु का प्रकट रहना सम्भव बात नहीं है। जिन्होंने श्रीराम जी के प्रकट होने के बहुत समय पहले ही वाल्मीकि रामायण की रचना कर दी थी। वाल्मीकि जी ने राम जी के सुपुत्रों लव–कुश पर गुरु कवच का प्रयोग किया था। जो कवच हनुमान जी से, भरत–लक्ष्मणादि से टूट नहीं सका। अन्त में हारकर राम जी को लड़ने के लिए जाना पड़ा ताकि यज्ञ हेतु घोड़ा छीनकर अयोध्या में ले आयें। परन्तु गुरु कवच श्रीराम भी नहीं तोड़ सके। अन्ततोगत्वा श्रीवाल्मीकि की शरण में जाने से ही लव–कुश ने घोड़ा मुक्त किया। तब यज्ञ सम्पूर्ण किया। यह गुरु कवच मैंने स्वयं प्रयोग करके देखा है। जब भी काम हावी हुआ, जब पुरश्चरण किया तो प्रत्यक्ष में काम का आवेग शरीर से उतरता हुआ अनुभव हुआ। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कोई भी प्रयोग करके देखे। प्रभु की प्रेरणा भी शत–प्रतिशत सत्य होती देखी गई है। प्रभु कृपा करके भक्त को बुद्धियोग देते रहते हैं। जो शास्त्र सम्मत ही होता है।

मेरा स्वभाव दार्शनिक है। जब तक मैं किसी विषय को स्वयं आजमाकर नहीं देख लेता, तब तक मैं उसे मानने को तैयार नहीं होता। यही विज्ञान की शैली है। शास्त्र की हर पंक्ति को गहराई से हृदयगम्य करने पर ही उसका निचोड़ निकलता है। तब स्वतः ही पूर्ण श्रद्धा उस पर हो जाती है।

हरिनाम चारु चिंतामणि है। जैसी चिन्ता याने स्मरण होगा वही वस्तु उसको मिल जायेगी। संसार का चिन्तन संसार का लाभ करा देगा एवं आध्यात्मिक चिन्तन (स्मरण) जन्म–मरण से छुड़वा

देगा। इसमें तर्क की कोई थोड़ी भी गुंजाईश नहीं है। लेकिन अभ्यास परमावश्यक है। अभ्यास से सब कुछ सम्भव है। बिना अभ्यास किये संसार का ही काम नहीं होता तो आध्यात्मिक काम कैसे हो सकता है ?

नोट– नृसिंह भगवान् का चिन्तन करते हुए हरिनाम जपने से अन्दर बाहर के सब शत्रु (दोष) शमन हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है भक्त प्रह्लाद।

श्रीकृष्ण नाम के अनुशीलन की प्रणाली

स्यात्कृष्णनामचरितादिसिताप्यविद्या–
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा
स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गद्मूल हन्त्री।।

कृष्ण का पवित्र नाम, चरित्रादि मिश्री के समान आध्यात्मिक रूप से मधुर हैं। यद्यपि अविद्या रूपी पीलिया रोग से ग्रस्त रोगी की जीभ किसी भी मीठी वस्तु का स्वाद नहीं ले सकती, जो कि उस रोगी के लिए वही एकमात्र ओषधि है। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि इन मधुर नामों का नित्य सावधानी पूर्वक कीर्तन करने से उसकी जीभ में प्राकृतिक स्वाद जागृत हो उठता है और उसका रोग धीरे–धीरे समूल नष्ट हो जाता है।

10

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

पांचूडाला (छींड)
दि. 20/12/2005

परमाराध्यतम स्नेहास्पद, शिक्षागुरु जी श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणारविंद में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग अनन्त कोटि दण्डवत् प्रणाम एवं कृष्णप्रेम प्राप्ति की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

चेत रे मन!

आपके चरण दर्शन, स्पर्श व वार्तालाप हुए युग बीत गए। मन की प्यास अकुलाहट में बदल गयी। कब आपका दर्शन सुलभ हो सकेगा। मैं कोटा से गाँव आ गया हूँ, यदि आपकी कृपादृष्टि बन जाये तो आपका यहाँ पधारना मेरे लिए श्रेयस्कर बन जाये।

जीवन की गाड़ी स्टेशन पर आ चुकी है। कब हॉर्न बज जाय! गाड़ी चल दे, फिर लौटना मुश्किल! फिर मिलना मुश्किल!

मानुष जन्म न बारम्बारा।
मिला अब है प्रभु कृपा अपारा।

संसार को खूब देखा टटोला परन्तु सब जगह धोखा! अब भी सम्भल जा रे मन फिर दुबारा मानुष तन मिलने का नहीं। समय तेजी से गुजर रहा है। फिर हाथ नहीं आने का। अन्त में पछ्ताना पड़ेगा। सब धरा रह जाएगा। हाथ मलता रह जाएगा। अब भी समझ रे मूर्ख मन!

आँख गई! कान गए! सिर के बाल सफेद हो गए! पैर गए! लड़खड़ाहट में सो गए! परन्तु हे मन, तेरा कुछ न गया। केवल समय चला गया। बचपन गया! जवानी गयी! बुढ़ापा ने आ घेर लिया। परन्तु तेरी समझ को क्या हो गया ? हँसकर जाना था, रोता हुआ चला गया। आँख बन्द है तेरी, कब खुलेगी आँख ? अन्त में रोएगा। मन बड़ा पाजी है,

मन के कहे न चलिए जो चाहे कल्याण!

कितना सरल रास्ता है, जो ठाकुर जी ने कलियुग के जीवों के लिए दिया। फिर कितना सौभाग्यशाली युग है जिसमें गौरहरि दया सिन्धु का प्राकट्य हुआ। कल्पवृक्ष के नीचे हमें सहारा मिला। कितने भाग्यशाली हम हुए जो गौरहरि का प्यार मिला। कितना बड़ा भाग्य हम लोगों का जो इतने प्रभावशाली गुरुदेव मिले। कितने भाग्यवान् हम हैं कि कितना बड़ा गुरु परिवार मिला जो ठाकुर जी के प्यार में जीवनयापन किया। फिर भी इसे कुछ न समझा एवं समय गुजार कर बुढ़ापे तक पहुँच गये। अब इन्द्रियाँ बेकाबू हो गयीं। फिर भी समय है, जरा चेत रे मन– अब भी तेरे हाथ में सब कुछ है। सम्राट् खटवांग जी ने तो ढाई घड़ी में ठाकुर को पा लिया था, क्या तू नहीं पा सकता ? बस थोड़ी आँखें खोलले। आतुरता से पुकार, ठाकुर तेरे सामने हाथ पसारे खड़े हैं। तू ही मुँह मोड़कर खड़ा है। वे तो लेने को तैयार हैं। सब उनके बच्चे हैं। बच्चा रोएगा ही नहीं तो माँ उसे कैसे गोद में उठाकर दूध पिलाएगी!

रोना अमृत की खान है। इस खान में अद्‌भुत रत्न भरे पड़े हैं! जरा ठाकुर के चरणों में रोकर तो देखो। फिर क्या गुल खिलते हैं! मन को वश करने का केवल एक ही रास्ता है, रोना गिड़गिड़ाना। फिर ठाकुर जी रह नहीं सकते। वे दयालु हैं। वे रोना सह नहीं सकते। उनका हृदय अकुला उठता है। सब काम छोड़कर आँसुओं की धारा में बहकर टपक पड़ते हैं। जरा रोकर तो देखो!

रोना भी सहज बात नहीं है। वह आता तब है जब चारों ओर से हाथ छूट जाते हैं। कोई सहारा नहीं रहता। मौत सामने खड़ी दिखती है। बस! फिर तो रोना निश्चित है। गजेन्द्र, द्रोपदी आदि कई उदाहरण मौजूद हैं। ठाकुरजी को हँसकर किसी ने नहीं पाया। हँसने में ताकत नहीं है। रोने में असीम ताकत है। जो पत्थर को भी पिघला देती है। यदि नाम में रोना नहीं आया तो समझलो निस्तार होने में पूरा सन्देह है। रोए बिना कपट हटेगा ही नहीं। रोना हृदय दर्पण को स्वच्छ

बना देता है। इसके आगे कोई मांग नहीं। मांग है तो केवल रोने की, रोने में जो अलौकिक मजा है वह और किसी में नहीं!

श्रीगौरहरि कितने रोए। यह रोना संसारी नहीं पारलौकिक है। जो हमें गौरहरि स्वयं भक्त बनकर सिखा रहे हैं।

पत्र बड़ा है, क्षमा करना प्रभुजी!! आज दिल खोलकर मन रोता जा रहा है। यह क्षण मेरे लिए अद्वितीय है। जिसमें आप मेरे सामने बैठे देख रहे हो एवं मन में भी हँसते जा रहे हो कि यह भी कैसा अजनबी है! जो मुझे ऐसी बातें लिख रहा है। मुझे मालूम है–मेरा मन पाजी है, पागल है, मूर्ख है, जो इतने महान गुरुदेव को समझाने बैठा है।

आपके चरणों में बैठकर अपने अरमान लिखने में मुझे सन्तोष तथा मजा आता है। किसको सुनाऊँ मेरी जीवन गाथा और तो कोई सुनने वाला नहीं जिसे मैं सुनाने बैठूँ।

नाम जपने की उक्ति–

1. सादर सुमिरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरहि।।

–जपना हो तो प्यार से जपो, आदर से जपो, रोकर जपो, तब तो है फायदा वरना है श्रम!

2. बैठ देख कुशासन जटा मुकुट कृस गात।
राम नाम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।।

–नाम के साथ रोना परमावश्यक है। तब ही कुछ मिल सकेगा।

3. जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होय सुखारी।।

सबसे बड़ा–कुसंकट है मन का वश में न होना। जो रोने से वश में आ जाता है।

4. पुलक गात हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।

–भरत का तन पुलकित हो रहा है एवं आँखों से आँसू बह रहे हैं। यह है जपना।

5. जपिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

–जब प्रेमसहित नाम उच्चारण होगा तो स्वतः ही ठाकुरजी का दर्शन होगा ही।

6. जासु नाम सुमरत इकबारा। उतरहि नर भवसिंधु अपारा।।

सुमरत मतलब–प्यार से, मन से (शुद्ध नाम) एकबार ही जपने से भवसिन्धु पार हो जाता है। दो बार नाम लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अन्त समय में नाम नौका पार करा देती है।

7. राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
जो एकबार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय।।

–दसों इन्द्रियों को एक जगह करके जो नाम जपता है वही सफल होता है। दशरथ मतलब दस इन्द्रियाँ।

8. मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्‌गद गिरा नैन बहे नीरा।।
काम आदि मद दम न जाके। तात निरन्तर बस में ताके।।

उक्त प्रकार से जप का विधान है वरना सब श्रम तथा कपट है।

विपत्ति तब ही समझें जब भजन साधन में मन न लगे।

उदाहरण – **कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई।**
जब तब सुमरन भजन न होई।।

नारायण कवच, राधा कवच, विष्णु कवच आदि तोड़े जा सकते हैं। परन्तु गुरु कवच किसी से नहीं टूटता। इसका उदाहरण है लव–कुश। गुरु वाल्मीकि ने यह कवच उन्हें पहनाया था। राम भी गुरु कवच नहीं तोड़ सके, जब लव–कुश ने यज्ञ का घोड़ा बांध लिया था।

उदाहरण–

कवच अभेद सत्‌गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
जे गुरुचरण रेणु शिर धरहि। ते जन सकल विभव वस करहि।।

जिसने गुरु को प्रसन्न कर लिया उसने जग को वश में कर लिया।

11

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 21/06/2005

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, श्रीनिष्किंचन महाराज जी के चरण कमल में अधमाधम दासानुदास का अनन्त कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा चतुर्मास में 4 करोड़ जप करने की शक्ति प्रदान करने की बारम्बार प्रार्थना।

चतुर्मास में 4 करोड़ हरिनाम

आपके छींड छोड़ने के बाद मेरा मन अशान्त हो गया। मन एक क्षण लगना दूभर हो गया। फिर ठाकुर जी से प्रार्थना करके मन को शान्त किया और हरिनाम का सहारा लेकर समय बिता रहा हूँ। सन्त ही मेरे सर्वस्व हैं। सन्त ही मेरा अपना परिवार है। सन्त कृपा से व ठाकुर की करुणा से मेरा परिवार अनुगमन करता है।

प्रभु प्रेरित होकर एवं आप सन्त वर्ग का सहारा लेकर चतुर्मास में 4 करोड़ हरिनाम जप करने का उत्साह हो गया है। 1 माह में 1 करोड़ जप पूरा करने से 4 माह में 4 करोड़ जप हो जाता है। नित्य 3 लाख हरिनाम के साथ कुछ माला ज्यादा करने से 1 माह में 1 करोड़ जप हो जायेगा। बीच-बीच में भागवत पाठ भी करना हो जायेगा।

मैं जगन्नाथ रथयात्रा महोत्सव पर आ नहीं पाऊँगा। मेरी असमर्थता है, यहीं से रथयात्रा का दर्शन कर लूँगा। आप तो जाओगे ही! मेरी तरफ से भी जगन्नाथ जी, बलदेव जी तथा सुभद्रा जी से प्रेमाभक्ति देने की प्रार्थना कर देना और ठाकुर जी से कह देना कि असमर्थता के कारण अनिरुद्ध दास आ नहीं सका।

जब आपके पास समय हो तो छींड में आ जायें। वातावरण बहुत सुन्दर बन गया है। ठाकुर में मन लगने का उद्दीपन भाव

जागृत होगा। कोयल, मोर, पपीहा आदि रात दिन कूंक रहे हैं। मेघ गर्जन कर रहे हैं और ठाकुर जी की याद दिला रहे हैं।

किनारे पर खड़े हैं। कभी भी किनारा खिसक सकता है। अतः ठाकुर का सहारा लेकर भजन द्वारा पुकारते रहें। यही सार है, बाकी सब तो बेकार है, पार जाना असम्भव ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा

न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम्।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम्।।
न नामसदृशस्त्यागो न नामसदृशः शमः।
न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः।।
नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः।
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः।।
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः।
नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः।।
नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः।।

(आदिपुराण)

नाम के समान न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है, न फल है, न दान है, न शम है, न पुण्य है और न कोई आश्रय है। नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम शान्ति है, नाम ही परम निष्ठा है, नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम बुद्धि है, नाम ही परम प्रीति है, नाम ही परम स्मृति है, नाम ही जीव की गति है, नाम ही प्रभु है, नाम ही परम आराध्य है और नाम ही परम गुरु है।

12

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चूरू, राजस्थान
दि. 20/07/2005

चतुर्मास में भजन का फल करोड़ों गुणा अधिक

श्रीहरिवल्लभ व हरिप्रसाद जी,

भक्ति साधकों के प्रति इस अधमाधम दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम तथा चतुर्मास में हरिनाम साधन करने की प्रार्थना।

आप भौतिक संसार छोड़कर मठ में हरिभजन करने आए हैं, तो अपना सच्चा स्वार्थ विचार कर मन से हरिनाम जपने में लग जाना चाहिए। अभी आप नवयुवक हैं। सब तरह की सामर्थ्य है। बहुत देर तक एक आसन पर बैठकर साधन कर सकते हैं। अमूल्य समय को विचार कर समय नष्ट करना बड़ी भारी भूल है। समय चला जाएगा फिर हाथ नहीं आयेगा। केवल पछतावा हाथ लगेगा। हरिभजन मन से न करने से आन्तरिक दुश्मन आप पर हावी होते रहेंगे। मन से भजन करने से बुरे विचारों को दिल में ठहरने का मौका ही नहीं मिल सकेगा। जिस साध्य के लिए घर छोड़ा है वह साध्य हासिल करना सर्वोत्तम कार्य है।

दि. 17 से चतुर्मास चल रहा है। 4 माह में चार करोड़ जप कर लेना चाहिए। लगभग 214 माला रोज करने से चार माह में चार करोड़ जप हो जाता है। 1 माला में लगभग 3 मिनट का समय लगता है अगर जीभ से उच्चारण हो तथा कान उसे सुनता रहे। लगभग 3 घंटे में 1 लाख जप हो जाता है। यदि इतना न कर सको तो आधा ही कर लें। लेकिन इसका दुबारा विचार कर लेने में भलाई है। आधा न हो तो चौथाई ही करें।

3 बजे उठकर प्रातः 6.00 बजे तक 1 लाख नाम आसानी से हो जाता है। मठ का काम भी करें एवं जप भी करें। मठ का काम छोड़कर जप करना नुकसानकारक होगा।

यदि हरिनाम में मन लगाकर जप नहीं हुआ तो न ठाकुर की कृपा मिलेगी, न विकलता होगी, न आतुरता होगी और न कुछ मिलेगा। इसके शास्त्रों में कई उदाहरण स्पष्ट लिखे हैं।

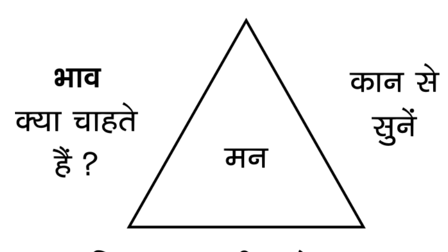
जब तक ठाकुर के लिए अश्रुपात नहीं होगा, तब तक हरिनाम का जपना नहीं हुआ, केवल नाटकबाजी ही हो पायी। शास्त्र आदेश दे रहा है– कथा श्रवण करो, नाम श्रवण करो। ऐसा न हुआ तो केवल कैतव (कपट) ही है।

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

नाम चाहे कैसे भी जपो, दसों दिशाओं में मंगल कर देगा। क्योंकि मन जहाँ भी हरिनाम को लेकर जायेगा वहाँ का कल्याण कर देगा। जैसे मन दुकान पर चला गया तो दुकान में मुनाफा हो जायेगा आदि आदि। हरिनाम चारु चिन्तामणि है। चारु का अर्थ है अच्छी प्रकार से। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में फायदा हो जायेगा। नाम वांछा–कल्पतरु है। जैसी कामना होगी वैसी पूर्ति कर देगा नाम!

लेकिन इस तरह का जप केवल उनके लिए है, जो अभी–अभी हरिनाम से दीक्षित हुए हैं। अर्थात् पहली–दूसरी कक्षा वालों के लिए है। प्रथम में तो ऐसा ही जप होता है। यह ट्रेनिंग की क्लास है।

हरिनाम लाख–लाख करते हुए बूढ़े हो जाते हैं। परन्तु कुछ मन को शान्ति नहीं है और कहते सुना है कि 20 साल से हरिनाम कर रहे हैं, परन्तु कोई फायदा नहीं नजर आया। इसका मुख्य कारण है, नाम को ठाकुर चिन्तन के बिना जपा है। भौतिक लाभ अवश्य हुआ है। परन्तु उसकी तरफ जापक का ध्यान ही नहीं गया।



हरिनाम का जीभ से उच्चारण

इस प्रकार से हरिनाम जपने से मन कहीं जा ही नहीं सकता। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई जप करके तो देखे। प्रथम 5 नाम में मन लगायें, बाद में 10 नाम में। इस तरह से बढ़ाते जायें तो एक माला 1 माह में सरलता से हो सकती है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। अर्जुन को भी श्रीकृष्ण ने अभ्यास करने को ही कहा है। धीरे-धीरे मन को आनन्द आने लगेगा, क्योंकि हरिनाम में आनन्द भरा पड़ा है। मन का स्वभाव ही है, कि जिसमें ज्यादा आनन्द मिलता है, वही लग जाता है।

वैसे दार्शनिक सिद्धान्त भी है कि दो चीजों का घर्षण तीसरी चीज पैदा कर देता है। ऑक्सीजन + हाइड्रोजन का घर्षण पानी पैदा कर देता है। दिया सलाई का घर्षण आग पैदा कर देता है।

इसी तरह जीभ-शब्द का उच्चारण एवं कान से सुनने का घर्षण विरहाग्नि पैदा कर देता है। यही कीर्तन का महत्त्व है। इसलिए श्रीगौरहरि ने कलियुग में सबको कीर्तन करने को कहा है। क्योंकि कीर्तन कान में जाकर घर्षण पैदा करता है।

अगर कोई कहे कि मन नहीं लगता तो सरासर झूठ है। जब आप पत्र लिखते हैं, तब मन आधा-पौन घंटे कैसे लग जाता है। बी. ए. की डिग्री, बिना मन लगे कैसे प्राप्त कर ली!

इसका मतलब है, मन तो लगता है, परन्तु, हम मन लगाने में अवहेलना कर जाते हैं। इसका महत्त्व नहीं समझते। अरे! हरिनाम से क्या नहीं मिल जाता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वतः ही मिल जाते हैं। जन्म-मरण जो बहुत दुखदाई है, इससे हमेशा के

लिए छुटकारा हो जाता है। संसार तो दुःखों का घर है ऐसा समझकर मन को समझाना चाहिए। तब मन लगने लगेगा। कोई आजमाकर तो देखे, क्या गुल खिलते हैं!

1966 में मेरे गुरुदेव का लिखित आदेश मेरे लिए था।

Chant harinam sweetly & listen by ear.

हरिनाम को प्रेम से जपो तथा कान से सुनो।

सादर सुमिरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरहि।।

हूबहू कॉपी श्रीतुलसीदास जी ने रामायण में अंकित की है।

(दोनों भाव एक ही हैं)

भरत का जपना–

पुलकित गात हिय सिय रघुवीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
जीह नाम जप जागहि जोगी। (जीभ से)
निरत विरंच प्रपंच वियोगी।।

जागहि मतलब संसार झूठा है, अर्थात् ज्ञान हो जाता है। संसार से मन हट जाता है तथा ठाकुर में लग जाता हैं।

श्रीराम अपनी प्रजा को उपदेश कर रहे हैं–

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
ताकी करूँ सदा रखवारी। जिमि बालक राखहि महतारी।।

इस प्रकार अनन्त उदाहरण हैं। यह है पूर्ण शरणागति का उदाहरण। जब तक शरीर पुलक नहीं होगा तब तक शरणागति होगी ही नहीं। नाम को कान से सुनने से अवश्यमेव रोना प्रकट होता है। वैराग्य का जन्म हो जाता है। अर्थात् संसार मन से हटने लगता है।

जाना चहिए गूढ़ गति जेऊँ। जीह नाम जप जानहि तेहुँ।।

जीभ से जप करके तो देखो, क्या गुल खिलते हैं! वरना सारा जीवन चला जाएगा, कुछ मिलने वाला नहीं है। जब बुढ़ापा आ घेरेगा। पछताना पड़ेगा।

कम से कम एक करोड़ तो हरिनाम कर लेना चाहिए चतुर्मास के पूरे 4 माह में।

मैं चुरु में अमरेश के पास 6 अगस्त तक रहूँगा। आप एक पत्र यहाँ पते पर डाल दें, फिर गाँव चला जाऊँगा। वहाँ पर पुरश्चरण करूँगा। अभी यहाँ पर पुरश्चरण चल रहा है। नित्य 3 लाख हरिनाम जप हो रहा है।

काल मण्डरा रहा है, कभी भी आकर दबोच लेगा। एहसान समझें कि अभी तो जवानी है। अगर ऐसा सोचेंगे कि, देखा जायेगा, बाद में भजन कर लेंगे। बाद में तो बाद है, कोई भरोसा है कि अगले क्षण क्या होने वाला है ? अगली साँस आयी न आयी। शुभ काम में ढील नहीं करनी चाहिए। अशुभ काम को टालने में लाभ है। मठ की सेवा करते रहने से शीघ्र श्रेयता मिल जाती है। मठ में रहते हुए निठल्ला बनना महाअपराध है। जितनी सेवा बन सके उतनी सेवा करते रहें व भजन के लिए भी समय निकालकर अनुष्ठान करें। चतुर्मास में भजन का फल करोड़ों गुणा मिल जाता है, क्योंकि देवता विश्राम पर रहते हैं, तो उनका ध्यान भजनशील पर शीघ्र जाता रहता है। भजन में मदद मिलती है, आशीर्वाद मिलता है, समय भी अनुकूल रहता है। न गर्मी, न सर्दी, वातावरण में बादलों की गर्जना, पपीहा की पीपी, कोयल की कूंक, मोर की आवाज आदि उद्दीपन भाव उत्पन्न करता रहता है। समय को नष्ट कर अपना नाश मत करो, अगला जन्म मानव का ही मिले गारंटी नहीं। इसी जन्म में अपना उद्धार कर लें।

मैंने 17 जुलाई से पुरश्चरण आरम्भ कर दिया है। अब आप पत्र पढ़ते ही शुरू करलें, कुछ आगे तक कर लेना। पत्र को ठाकुर प्रेरित समझना। मैं किस लायक हूँ, जो आपको भजन में लगा सकूँ। यह सब ठाकुर कृपा आप पर हो रही है।

भजन होने पर मुझे बार-बार लिखकर बताते रहें।

नोट :- हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र आदि) को जीभ से ही जपना चाहिए तथा गोपाल मंत्र आदि मानसिक रूप से जपना चाहिए।

13

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चूरू
दि. 29/07/2005

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा चातुर्मास अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पूर्ण होने के लिए करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् हरिनाम जापक को भक्त के हृदयरूपी झरोखे से देखते हैं

ठाकुर राधामाधव जी की प्रेरणा से प्रेरित होकर आपके करकमल में स्वर्ण अक्षरों में लेख लिखकर सेवा भाव से प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप मेरे शिक्षा गुरुदेव हैं। ठाकुरजी ने लेखन द्वारा आपकी सेवा मुझे सौंप रखी है, अतः मैं स्वयं को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ। क्योंकि मैं इस लेखन के योग्य कदापि नहीं हूँ।

मैं अज्ञानी हूँ – विषयों में रत, प्रतिष्ठा का लोभी, अवगुणों की खान आदि–आदि। क्या ये अयोग्य व्यक्ति परमहंस को पत्र लिख सकता है ? लेकिन इतनी अयोग्यता होते हुए भी आपकी चरणों की असीम कृपा होने से मेरे जैसा पंगु भी पहाड़ उलांघ गया।

ठाकुरजी बोलते हैं कि, "प्रत्येक प्रवचनकार मेरी लीलाएं सुनाया करता है। भक्तों के आश्चर्यजनक चरित्र सुनाया करता है। परन्तु मेरी प्राप्ति का साधन कोई नहीं बताता, कि हरिनाम कैसे किया जाय, जो कि सारे ब्रह्माण्डों की आनन्दमयी जड़ी है।

ब्रह्माण्डों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो अवलम्बन (सहारा) से रहित हो। अवलम्बन सभी को चाहिए। मुझे भी अवलम्बन की जरूरत रहती है, वरना मेरा जी एक क्षण भी नहीं लगे। भक्त ही मेरा अवलम्बन है। यदि भक्त का अवतार न हो तो मैं निष्क्रिय हो जाऊँ। मैं अवतार ही क्यों लूँ? जगत में मेरा अवतार मात्र दो

प्रकार से होता है। पहला अवतार भक्त के हृदय में प्रकट रहता है। तथा दूसरा अवतार मन्दिर में श्रीविग्रह के रूप में होता है। ऐसा क्यों होता है ? केवल अवलम्बन हेतु! मन्दिर में विग्रह स्वरूप में अगर मैं न विराजूँ तो भक्त बेचारा बिना अवलम्बन क्या करेगा ? भक्त न हो तो बिना अवलम्बन मैं क्या करूँ ? बेल को पेड़ का अवलम्बन चाहिए। पहाड़ को पृथ्वी का अवलम्बन चाहिए। सूर्य को खुला सा रास्ते का अवलम्बन चाहिए। स्त्री को पति का अवलम्बन चाहिए। यानि अवलम्बन बिना संसार चलेगा ही नहीं!

मोह रहते मुझे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि अपना काम बनाकर शान्त हो जाते हैं, परन्तु मोह इतना खतरनाक है कि इसको पकड़ना बिल्कुल असम्भव है। यह इतना झीना (सूक्ष्म) भाव है कि अनुभव में ही नहीं आता। यही आवागमन, जन्म–मरण करवाता रहता है।

संसारी मोह होने से ठाकुर को हमारे हृदय में बैठने का स्थान नहीं मिलता। प्रथम – शरीर का मोह, दूसरा – इन्द्रियों का मोह, रसेन्द्रियाँ रस की तरफ, आँखें देखने की तरफ, कान सुनने की तरफ दौड़ते रहते हैं। तीसरा मोह – धन, जन, तथा स्थान का। चौथा मोह – कारण शरीर (स्वभाव) का। जैसे कि, मैं दयालु हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं मेरे दुश्मन का दुश्मन हूँ आदि ऐसा अहंकार (मोह) रमा रहता है। जैसे फूल में सुगन्ध, दूध में मक्खन आदि–आदि।

मठ में भी मोह रहता है। स्थूल रूप से मठ सेवा चलती रहती है। यदि मठ में मोह न हो तो जब भी मठ में संकट आता है तो ठाकुर जी के द्वारा सम्भालने का भाव प्रकट हो जाता है। इसका मतलब है, मोह है सच्चा प्रेम नहीं। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, **राधा–माधव** सबको सचेत कर रहे हैं। वह कह रहे हैं, कि मैं मठ का मालिक हूँ, परन्तु 'मठरक्षक' मुझको मन्दिर में आकर सम्भालता भी नहीं, कि मुझे यहाँ क्या–क्या असुविधा रहती है। कोई भाव से मेरी सेवा नहीं होती, कभी–कभी तो मुझे नींद भी नहीं आती। गर्मी के मारे दुःखी रहता हूँ। सर्दी से कांपा करता हूँ। भूखा भी रह जाता

हूँ। क्या वे मठ रक्षक मुझे आकर मेरी देख रेख करने वाले पुजारी की परीक्षा लेते हैं ? उनको छिप-छिपकर देखना चाहिए। खैर फिर भी वे मेरे प्यार के भूखे हैं। मैं परवाह नहीं करता।

अब ठाकुर श्रीराधा-माधव जी अपनी प्राप्ति करने का अति-सरलतम श्रेष्ठ अमोघ उपाय बता रहे हैं "केवल मात्र हरिनाम को उच्च स्वर से जपते हुए कान से सुने, किसी भी सिद्ध संत के चरणों में (प्रत्यक्ष तथा मानसिक रूप से) बैठकर करुण हृदय से प्रार्थना करते रहे। क्योंकि मैं मेरे भक्त के हृदयरूपी झरोखे से नाम जापक को देखता रहता हूँ। मेरे भक्त को, जापक को नाम जपता देखकर दया आएगी ही, तो वह दया मुझे प्रेरित कर उस जापक पर प्रभाव कर देगी एवं वह मेरे लिए रो पड़ेगा।

स्वतन्त्र रूप से मेरा दर्शन करते हुए जापक का हरिनाम जपना निम्न श्रेणी का होगा, क्योंकि मैं भक्त के हृदय को छोड़कर एक क्षण भी बाहर नहीं जाता। अतः जापक के ध्यान से भाग जाता हूँ। एवं जापक को विरह स्थिति आती नहीं। विरह स्थिति भक्त के माध्यम से ही आयेगी।

क्योंकि मेरा किसी साधारण मानव ने कभी दर्शन किया नहीं एवं भक्त का दर्शन वह रोज करता ही है, तो मेरी प्राप्ति उसके माध्यम से हो जायेगी। सन्त तो मेरे आराध्य देव हैं। मैं सन्त हृदय को छोड़कर जाने में असमर्थ रहता हूँ।"

यदि मोह का अन्त करना हो तो उक्त प्रकार से हरिनाम जपकर निश्चित ही कर सकते हैं।

अन्दर का खतरनाक शत्रु मोह है तथा बाहर का शत्रु कान! यदि इन पर विजय प्राप्त कर ली जाये तो ठाकुर प्राप्ति शीघ्र ही निश्चित रूप से हो जाती है। दोनों शत्रु उक्त तरह से हरिनाम जपने से मित्र बन जाते हैं तथा हमेशा के लिए जन्म-मरण से छुड़वाकर ठाकुर की चरण सेवा में पहुँचा देते हैं।

सच्चे भक्त भी बहुत हैं, जैसे वर्तमान के गुरुदेव प्रभुपाद जी, सर्व श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ गोस्वामी, लोकनाथ गोस्वामी, पुण्डरीक विद्यानिधि, माधवेन्द्रपुरी जी, ईश्वरपुरी जी, रायरामानन्द जी, नामाचार्य श्रीहरिदास जी, भक्तिविनोद जी, आदि-आदि तथा भूतकाल के भक्त मीरा जी, कबीर जी, अम्बरीश जी, नारद जी, ध्रुव आदि।

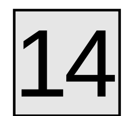
किसी भी भक्त के चरणों में (प्रत्यक्ष तथा मानसिक रूप से) बैठकर उनकी चरणरज में स्नान करें, प्रसादी लें, चरण जल सिर पर चढ़ावें, आदि करते हुए हरिनाम जपते रहें तो निश्चित ही विरहाग्नि प्रज्वलित होगी ही। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, करके देखें एवं ठाकुर जी की असीम कृपा का गुणगान करते रहें।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं

नामयुक्तान्जनान्दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
य याति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते।।
तस्मान्नामानि कौन्तये भजस्व दृढमानसः।
नामयुक्त प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन।।

(आदिपुराण)

हरिनाम युक्त पुरुषों को देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होता है वह परम धाम को प्राप्त मेरे सानिध्य में आनन्द का अनुभव करता है। अतएव हे कौन्तेय! दृढ़ चित्त से नाम-भजन करो। नामयुक्त व्यक्ति मुझे बड़ा प्रिय है। अतः हे अर्जुन! तुम नामयुक्त हो जाओ।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 1/10/2005

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का अनन्त कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा ठाकुर के प्रति विरहाग्नि प्रज्वलित होने तथा संसार से मन ऊब जाने की करबद्ध प्रार्थना!

सारगर्भित रहस्यमय बात

एक तुच्छ नासमझ जुगुनू अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाले सूर्य भगवान् को क्या प्रकाशित कर सकता है ? कभी नहीं। यह इसकी बड़ी से बड़ी मूर्खता ही है। परन्तु इसके पीछे कोई महान् अलौकिक शक्ति इसका साथ दे रही हो, तो सूर्य भगवान् को प्रकाशित तो नहीं कर सकता, परन्तु इसके चरणों में तो जा ही सकता है। यह स्वाभाविक ही है कि सजातीय, सजातीय से मिलकर आनन्द का अनुभव करता ही है। जुगुनू सूर्य का सजातीय ही है।

आवागमन (जन्म–मरण) का असाध्य दुःख भवरोग जो अनन्त कोटि युगों से जीव भुगतता जा रहा है, इसका खास कारण है, अहंकार (मैं–मेरापन)। अन्तःकरण – मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का पुंज है। अहंकार भौतिक रस से भी भर सकता है व आध्यात्मिक रस से भी भर सकता है। अन्तःकरण में इतनी ही जगह है, कि जहाँ एक ही रस समा सकता है। अज्ञान से भौतिक रस व ज्ञान से आध्यात्मिक रस पुंजीभूत रहता है।

अब प्रश्न उठता है कि, इस दुःखदायी भौतिक रस को अन्तःकरण से कैसे निकाल दिया जाये ? आध्यात्मिक रस उड़ेल दिया जाये तो भौतिक रस स्वतः ही बाहर आ जाएगा।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों रूपी पर्वतों से निकलकर व मिलकर एक नद (नाला) अनन्त कोटि तिनकों रूपी जीवों को अपने-अपने कर्मों का भोग भुगवाने हेतु दुःख समुद्र की ओर बहाकर अनन्त काल से ले जाता रहता है। इस बहाव का कभी भी अन्त नहीं होता। जन्म-मृत्यु रूप बहाव नाले के दोनों ही ओर रहता है। संयोगवश यदि इस नद के किनारे पर सच्चा संत रूपी पेड़ खड़ा मिल जाये, तो तिनका रूपी जीव उस पेड़ से लगकर बहाव से बच सकता है। भगवान् ही नद (नाला) रूप बनकर जीव रूपी तिनकों को आवागमन (जन्म-मृत्यु) रूपी लहरों में बहाता रहता है। जब जीव सन्त से मिलता है तो सन्त, नाला जहाँ से चलता है वहाँ उसे पहुँचाकर जीव को आवागमन रूपी दुख से हमेशा के लिए छुड़ा देता है।

इस नाले का कहीं आदि-अन्त नहीं है, सदैव बहता ही रहता है। अब प्रश्न उठता है, कि सच्चा सन्त मिले कैसे ? भगवान् जो जीव का असली बाप है, जीव अगर उन्हें बारबार रो-रोकर प्रार्थना करता रहे तो भगवान् ही स्वयं सन्त बनकर जीव के पास आकर अपने गोद में उठा लेते हैं। लेकिन फिर भी समय-समय पर अहंकार भौतिकता की ओर खींचता रहता है। अतः पूर्ण सावधान रहकर भौतिक अहंकार को अन्तःकरण में घुसने का मौका न दे।

रोना ही सार है। बंसी दास बाबा ने भगवत् प्राप्ति का उपाय केवल मात्र रोना ही बताया है। 'भजन-गीति' में रोना ही रोना है। रोना नहीं आता तो सब साधन बेकार है। रोना भगवान् को बहाकर अन्तःकरण में बिठा देता है। रोने में ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं। रोने में सभी शास्त्र हृदय में प्रकट हो जाते हैं। रोना आनन्द सागर प्रकट करता है। रोना तब ही प्रकट होगा जब अहंकार (मेरापन, मोह) ठाकुर जी के प्रति होगा। भौतिकता के भाव की गंध भी नहीं होगी। गौरहरि ने रो-रोकर सभी जीवों को समझाया है, परन्तु जीव इतना पाजी है कि इतना सुनकर भी सचेत नहीं होता। इसके कर्म में दुःख ही लिखा है। लापरवाही इसकी जड़ है।

हरिनाम से ही रोना आ सकता है, जब इसे कान से सुना जाये। कान से न सुनना नाम को बेकार करना होगा। कान से सुनने से ही तो संसार रस अन्तःकरण में भरा है। अजी, कान से हरिनाम सुनोगे तो ठाकुर का प्रेमरस निश्चित ही भर जाएगा। ऐसा अनुभव व शास्त्र वचन है।

राम वचन–

सन्मुख होय जीव मोहि जबही। कोटि जन्म अघ नासहुं तबही।।

कितना आस्वादन जीव को ठाकुर जी दे रहे हैं, परन्तु जीव अभागा सुनता ही नहीं है। काल सिर पर मण्डरा रहा है। सामने दुःख सागर लहरा रहा है। फिर भी जीव अचेत होकर सो रहा है। कितनी मूर्खता है! जब तक शिशु रोता नहीं तब तक माँ निश्चिन्त होकर अपने काम में लगी रहती है। जब शिशु रोना शुरू कर देता है, तो माँ सब काम छोड़कर शिशु के पास आकर अपनी गोद में चढ़ा लेती है। यह तो संसारी माँ का हाल है। ठाकुर जी तो अखिल ब्रह्माण्डों की माँ हैं। इसकी दया का, वात्सल्यता का अन्दाजा लगाना ही टेढ़ी खीर है। इतना होते हुए भी जीव दुःख सागर से निकलना नहीं चाहता। कितनी विडम्बना है। समझ की अर्थात् अज्ञान की भी हद हो गयी।

लेख मेरा नहीं ठाकुर जी का है, आप मानो या ना मानो, अपराध क्षमा करें।

आपकी याद में रोना मुझे श्रेयस्कर है। वियोग से याद अधिक आती है। गोपियाँ वियोग में क्षणक्षण में रोती रहती थीं।

भक्त प्रह्लाद महाराज कहते हैं

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्।
नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्।।

(स्कन्दपुराण, द्वारका मा० 38.45)

कलियुग में जो प्रतिदिन 'कृष्ण', कृष्ण', कृष्ण' नाम का उच्चारण करेगा उसे नित्य दस हजार यज्ञ तथा करोड़ों तीर्थों का फल प्राप्त होगा।

प्रार्थना

चतुर्मास जो करता है, हरि से स्नेह लगाता है
तीन लाख हरिनाम करो, प्रेमामृत का पान करो
आनन्द सिंधु में डुबकी लगा, मानव योनि लाभ करो
आवागमन का दारुण दुखड़ा, मिट जाए विश्राम करो
मानुष जन्म ना बारम्बारा, शुभ अवसर ना चूक करो
सुन लो मेरे भैया, पार लगे तेरी नैया
हृदय में बस जाएंगे, प्यारे कृष्ण कन्हैया
विरह आग जल जाएगी, कुसंस्कार जल जायेंगे
प्रभु प्रेरित यह प्रार्थना, करो न इसकी अवहेलना।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

●●●

समर्पण प्रार्थना

हे राधा माधव!

जब मन तुमको दिया तो जग का प्यारा बन गया।
जब ये मन दुनियाँ का था तो दुश्मन हजारा बन गया।
माया ने न जाने कितना घर बनवाया।
हार कर चरणों में आ, अपनापन चढ़ाया।
जन्म जन्म के प्राणपिता, तुम मुझको गोद चढ़ावो।
पापी हूँ अपराधी हूँ जैसा भी हूँ तुम्हारा हूँ।
अच्छा हूँ या बुरा हूँ, खोटा हूँ या खरा हूँ।
दोषों को गिनोगे तो कभी मेरा निस्तार नहीं।
रो-रोकर शिशु तेरा कहता है, तेरे सिवा मेरा कोई नहीं।

15

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3/11/2005

परमादरणीय श्रद्धेय स्नेहास्पद, श्रीगुरुदेव के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा ठाकुर जी के प्रति, दिन प्रतिदिन क्षण-क्षण में अकुलाहट होकर अन्तःकरण में पीड़ा होने की बारम्बार प्रार्थना स्वीकार हो।

आनन्दमयी नौका

आप मेरे अन्तःकरण में ऐसे बस गए हो कि मैं आपकी याद भुलाना चाहूँ तो भी भुला नहीं सकता। शायद आपको पत्र पढ़ने में असुविधा होती होगी। मेरा अपराध क्षमा करते रहें, मैं तो मजबूर हूँ। जब भी ठाकुर जी के प्रति विरहाग्नि जागृत होती है तब मैं आपके चरणों में लेख के रूप में समर्पित हो जाता हूँ। आप ही की कृपा का यह फल प्राप्त हो रहा है, कि जब हरिनाम जपता हूँ तब स्वतः ही अचानक विरह जागृत हो जाता है। घण्टों तक ठाकुर जी श्रीराधा कृष्ण तथा मेरे गुरुदेव व गौर-निताई मेरे पास खड़े होकर मुझको प्यार की दृष्टि से समझाते रहते हैं तथा आपको मैं उनके संग में खड़ा देखता हूँ। आपका दर्शन होते ही मेरा विरह और तीव्र हो जाता है। यह आपकी कृपा नहीं तो और क्या है ? आप इसी तरह से मुझे सम्भालते रहें, तो मेरा जीवन सफल हो जाये। मेरा लेख गुप्त रखने की कृपा करें।

आप मेरे गुरुदेव हैं, मैं आपसे क्या छिपाऊँ ? छिपाता हूँ तो अपराध का भागी बन जाता हूँ।

मेरा शिशु का भाव शुरू से ही है। इस भाव में अपराध होने का तो तनिक भी सवाल नहीं है। अन्य भावों में अपराध होने का सन्देह रहता है।

शिशु भाव में रोना ही तो सम्बल (सहारा) है। रोने में ऐसा आकर्षण है कि पत्थर दिल भी पिघले बिना रह नहीं सकता। ठाकुर जी तो दयानिधि हैं। उनके बराबर दयालु है ही कौन ? रोना ही तो ठाकुर जी को अन्तःकरण में जकड़ लेता है। वे अन्तःकरण से जाना ही नहीं चाहते। रोना उनको आनन्द सिन्धु में हिलोरें दिलाता रहता है। जब ठाकुर जी गोद में चढ़ा लेते हैं तो रोना अनन्तगुणा बढ़ जाता है। इस रोने में अनन्त ब्रह्माण्ड का सुख समा जाता है। रोना क्या है ? एक आनन्द की सीमा पार कर जाना है।

भजन–गीति में श्री भक्तिविनोद ठाकुर जी, श्री नरोत्तमदास ठाकुर जी आदि रोने के लिए अपनी पद्य रचना में बारम्बार प्रार्थना कर रहे हैं। यह रोना ही तो जन्म–मरण का अन्त कराने वाला भाव है। यदि सारी उमर में साधना करते हुए भी रोना प्रकट नहीं हुआ तो आवागमन से छूटने में निश्चित ही सन्देह है।

अब प्रश्न यह है कि, रोना तो सभी चाहते हैं, परन्तु यह अवस्था आती क्यों नहीं ? इसके प्रकट न होने के कई कारण हैं जो शास्त्रों में अंकित हैं।

पहला कारण– खान–पान है। जैसा अन्न वैसा मन। जैसा पानी वैसी वाणी। हरिनाम जपते हुए प्रसाद सेवन तथा ऐसा भाव कि इस भोजन को (अमनिया को) मेरे ठाकुर जी ने तथा मेरे गुरुदेव जी ने पाया है। अब इसको मैं पा रहा हूँ। इससे मेरे अन्तःकरण में सात्विकता का भाव प्रकट होगा। दस दिन में रजोगुण, तमोगुण नष्ट होकर सात्विक भाव जागृत हो जायेगा, तब स्वतः ही मन ठाकुर जी की ओर खिंचने लगेगा तथा संसार से मन हटकर ठाकुर जी की ओर छटपटाहट होने लगेगी।

दूसरा कारण– सन्त अपराध। मानसिक तथा शारीरिक। प्रातः सायं काल सन्तों से प्रार्थना तथा जिससे अपराध हो गया हो उसकी चरण–रज तथा चरण जल छिपकर लेकर अपने सिर पर धारण करना तथा स्थूल रूप में क्षमायाचना करना। आप सन्त जानते भी

हैं। एक चींटी क्या पहाड़ का बोझ धारण कर सकती है ? परन्तु, व्यसन वश लिखना पड़ रहा है। आपका स्मरण ही मेरा व्यसन है।

तीसरा कारण है– अहंकार (मोह)। मोह में अनेक भाव आते हैं। मान–प्रतिष्ठा, कंचन–कामिनी, संसार का रमण आदि। इस वृत्ति का भाव ही ठाकुर के लिए छटपट पैदा होने में रुकावट डालता रहता है।

केवल अन्तःकरण यह माने कि मेरा ठाकुर ही अखिल ब्रह्माण्डों में मेरा है, बाकी सब बखेड़ा है। सामने मौत खड़ी है तो मेरा क्या बिगाड़ सकती है, जब सर्वशक्तिमान मेरा है! जब अन्तःकरण ऐसा मान लेता है, तो यह जीवन स्वर्णमय, आनन्दमय, बेफिकर, मस्ती में चूर, निडर, पागलपन का भाव आदि में चलता रहता है।

जब मौत का पैगाम आता है, तो हँसता हुआ इस दुःख सागर रूपी संसार से **आनन्दमयी नौका** पर चढ़कर ठाकुर जी की गोद में हमेशा के लिए कूंच कर जाता है तथा संसार में रहने वालों के लिए ठाकुर जी की प्रेममयी नौका छोड़ जाता है ताकि पीछे रहने वाले इस नौका पर चढ़कर ठाकुर जी के चरणों में पहुँच सकें।

श्रीरूप गोस्वामी, श्री भक्तिविनोद ठाकुर, श्री नरोत्तमदास ठाकुर, श्रीगुरुदेव जी, मीरा, भीलनी, प्रह्लाद जी, आदि के चरणों में मानसिक रूप से पड़कर प्रार्थना करने से ठाकुर जी के प्रति मन खींचने की तथा विह्वलता की भावना शीघ्र ही आती है। **ठाकुर जी का निजी स्थायी घर भक्तों का हृदय मन्दिर ही है। ठाकुर जी के रहने का अन्य कोई स्थान नहीं है, इसलिए भक्तों का स्मरण शीघ्र लाभ करता है।** रोए बिना ठाकुर कभी भी हृदय मन्दिर में आयेंगे ही नहीं, यदि आयेंगे तो कुछ क्षण के लिए आकर फिर तुरन्त चले जायेंगे।

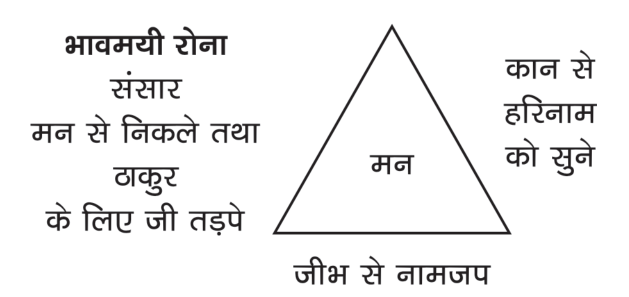
हरिनाम के जप से ही रोना आएगा। भरत जी ने रो–रोकर भजन किया है। भीलनी ने रो–रोकर अपनी आँखें गँवा दी। मीरा ने रो–रोकर अपने प्रीतम को झटकारा। गोपियों ने रो–रोकर विरहाग्नि

में जलकर अपने प्राण–प्राणनाथ को समर्पित कर दिए। बिना रोए किसी को भगवान् ने दर्शन नहीं दिये। रोने में सब इन्द्रियाँ एक ठौर आकर रोने का आनन्द उठाती हैं।

श्रीगौरहरि रो–रोकर मानव को हरि से मिलने का रास्ता बता रहे हैं। लेकिन मानव बेचैन होकर दुःख सागर में डूबकर भी पागल की तरह अपना जीवन काट रहा है। उसे मालूम नहीं है कि, एक क्षण में काल आकर तेरा गला दबोच लेगा। फिर यह मानव जन्म का मौका मिलेगा नहीं। फिर जन्म–मरण रूपी दुखान्त अवस्था में अनन्त युगों तक जन्मता–मरता रहेगा। कितना अज्ञान अन्धकार में पड़ा हुआ जीवन काट रहा है। **यहाँ सुख नहीं दुख का ही दूसरा रूप है।**

हरिनाम को कान से सुने बिना कभी किसी हालत में रोना आना निश्चित ही असम्भव होगा। जब कान से न सुना जाए तो गहरा पश्चाताप होना चाहिए। फिर दुबारा कान से सुनने का प्रयत्न करे तो मनोरथ सफल होगा। यह अनुभव तथा शास्त्र का कहना है। नाम श्रवण–कथा श्रवण करो यह शास्त्र का वचन है।

कान से सुनने का तरीका



उक्त प्रकार से मन शीघ्र कुछ दिनों में ही एकाग्र होने लगता है। जब मन केन्द्रित होने लगता है तो दसों इन्द्रियाँ उसका साथ देने लगती हैं। संसारी विचारधारा आना बन्द हो जाती है। जब

संसारी संकल्प-विकल्प बन्द हो जाते हैं, तब बड़ी सहजता से श्रीकृष्ण, श्रीगौरहरि तथा श्रीगुरुदेव जी हृदयमन्दिर में आकर क्रीड़ा करने लगते हैं तब इनका दर्शन स्वतः ही त्रिभुज Trangle से चर्तुभुज Rectangle में प्रकट हो जाता है।

रामायण वचन-

सुमरिए नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।

नाम के स्मरण से भगवान् का रूप अपने आप ही हृदय में प्रकट हो जाता है।

यह मैं नहीं लिख रहा हूँ, ठाकुर जी ही आप पर कृपावर्षण कर रहे हैं। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। अकाट्य सिद्धान्त है। अगर उक्त अवस्था प्रकट न होगी तो निश्चित ही आवागमन छूटेगा नहीं। फिर संसार में आना पड़ेगा।

रोकर हरिनाम करना होगा-

यदि विरह प्रकट न हुआ तो सब साधन है शून्य।
रात दिन लगे रहो तो निश्चित ही पाओगे पुण्य।।

(हे प्रभु! आप का नित्य वास कहाँ है ?- नारदजी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेषु वा।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।

(पद्मपुराण-कार्तिक माहात्म्य तथा भक्ति सन्दर्भ 269)

हे नारद! मैं वैकुण्ठ में अथवा योगियों के हृदय में वास नहीं करता हूँ (कभी वास करता हूँ, कभी वहाँ से चला भी जाता हूँ) किन्तु जहाँ मेरे भक्त मेरा कीर्तन करते हैं, वहाँ पर मैं बैठा ही रहता हूँ तथा निरन्तर वहीं वास करता हूँ।'

16

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 15/11/2005

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, शिक्षागुरु श्री भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का अनन्तकोटि दण्डवत् प्रणाम व उत्तरोत्तर श्रीकृष्ण, गौर-निताई तथा गुरुदेव के प्रति विरहाग्नि प्रज्वलित होने की करबद्ध प्रार्थना।

भक्ति बीज का रोपण

आपकी याद में यह तुच्छ मानव विरहाग्नि में जलता हुआ, शान्ति पाने हेतु पत्र लिखने को बाध्य होता रहता है। जब तक मन के उद्गार लेख द्वारा प्रकट न करूँ, तब तक शान्ति लाभ नहीं होती। न जाने कौन सी शक्ति मुझे प्रेरित कर जबरन लिखने को बाध्य करती है।

हरिनाम को कान से सुनना बहुत ही जरूरी है, यदि ऐसा नहीं हुआ तो स्मरण व्यर्थ होगा। वैसे बिल्कुल व्यर्थ तो नहीं होगा। संसार का काम सुधरता रहेगा तथा सुकृति इकट्ठी होती रहेगी, परन्तु भगवद् चरणों में पहुँचने में बहुत देर होगी। अनन्त जन्म-मरण रूपी दुख भोगना पड़ेगा। मन जहाँ भी हरिनाम को ले जाता रहेगा वहीं का कल्याण होता रहेगा। क्योंकि नाम चारु-चिन्तामणि है, वांछा कल्पतरु है। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है।

हरिनाम में किसान की खेती की कसौटी शत-प्रतिशत सही उतरती है।

भगवान् जीव पर कृपा करने हेतु गुरु रूप से आकर हरिनाम का बीज कान में सुनाते हैं एवं समझाते हैं, इसको कान द्वारा पोषण करते रहना अर्थात् कान से सुनते रहना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया तो बीज अंकुरित नहीं होगा। लेकिन शिष्य इस

बीज को कान में न डालकर इर्द–गिर्द फैंकता रहता है, अतः वह बीज हृदय रुपी जमीन में जाता नहीं, अतः भक्तिलता बीज अंकुरित होता ही नहीं। सारा जीवन व्यर्थ में चला जाता है। अंजुलि में भरे हुए अमृत को जमीन में डाल देता है फिर यह अमृत अनन्त जन्मों तक हाथ नहीं लगता। यह इसका महान अज्ञान का कारण ही तो है।

किसान बैलों द्वारा हल चलाता है। साधक साधु द्वारा अपना जीवनयापन करता रहता है। किसान हल के आगे कुश द्वारा गहरी लाईन (उमरा) बनाता रहता है। साधक हृदयरुपी खड्डे को सद्गुण रुपी कुश द्वारा गहरा करता रहता है।

किसान हल के पीछे एक (ओरणा) पाइप बांध देता है जो लाईन (उमरा) के पैंदे से Touch रहता है। वहाँ जाकर बीज स्थिर होता रहता है।

साधक कान रुपी पाईप में मुखारविन्द रुपी मुट्ठी से हरिनाम बीज सुनाता (डालता) रहता है। वह बीज जो किसान डालता रहता है, पाइप में खुन–खुन की आवाज सुनते रहता है।

साधक भी हरिनाम की आवाज मन द्वारा सुनता रहता है, यदि किसान खुन–खुन आवाज नहीं सुनता तो वह उस पाइप को ध्यान पूर्वक देखता है, कि बीज जमीन में नहीं जा रहा है, कहीं रुकावट हो गई है।

इसी प्रकार साधक जब हरिनाम को मन से नहीं सुनता तो वह समझता है, कि मन रुपी खुन–खुन बन्द हो गई है, अतः साधक सावधान होकर उच्चारण करता है।

हल के पीछे लगभग एक हाथ दूर किसान एक भारा (झाड़ी) बांध देता है, वह झाड़ी लाइन (उमरा) की दोनों किनारों की मिट्टी गड्ढे में डालती रहती है ताकि बीज के ऊपर सीलन रहे, वरना बीज सूखी मिट्टी के कारण अंकुरित नहीं होगा। फिर किसान छः

दिन में जाकर देखता है, तो सभी उमरों में बीज अंकुरित हो चुका है। तब वह फूला नहीं समाता, नाचने लगता है।

इसी प्रकार साधक का चार माला कान से सुनकर जब मनोरथ सफल हो जाता है, तो हरिनाम रूपी बीज प्रेम रूपी अंकुर में अंकुरित होने लगता है। प्रेमी (ठाकुर) से मिलने हेतु आकुल-व्याकुल हो पड़ता है।

किसान का बीज जमीन की गर्मी से अंकुरित होता है। हरिनाम रूपी बीज साधक के हृदय रूपी जमीन की विरहाग्नि से गर्म होकर भक्तिलता में परिणत होने लगता है।

जो बीज किसान के पाइप के मुख से बाहर गिरता रहता है, वह बीज सूखने के कारण नष्ट हो जाता है तथा पक्षी उस बीज को चुग जाते हैं। व्यर्थ चला जाता है।

इसी प्रकार साधक को अगर पाइप रूपी कान में हरिनाम बीज नहीं सुनाई देता तो वह आवागमन नहीं छुड़ा सकता। लेकिन उस बीज से सुकृति इकट्ठी होती रहेगी। जब अधिक सुकृति बन जायेगी तब भगवान् उस पर कृपा करने के लिए गुरु रूप से फिर बीज का रोपण कर जाएँगे। इसी प्रकार यह मार्ग चलता रहता है।

साधक तीन प्रकार से जप करता है। प्रथम उच्चारण से, जिसे पास में बैठा सुन लेता है। दूसरा उपांशु, जिसे स्वयं ही सुनता है। तीसरा मानसिक, जिसे हृदय का सूक्ष्म मन सुनता है। सूक्ष्म आँख कान आदि ज्ञान इन्द्रियाँ इसे अनुभव करती हैं। उक्त गति अपनी कोशिश से नहीं होती। साधन करते-करते स्वतः ही आती है। नामाचार्य हरिदास जी उक्त प्रकार से ही 3 लाख नाम किया करते थे।

20 दिन के बाद किसान अंकुरित बीज में पानी देता है। जब वह बीज (उमरा) लाईन के बाहर आ जाता है, तो 120 दिन में फल-फूल से फसल लद जाती है, फिर वह अपने घर पर फसल लाद कर ले आता है। अब परिवार के सारे लोग उसका उपभोग करते हैं।

इसी प्रकार साधक में सद्गुण रूपी फल-फूल आकर इकट्ठे होते हैं तथा विरहाग्नि रूपी तेज निखरने लगता है तो संसार रूपी परिवार उसका संग करके तृप्त होता रहता है।

जब साधक का अन्तिम समय आता है तो वह आनन्द-सागर में तैरता हुआ अपने स्थायी घर भगवद्चरण में जा पहुँचता है। **संसार का नाता सदा के लिए छूट जाता है तथा अपने 21 पुरखों को भी साथ में ले जाता है।**

1. धर्म परायण सोई कुल त्राता। राम चरण जाकर मन राता।।

2. सो कुल धन्य उमा सुन, जगत पूज्य सुपुनीत।।
श्री रघुवीर परायण, जेहि नर उपज पुनीत।।

अगर मनुष्य जन्म सफल करना हो तो अब भी समय है, चेत जाना श्रेयस्कर होगा। यह ठाकुर की चेतावनी है, मेरी नहीं।

अमूल्य रत्न हरिनाम को बेपरवाह से जपना जघन्य अपराध है। इससे बचना चाहिए।

कनिष्ठ अधिकारी वैष्णव भक्त	– जो कभी कभी हरिनाम करता है।
मध्यम अधिकारी वैष्णव भक्त	– जो निरन्तर हरिनाम करता है।
उत्तम अधिकारी वैष्णव भक्त	– जिसके केवल दर्शन मात्र से ही जीव हरिनाम करने लग जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षा के अनुसार और किसी भी लक्षण से वैष्णव के अधिकार का निर्णय नहीं करना चाहिए।

(संदर्भ – जैवधर्म, अध्याय दूसरा)

कनिष्ठ अधिकारी वैष्णव की 7 पीढ़ियाँ,
मध्यम अधिकारी वैष्णव की 14 पीढ़ियाँ तथा
उत्तम अधिकारी की 21 पीढ़ियाँ भगवद्धाम जाती हैं।

शरणागति का सम्पूर्ण लक्षण

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्‌गद गिरा नैन बहे नीरा।।
तिनकी करूं सदा रखवारी। जिमिं बालक राखहि महतारी।।

संसार में प्रवचन तो बहुत होते रहते हैं, परन्तु नाम जपने का तरीका कोई नहीं बताता, जो कि जन्म-मरण छूटने का अति महत्वपूर्ण साधन है। कितनी विडम्बना है! कितना बड़ा ह्रास हो रहा है...

जो नाम जपने का तरीका बतायेगा, भगवान् उसके आभारी रहेंगे, उसका आवागमन छूट जायेगा। गौरहरि बताकर गए हैं, कि नगर संकीर्तन से सबको लाभ है।

चारों युगों में, चारों वेदों में, अठारह पुराणों में, छः शास्त्रों में तथा उपनिषदों में हरि का नाम स्मरण करने का विधान है। स्मरण होता है मन व कान दोनों को साथ में मिलाकर। मन यदि हरिनाम में नहीं होगा, तो उच्चारण किया हुआ शब्द व्यर्थ में चला जायेगा। मन ही इन्द्रियों का राजा है, जैसा मन का स्वभाव होता है, इन्द्रियाँ भी उसी का साथ देती हैं।

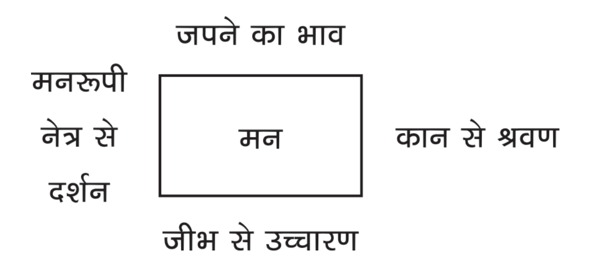
कलिकाल में मन अधिकतर राजसिक तथा तामसिक प्रकृति के होते हैं, अतः सृष्टि भी राजसिक, तामसिक होती जा रही है। क्योंकि स्कूल और कॉलेजों में शिक्षा भी उक्त तरह की ही दी जा रही है। सात्विक प्रकृति का तो नामोनिशान ही नहीं है। Television भी बदमाशी के अलावा बच्चों को अच्छी बातें नहीं बता रहा है।

पहले युगों में बच्चा 25 साल तक गुरु आश्रम में रहकर सात्विक शिक्षा सीखता था, तो सात्विक सृष्टि जन्म लेती थी। आजकल राजसिक, तामसी सृष्टि होती जा रही है।

जैसा मन वैसा जन जन्म लेता है, जैसा बीज वैसी उपज होती है, यह अटल सिद्धान्त है। मन का स्वभाव ही आत्मा को खींचकर गर्भ धारण करता है। जैसा स्वभाव होता है, वैसे ही स्वभाव की आत्मा गर्भ धारण करती है। इस युग में इन्द्रिय तर्पण ही सबका

स्वभाव बन रहा है, अतः तामस प्रकृति के जन्म होते जा रहे हैं, जो माँ–बाप के दुश्मन बन जाते हैं। यह दोष माँ–बाप का है। जन्म लेने वाले का नहीं। **जैसा करो वैसा भरो।** फिर कहते हैं, हमारा बच्चा कहना मानता नहीं। मानेगा भी नहीं। बीज ही तुम्हारा दूषित है। इसमें फसल का क्या दोष है।

मन लगने का सरलतम साधन–



भाव– मैं आपको (भगवान् को) ही चाहता हूँ। आवागमन को याद करके रोना आता है, क्योंकि गर्भ में रहना अकथनीय दुःख का कारण है। जन्म के बाद भी अनन्त दुःख लगे रहते हैं। सुख का तो लेश भी नहीं है, मौत सामने खड़ी है।

भाव– उक्त प्रकार से नाम जपने से मन एक क्षण के लिए भी इधर–उधर नहीं जा सकता। यदि मन में कोई चिन्ता (Tension) न रहे तो।

अपना स्वभाव साथ जायेगा, स्वभाव को सात्विक बना लो।

अगर मनुष्य जन्म सफल करना हो तो अब भी समय है, चेत जाना श्रेयस्कर होगा। यह ठाकुर की चेतावनी है, मेरी नहीं।

अमूल्य रत्न हरिनाम को बेपरवाह से जपना जघन्य अपराध है। इससे बचना चाहिए।

हरि का भजन करो हरि है तुम्हारा
हरि के बिना नहीं कोई सहारा

मानसिक दर्शन

धाम दर्शन ज्ञान–नेत्र से करते रहो। नाम जपते हुए (मानसिक रूप से) गिरिराज परिक्रमा करते रहो, चाहे नाम कान से सुनकर न भी हुआ तो अन्दर नाम हो रहा है, वह अनुभव में नहीं आता।

किसी भक्त से मानसिक रूप से प्रार्थना करते रहो। भगवान् का स्थायी स्थान भक्त का हृदय ही है।

कोई लीला चिन्तन करते रहो, तो अवश्यमेव विरह प्रकट हो जायेगा। इसमें रत्तीभर भी शक नहीं। विरह ही भक्ति का अन्तिम लक्षण है। जब तक विरहावस्था नहीं आएगी, जन्म–मरण होता ही रहेगा। अन्त में भगवान् विरही भक्त को सम्भालने आते हैं, क्योंकि वह शरणागत है।

अब भी जगना या चेत जाना चाहिए।

शाम के 4–5 बजे से पहले किसी से न मिलो। भगवान् का अन्वेषण करते रहो, तो जीवन सार्थक होगा व विरह अवश्य होगा।

हरिनाम को कान से सुनने के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जा रहे हैं–

1. **नाम जीह जप जागहि जोगी।** (जीभ से उच्चारण)
विरत विरंचि प्रपंच वियोगी।।

2. **जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ।**
जीह नाम जप जानहिं तेऊ।।

3. **पुलक गात हिय सिय रघुवीरू।**
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
(भरत का जपना)

4. **मन थिर कर तब शम्भु सुजाना।**
लगे करण रघुनायक ध्याना।।

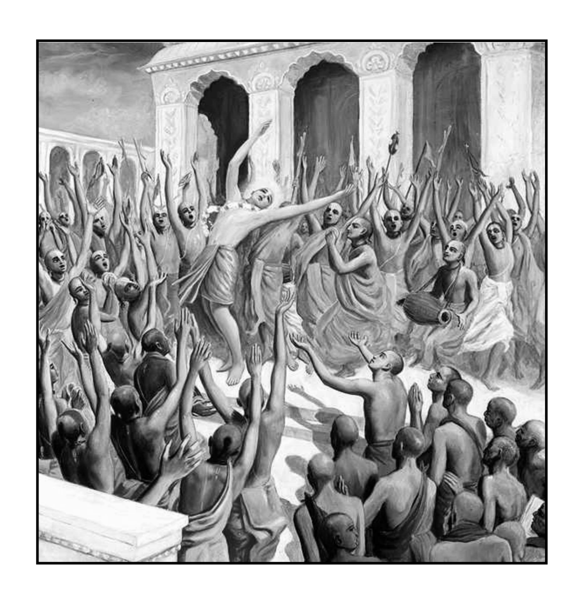
जीभ से नामजप कर कान द्वारा ही सुना जाता है। अतः जीभ से नाम–जप, शास्त्रों में वर्णित किया गया है। मंत्र (गोपाल मंत्र,

गायत्री मंत्र आदि) मानसिक होता है तथा हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र) जीभ से उच्चारण पूर्वक होता है। **मंत्र का उच्चारण अपराध है तथा नाम का उच्चारण युक्ति संगत है।**

मन ही कारण शरीर है। यही जन्म लेने का तथा मृत्यु का कारण है। स्वभाव को अच्छा बनाना प्रथम काम है। स्थूल+सूक्ष्म शरीर इसके आश्रित है। मन ही सृष्टि को चला रहा है। मन वश में करना सबसे बड़ी सफलता है, सबसे बड़ी ख़ुशी है व सबसे बड़ी विजय है, अमरता है। अगर मन वश में न रहा तो सबसे बड़ा दुःख है।

नोट– यदि आप अधिकतर मठ में ही रहकर भजन करना चाहते हैं, तो आप अपराह्न 4.00 बजे बाद मिलकर समस्याओं का समाधान करें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो भजन असम्भव है।

विरह होना शरणागति का लक्षण है।
शरणागत ही आवागमन से छूटता है।
अन्य सब माया के बंधन में है।



17

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 23/12/2005

परमादरणीय श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, गुरुदेव के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमाभक्ति जागृत होने की असंख्यबार प्रार्थना!

प्रेमरूपी पुत्र-प्राप्ति

हरिनाम जपने की कसौटी किसान पर पूर्णरूप में उतरती है, तथा गर्भाधान करने वाले जीव पर भी 100% लागू होती है।

यदि किसान बीजारोपण करते हुए हल को चलाते वक्त कुश को नहीं सम्भालेगा तो बीज उगने में पूरा सन्देह है। क्योंकि कुश मिट्टी की सीलन तक पहुँची नहीं। अतः किसान कुश को दो चार अंगुल आगे सेट करेगा। ताकि बीज जमीन की सीलन तक पहुँच सके। सीलन से बीज 5-6 रोज में जमीन की सतह से ऊपर अंकुरित होते हुए दिखाई देने लगेगा।

यदि बीज खराब होगा तो भी अंकुरित नहीं होगा। आजकल संकर बीज बोए जाते हैं तो खाद्य भी संकर ही हो गया है, जो रोग का कारण है तथा मन भी अशुद्ध हो गया।

इसी प्रकार यदि जापक का मनरूपी कुश सन्तुलन पर नहीं होगा तो हरिनाम बीज कानरूपी सीलन तक नहीं पहुँच पाएगा। हरिनाम का हृदयरूपी जमीन पर कोई प्रभाव नहीं होगा। नाम प्रभावहीन होता रहेगा। पूरी उम्रभर नाम जपता रहेगा परन्तु निरर्थक ही होगा। केवल सुकृति इकट्ठी होगी।

दूसरी कसौटी गर्भाधान करने वाले जीव पर पूर्ण रूप से उतरती है। जब मादा जीव की माहवारी होती है, तो समझना होगा कि गर्भाधान रुपी जमीन बीज धारण करने को उपयुक्त है। गर्भाधान

करने वाला नर यदि इस समय को टाल देगा, तो गर्भाशय रूपी जमीन सूख जायेगी, सूखे में बीज उगता ही नहीं।

यदि समय पर गर्भाशय में बीज गिर जायेगा तो जीवरूपी बीज भविष्य में अपना शरीर धारण कर लेगा। समय पर नर अपनी सफलता पायेगा।

इसी प्रकार यदि जापक ठीक समय पर हरिनाम रूपी बीज कानरूपी गर्भाशय में पहुँचा देगा तो हृदयरूपी जमीन पर जाकर प्रेमरूपी पौधा प्रकट कर देगा। प्रेमरूपी पुत्र को पाकर साधक प्रेम से झूमता रहेगा। उसको ऐसी आनन्दमयी मस्ती आएगी कि उसका वर्णन अकथनीय है।

लेकिन हरिनाम को कान से नहीं सुनेगा तो अनन्त जन्म बिताकर भी प्रेमरूपी पुत्र पा नहीं सकेगा। संकीर्तन पिता श्रीगौरहरि इसका साक्षात् उदाहरण हैं। कान का महत्व सब इन्द्रियों से अधिक है। कान से संसार मिला एवं कान से ही भगवान् मिलेगा। कान से कथा सुनना तथा कान से ही संसार सुनना होता है। अब जाने का समय हो गया, शीघ्र चेत जाना चाहिए वरना धोखा होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता 10.25- में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को हरिनाम जप की महिमा बता रहे हैं।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।

मैं महर्षियों में भृगु हूँ, वाणी में दिव्य ओंकार हूँ, समस्त यज्ञों में पवित्र नाम का कीर्तन (जप) तथा समस्त अचलों में हिमालय मैं हूँ।

18

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 20/04/2006

परमाराध्यतम प्रातः स्मरणीय भगवत् प्रदाता, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति–सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमलों में अधमाधम दासानु–दास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवद् प्राप्ति हेतु करबद्ध प्रार्थना।

प्रेरणात्मक जिज्ञासानुसार भगवद्–प्राप्ति हेतु श्रीगुरुदेव जी से प्रश्न उत्तर–

सन् 1948 से जब मैं जयपुर में आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था, श्रीराधा गोविन्द के मन्दिर में जाकर दर्शन कर सद्गुरुदेव जी की प्राप्ति की प्रार्थना किया करता था। इसी मन्दिर में मुझे श्रीगुरुदेव जी के 8–10 ब्रह्मचारियों के संग में दर्शन सुलभ हुए। ब्रह्मचारी थे श्रीभारती महाराज! श्रीमंगल महाराज! श्रीकृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी (तीर्थ महाराज) श्री गिरी महाराज आदि।

मेरी जानकारी में 1952 के पहले केवल कलकत्ता मठ ही था। इसके बाद में 20 मठ भारत में निर्माण हुए। श्रीगुरुदेव जी प्रत्येक मठ के श्रीविग्रह हेतु तीन बार जयपुर में जाया करते थे। एकबार ऑर्डर देने हेतु, दुबारा विग्रह कैसा तैयार हुआ है यह देखने हेतु और तीसरी बार ले जाने हेतु।

उस समय श्रीगुरु महाराज जी के बहुत कम शिष्य थे। जयपुर में तो केवल मैं ही इकलौता प्यारा शिष्य था। अतः महाराज जी अकेले बैठे रहते थे। मुझे उनके चरणों में बैठकर भगवान् के प्रति प्रश्न करने का मौका अधिकतर मिलता रहता था। महाराज जी मेरे प्रश्नों का उत्तर बड़े प्रेम व चाव से देते रहते थे। महाराज जी भी आनन्द में विभोर हो जाते थे। महाराज जी समय देकर मुझे बुला लिया करते थे। वे कहते थे, "अनिरुद्धदास! तेरी क्या जिज्ञासा है ?

खुलकर मुझसे पूछते रहो।" मैं कहता–"हाँ! महाराज जी, आपकी कृपा बरसती है।"

जो मुझे याद है, आपके चरणों में सेवार्थ अंकित कर भेजता रहूँगा, कृपया अंगीकार करते रहें।

1. प्रश्न – भगवान् कैसे मिलेगा ? यह मेरी तीव्र भूख थी।

   उत्तर – रोकर ही प्राप्त होगा, परन्तु केवलमात्र भगवद् प्राप्ति ही ध्येय हो।

2. प्रश्न – रोना तो आता नहीं।

   उत्तर – भगवान् से **सम्बन्ध** बनालो।

3. प्रश्न – **सम्बन्ध** क्या होता है ?

   उत्तर – जैसे इस जगत में सम्बन्ध होता है। माँ–बेटे का! भाई–भाई का! मित्र–मित्र का आदि–आदि।

6. प्रश्न – भगवान् तो सभी के माँ–बाप हैं। ये जीव सृष्टि उन्हीं की बनाई हुई है। अतः भगवान् जी तो सबके पिता हैं ही। तो शिशु का सम्बन्ध (रिश्ता) कैसा रहेगा, महाराज जी!

   उत्तर – सर्वोत्तम।

15. प्रश्न – यही सम्बन्ध सर्वोत्तम क्यों है ?

   उत्तर – इस सम्बन्ध में गलती होने का कोई भय नहीं है। आँख मींचकर दौड़ते रहो, गिरोगे नहीं। शिशु माँ–बाप को थप्पड़ मार भी देता है, तो माँ–बाप उसे गोद में बिठाकर प्यार भरा चुम्बन देते हैं। अतः इससे सर्वश्रेष्ठ कोई सम्बन्ध नहीं। अन्य सम्बन्ध में मर्यादा से चलना पड़ता है। इसमें नहीं।

6. प्रश्न – श्रीगुरुदेव मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मेरा यह सम्बन्ध पक्का बन जाये।

उत्तर – अवश्य! चिन्ता मत करो। भगवान् सब ठीक करेंगे।

7. प्रश्न – शिशु भाव (सम्बन्ध) कैसे बने, महाराज जी ?

उत्तर – भगवान् जी से प्रार्थना करते रहो एवं अपने आप को (अहम्) को भगवद् चरणों में चढ़ाते रहो। संसार से नाता ढीला करते रहो वरना मोह के कारण अगला जन्म होता रहेगा। आवागमन मिटेगा नहीं।

8. प्रश्न – प्रार्थना किस प्रकार करनी होगी, श्रीगुरुदेव जी ?

उत्तर – जिस प्रकार सामने खड़े अथवा बैठे मनुष्य से की जाती है, किसी काम हेतु। वह कान से सुनता रहता है। इस प्रकार हरिनाम को जीभ से उच्चारण करते हुए कान से सुनकर ठाकुर जी से प्रार्थना की जाती है। ऐसा अनुभव हो कि ठाकुर जी मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। तब धीरे–धीरे भगवान् से शिशु का सम्बन्ध पक्का हो जायेगा।

9. प्रश्न – मन तो एकक्षण में भाग जाता है।

उत्तर – वास्तविक पक्का सम्बन्ध नहीं है।

10. प्रश्न – वास्तविक पक्का सम्बन्ध कैसे हो महाराज जी ?

उत्तर – हरिनाम को कान से सुनकर ही होगा। अधिक से अधिक जपना होगा।

Chant Harinam Sweetly & Listen By Ear

Hare Krishna Hare Krishna
Krishna Krishna Hare Hare
Hare Ram Hare Ram
Ram Ram Hare Hare

19

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/05/06

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीशिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना!

भगवद्-प्राप्ति का सरलतम से सरलतम साधन (उपाय)

तीन प्रकार के शरीर-

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर (स्वभाव का शरीर)।

स्थूल शरीर- मिट्टी में मिल जायेगा जो पृथ्वी तत्त्व का है।

सूक्ष्म शरीर- प्राण (हवा) का शरीर है, जो कर्मानुसार दूसरे शरीर में चला जाता है।

कारण शरीर- जो जन्म-मरण व भगवद्-प्राप्ति का कारण है। कारण शरीर को सत्संग द्वारा शुद्ध निर्मल करना होता है।

शरीर में 5 कोश होते हैं।

1. अन्नमय कोश, 2. प्राणमय कोश, 3. मनोमय कोश, 4. विज्ञानमय कोश, 5. आनन्दमय कोश।

अन्नमय कोश पृथ्वीतत्व से निर्मित है। प्राणमय कोश सांस पर निर्मित है। मनोमय कोश संकल्प-विकल्प से निर्मित है। विज्ञानमय कोश बुद्धितत्व का द्योतक है। **आनन्दमय कोश चित्त से सम्बन्धित है। इसी में भगवान् और आत्मा का शुद्ध स्थान है।**

अन्तःकरण चतुष्टय 4 तत्वों से बना है–

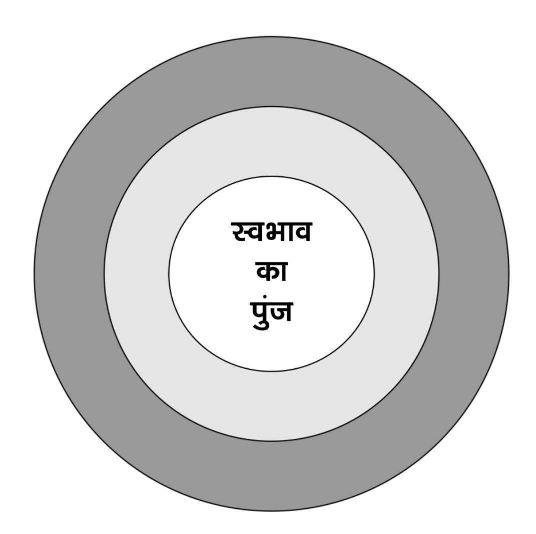
1. मन, 2. बुद्धि, 3. चित्त, 5. अहंकार।

अहंकार ही सारे जगत की जड़ है। अहंकार (मैं–मेरा, तू–तेरा) को सचेत कर दिया जाये तो सारा बखेड़ा ही समाप्त हो जाये। अहंकार रूपी वृक्ष में दो तरह के फल लगते हैं।

1. कडूवा, जहरीला (भौतिकता का)।

2. मीठा अमृतमय प्रेमामृत फल (आध्यात्मिकता का)।

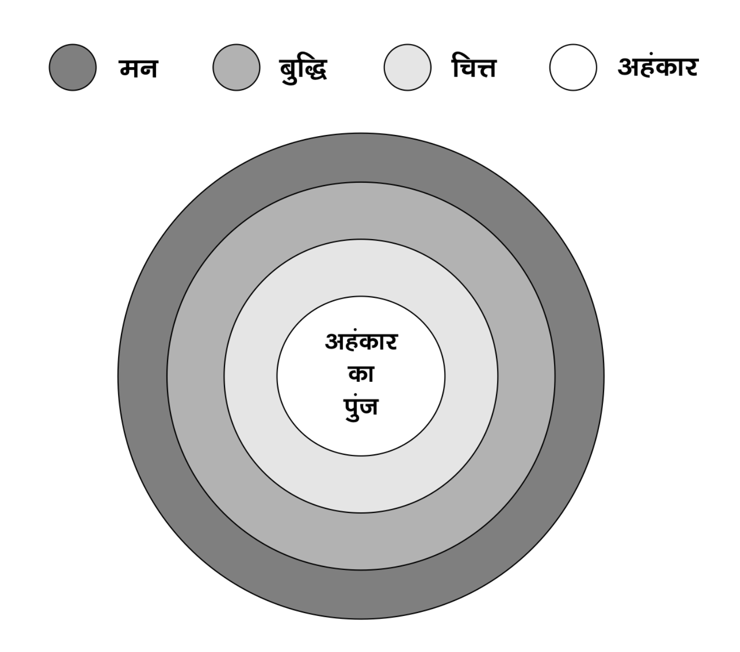
स्थूल शरीर **सूक्ष्म शरीर** **कारण शरीर**



स्थूल शरीर – घटता–बढ़ता है। जैसे– बचपन, जवानी, बुढ़ापा। यह खाने–पीने पर निर्भर है।

सूक्ष्म शरीर – जो कर्मानुसार जन्म–मृत्यु का कारण है। यह प्राण तत्व पर निर्भर है।

कारण शरीर – आदत का शरीर। आदि जन्म का स्वभाव। भगवद्–प्राप्ति तथा संसार प्राप्ति करवाता है।

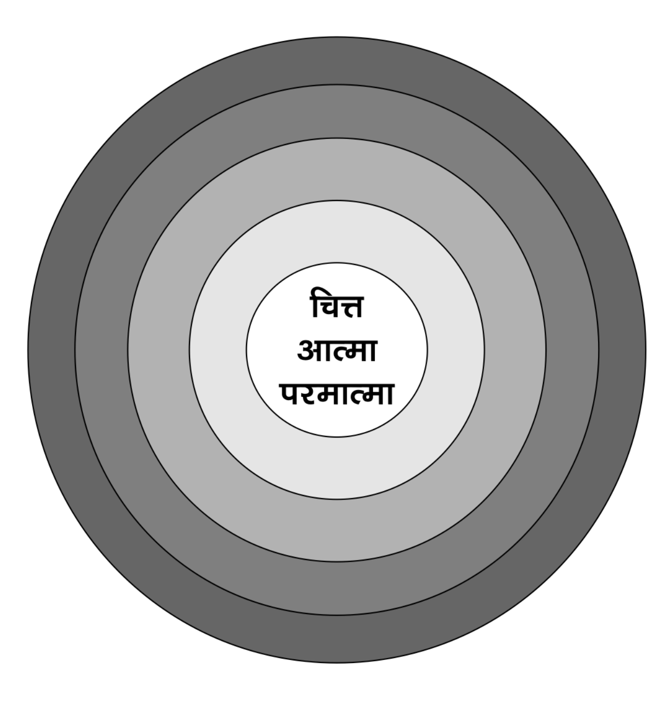


● मन से सूक्ष्म बुद्धि, बुद्धि से सूक्ष्म चित्त तथा चित्त से सूक्ष्म अहंकार है। **ये अहंकार ही जीव का मित्र तथा शत्रु है।**

ये अहंकार यदि ठाकुर के प्रति बन जाय तो पूर्ण शरणागति में पलट जाता है। ***तृणादपि सुनीचेन** स्थिति स्वतः ही टपक पड़ती है। दुर्गुण नष्ट होकर सद्गुण आकर मन, बुद्धि, और चित्त में रम जाते हैं। यदि जीव भगवान् के लिए ही कर्म करता रहे तो इसका सारा का सारा दुःख खत्म हो जायेगा। अर्थात् मुनीम बनकर सेठ की बन्दगी करता रहे, तो उसके भोग सेठ को भुगतने पड़ते हैं। लाभ, हानि सेठ की ही होगी। मुनीम बच जायेगा। यही भगवद्गीता बता रही है।

***तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरिः॥**

जो स्वयं को घास के तिनके से भी अधिक क्षुद्र मानते हैं, जो वृक्ष से भी अधिक सहनशील हैं, तथा स्वयं मानशून्य (दूसरों से मान की अपेक्षा न करने वाला) होकर दूसरों को यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हैं, वे ही सदा हरिकीर्तन के अधिकारी होते हैं। (श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट शिक्षाष्टकम्, श्लोक 3)



अन्नमय कोश– खाने पीने का स्थान

प्राणमय कोश– सांस लेने का स्थान

मनोमय कोश– संकल्प–विकल्प का स्थान

विज्ञानमय कोश– बुद्धि का स्थान

आनन्दमय कोश– भगवान् का तथा आत्मा का रहने का स्थान

चित्त से ही स्फुरणा उठती है, अच्छी–बुरी। स्फुरणा को यहीं रोका जा सकता है वरना वह स्थूल रुप ले लेती है। विचार मन पर जाने पर बेकाबू हो जाता है। फिर शरीर से उस कर्म को बाध्य होकर करना पड़ता है।

स्थूल+सूक्ष्म+कारण शरीर ठाकुर जी द्वारा रचे गए हैं। जिसमें कारण शरीर (स्वभाव का शरीर) ही सबसे महत्वपूर्ण शरीर है। यही जन्म-मरण का कारण बनता रहता है। यही संसार में फँसाए रखता है, तथा यही भगवत् चरणों में पहुँचाकर जन्म मरण से छुटकारा दिला देता है।

इसका मुख्य कारण है- **सम्बन्ध ज्ञान**। चाहे संसार से सम्बन्ध हो जाये चाहे भगवान् से सम्बन्ध हो जाये। इन दो में एक से सम्बन्ध अवश्यमेव होगा। एक से दुःख और एक से सुख। कुसंग से दुःख तथा सत्संग से सुख।

सम्बन्धज्ञान को ही स्वरूपज्ञान कहते हैं।

हर जीव का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ व्यक्तिगत रूप में निश्चित रूप से एक निजी सम्बन्ध रहता है। जैसे कि श्रीराम भक्त हनुमान जी का प्रभु श्रीरामजी के साथ दास्य भाव में नित्य सम्बन्ध है। यशोदा मैय्या का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ वात्सल्य भाव में माता के रूप में नित्य सम्बन्ध है।

"नित्य" शब्द का प्रयोग इसलिये किया जाता है। क्योंकि भगवान् नित्य हैं तथा जीवात्मा भी भगवान् का नित्य अंश होने के कारण वह भी नित्य ही है। अर्थात् भगवान् के साथ जीव का नित्य सम्बन्ध है। उसी सम्बन्ध के अनुसार भगवान् की सेवा में रत रहते हुए उन्हें प्रसन्न करना— यही जीव का वास्तविक धर्म है।

***जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।**
कृष्णेर 'तटस्था-शक्ति' 'भेदाभेद प्रकाश'॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला, 20.108)

---

*जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति है। कृष्ण के साथ जीव का एक ही साथ भेद तथा अभेद प्रकाशरूपी सम्बन्ध है। जीव सूर्य रूप कृष्ण का अंश अर्थात् किरण है अथवा अग्नि से निकली हुई चिनगारी के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें सूर्य से निकलकर भी कभी सूर्य नहीं बन सकतीं, उसी प्रकार जीव कृष्ण का अंश होकर भी कभी कृष्ण नहीं बन सकता। यही 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' है। इसलिए कृष्ण के प्रति नित्य दास्यत्व ही जीव का नित्य स्वरूप है।

भगवान् की इच्छा से भगवान् के निजजन श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में भगवान् श्रीगौरचन्द्र शिक्षा का सार उक्त पयार में व्यक्त किया है।

भगवान् के साथ हमारा क्या नित्य सम्बन्ध है इसका ज्ञान होना, इसी को सम्बन्धज्ञान तथा स्वरूपज्ञान कहते हैं। यह प्राप्त होने के बाद और कुछ प्राप्त होना या करना बाकी नहीं रहता। यह अन्तिम सीढ़ी है।

सम्बन्ध ज्ञान में शिशु भाव का सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है, जो एकदम स्वच्छ सम्बन्ध है। अंधाधुन्ध चलते रहो, कहीं गिरने का जरा भी डर नहीं है। अन्य सम्बन्धों में कहीं न कहीं, कभी न कभी गिरने का डर होता है। चाहे सखा भाव का हो, या चाहे रति भाव का हो। अपराध होने का व मर्यादा में चलने का भय सदा बना रहता है। शिशु भाव में बेधड़क जीवन भर चलते रहो। तनिक भी भय नहीं है। इसमें हर समय रोते ही रहो। सदा ठाकुर-ठकुरानी की गोद में सोते रहो, मचलते रहो। धूल में सनते रहो। क्या कोई भय रहता है ? मस्ती में खेलते रहो! जब भूख लगे तो रोना शुरू कर दो। तुरन्त, ठकुरानी आकर गोद में ले लेगी तथा अपना स्तनपान कराते हुए सिर पर हाथ फेरती रहेगी तथा खिलौना देकर आंगन में अपने शिशु को उतारकर खेलने के लिए छोड़ देगी। फिर शिशु आंगन से बाहर चबूतरे तथा रास्ते की तरफ खेलते-खेलते चला जाता है। उसे कोई फिकर नहीं होगी, फिकर तो उसकी माँ (ठकुरानी) को होगी कि बच्चा कहीं गिर न जाये। उसका ख्याल माँ हर क्षण रखती है!

रामवचन-

मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
करहुं सदा तिनकी रखवारी।
जिमि बालक राखहि महतारी।।

यह निश्चित है, कि भक्त जब सारी जिन्दगी शिशु भाव में भगवान् के चरणों में खेलता रहेगा, तो क्या अन्त में अर्थात् मृत्यु के समय में क्या उसे डर रहेगा? क्या माँ उस समय शिशु से दूर रहेगी।

माँ (ठकुरानी) अवश्य उसे अपनी गोद में चढ़ा लेगीं। उसका कारण शरीर सदा के लिए नष्ट हो जायेगा। आनन्द सागर में डुबकी लगाने हेतु सदा के लिए चला जायेगा। इसमें रत्तीभर भी सोचने की गुंजाईश नहीं है।

यह ठाकुरजी की प्रेरणा से प्रेरित लेख है। चाहे आप मानें या न मानें। मैं ऐसा स्वप्न में भी लिखने में असमर्थ हूँ। ठाकुर जी यदि कृपा करें तो सम्बन्ध ज्ञान का भाव शीघ्र बदल सकता है, यदि उनसे रो–रोकर प्रार्थना की जाये। भाव बदलने में देर नहीं होती, अन्तः करण ही इसका आधार है। सच्चे दिल से हर परिस्थिति बदली जा सकती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कितने रो–रोकर पद रचना करते थे। प्रत्यक्ष उदाहरण है ही। श्रीनरोत्तम दास ठाकुर रो–रोकर भगवान् को पुकारते थे। फिर इसमें सन्देह कैसा?

कहते हैं कि रोना अपने बस की बात नहीं है। इसमें खास कारण है, संसारी मोह। यह मोह अहंकार का कारण बन जाता है एवं अहंकार ठाकुरजी को पसन्द नहीं है। अतः रोना दूर की वस्तु बन जाती है। एकदम संसार से वैराग्य हो, एकदम संसार का अवलम्बन छूट गया हो, तब कहीं रोना आ सकता है। जब तक भौतिकता का अवलम्बन रहेगा, तब तक ठाकुरजी की तरफ का अवलम्बन केवल कपट मात्र होगा। यह इतना सूक्ष्म तथा झीना है कि अन्दर घुसने पर भी पकड़ में नहीं आता। कहीं न कहीं मोह की गन्ध रहती है, जो ठाकुर जी की तरफ जाने में और प्रीति कराने में अलगाव बनाती रहती है।

यदि उक्त खतरनाक परिस्थिति न होगी, तो भगवद्चरणों में रोने के लिए जबरदस्त आवेग आयेगा। स्वतः ही रोना फूट पड़ेगा। फिर उसका अवलम्बन ठाकुर चरणों के सिवाय कहाँ पर रहेगा!

उसको तो ठाकुर अन्दर–बाहर दिखाई देगा। जब उसे अलौकिक आनन्दानुभूति होने लगेगी तब क्या वह वहाँ से हट सकेगा ? चाहे उसे कितने ही बड़े संकट पर संकट क्यों न आये, वह एक क्षण भी विचलित नहीं होगा।

इसका खास उदाहरण है–*नृसिंह पुत्र प्रह्लाद। क्या वह कभी डरा ? इसका दूसरा उदाहरण है, नामाचार्य हरिदास ठाकुर, क्या वह मार खाने से डरे ? जब अलौकिक आनन्द आता है, तब उस पर भौतिकता की मार प्रभाव नहीं कर सकती। यह एक ऐसा अमोघ कवच है, जिसको तोड़ने में कोई शक्ति सक्षम नहीं हो सकती।

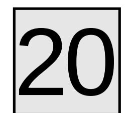
अब समय नहीं है। काल रात्रि आ जाने में देर नहीं है। जल्दी चेत जाना चाहिए। भौतिकता को पीछे छोड़कर ठाकुर चरणों में बैठ जाना ही श्रेयस्कर रहेगा। यह सब अन्तिम साधन हरिनाम का आधार लेकर रोना होगा। जीभ और कान का घर्षण सन्त चरण में (प्रत्यक्ष रूप में या मानसिक रूप में) बैठकर होने पर जल्द रोना आ जाता है। हँसते–हँसते युग बीत गए। अब तो आखिरी रोना सन्तों से ही होगा।

सब तरफ से मन को हटाकर ठाकुर व सच्चे सन्त के पास प्रार्थना करने पर तुरन्त लाभ होगा। अनन्त सन्त हो चुके हैं। कभी किसी के चरणों में बैठकर रोवो तो कभी किसी के चरणों में बैठकर रोवो। अवश्य रोना आ जायेगा। कम से कम 24 घंटे में एक घंटे तो रो–रोकर हरिनाम जपना चाहिए।

यह मैं नहीं लिख रहा हूँ, ठाकुरजी आप पर कृपा करने के लिए मुझे निमित्त बनाकर आपको गोद में लेना चाहते हैं। आप जानते ही हैं कि, मैं किस निम्न श्रेणी का मानव हूँ। लेकिन भगवद्कृपा हो जाये तो गधा भी वेद का विद्वान् बन सकता है। लेकिन यह बात मेरे अन्दर नहीं है, मैं तो केवलमात्र निमित्त बन गया हूँ। यह निमित्तता भी सन्तों की मेरे ऊपर कृपा ही है।

---

*नृसिंह पुत्र प्रह्लाद = श्रीनृसिंह भगवान् की लीला में हिरण्यकशिपु प्रह्लाद जी के पिता थे, परन्तु, यहाँ शिशु की तरह भगवान् के लिए रोने की बात बताई गयी है, इसलिए 'नृसिंह' पुत्र प्रह्लाद ऐसा उल्लेख किया गया है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 25/06/2006

परमादरणीय श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणारविन्द में इस अधमाधम दासानु–दास अनिरुद्धदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति स्तर बढ़ने तथा चातुर्मास में 3 लाख जप करने हेतु सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना।

हरिनाम से प्रार्थना

मुझे निष्किंचन बनाकर अपने चरणों में स्थान देने की प्रवृत्ति प्रकट करने की कृपा करें। भक्तों से सच्चा नाता निभाने की सक्षमता देने की कृपा करें।

आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु मेरी जिह्वा पर आओ।।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
इकतारे के तारों से निकला हरिनाम उद्गार।
जगत भाव पीछे जो छूटा, हरि से हो गया प्यार।।

जब तक संसार से वैराग्य नहीं होगा, तब तक ठाकुर के प्रति प्यार नहीं होगा। जब तक ठाकुर से प्यार न होगा, तब तक ठाकुर जी के लिए छटपट नहीं होगी। छट–पट ही एक अटूट रस्सी है, जो ठाकुर जी को खींचकर सामने खड़ा कर देती है। ठाकुर के लिए रोने से ठाकुर जी का चित्त अकुला उठता है। उनसे भक्त का दर्शन करना व स्वयं का दर्शन देना बाध्यता में पलट जाता है।

उक्त अवस्था का स्तर होगा केवल मात्र हरिनाम को कान से सुनकर ही। दूसरा कोई उपाय त्रिलोकी में कहीं पर नहीं है। चाहे

कितना ही सत्संग करो, चाहे कितना ही जप करो, चाहे कितना ही तीर्थाटन करो, कुछ हाथ नहीं लगेगा।

कान (श्रवण) व जीभ का घर्षण ही विरहावस्था प्राप्त करा देता है। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। कोई भी करके तो देखो। अगर ऐसा नहीं हो तो सब ठौर असम्भवता का राज्य होगा।

लेकिन यह तब ही होगा जब संसार का लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं होगा। मठ की सेवा साक्षात् भगवद् चरण की सेवा है। इस सेवा से आनन्दानुभूति होना परमावश्यक है। यदि ऐसा अनुभव में नहीं आ रहा है, तो कहीं न कहीं अधूरापन है। भागवत, रामायण व अन्य धार्मिक ग्रन्थों से पढ़ने को मिलता है कि कही भी जाओ, सब जगह पर झंझट मिलेगा ही। उन झंझटों की परवाह न करते हुए अपने रास्ते से न डिगकर चलते ही रहे तो अन्त में भगवद् चरण प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा मैंने संतों से सुना भी है व ग्रन्थों में पढ़ा भी है। मेरी इसमें कोई सक्षमता नहीं समझें। एक तुच्छ मानव क्या इतनी लेखन क्रिया कर सकता है ? असम्भव है।

भजन–गीति से यही शिक्षा मिल रही है, कि ठाकुर जी के प्रति रोना कब होगा ? रोना भी सन्त ही दिया करते हैं, क्योंकि उनके हृदय में रोने का सिन्धु लहराता रहता है।

यदि रोने की बूँद कोई लेना चाहे तो किसी सच्चे सन्त, विरही सन्त से उनके चिंतन द्वारा ही ले सकता है। साक्षात् रुप में मिलने की जरुरत नहीं है, क्योंकि सन्त चिन्मयता का भण्डार होता है। वह साधारण मानव नहीं है। भक्त जो मानसिक रूप से सेवा करता है, तो वह सेवा अन्त में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाती है।

कोई सन्त ठाकुरजी से मानसिक रूप में होली खेला करता था तो वह भक्त प्रत्यक्ष में रंगीला होकर बाहर निकला। चित्र में भगवान् विराजते हैं। चित्र का मनन भगवान् को आकर्षित कर लेता है। भगवान् को वैसा ही जबरन करना पड़ जाता है जैसा कि

गीता कहती है– जैसा भक्त करता है, वैसा मुझे भी करना पड़ता है!

हरिनाम को जपते हुए किसी विरही सन्त से मानसिक चिन्तन द्वारा मिलना चाहिए। उसका ठाकुर के प्रति विरह आपके चित्त में भी आ जायेगा। मेरे बहुत से गुरुवर्ग हो गए हैं, जिन्होंने ठाकुर जी से जुड़कर अपना जीवन यापन किया है। किसी भी गुरुवर्ग में से किसी भी सन्त के चरणों में बैठकर हरिनाम जपा जा सकता है। साक्षात् ठाकुर जी का चिन्तन थोड़ा मुश्किल पड़ता है व ठाकुरजी अकेले न आकर सन्त के माध्यम से भक्त के हृदय में आते हैं।

जीवन थोड़ा है, न जाने अगला चतुर्मास जीवन में आये न आये, तो अभी से कमर कसकर जाने की तैयारी कर लेनी होगी। किराया न होगा तो बीच में पकड़े जायेंगे। अपने स्थान पर पहुँचने में देर हो जायेगी। गुरुदेव मैं आपके चरणों का आसरा लेकर अपने खास स्थान (घर) पर पहुँचना चाहता हूँ। जहाँ से फिर कहीं जाने का मन नहीं करता।

अगला समय कुछ अस्वस्थता में बीत सकता है। अतः अभी से कमर कसकर भगवान् को पकड़ने में ही लाभ है। अगला जन्म श्रीमानों के घर पर ही होगा। परन्तु इसी जन्म में भगवद्चरणों की प्राप्ति हो जाये तो गर्भाशय का दारुण कष्ट भोगना नहीं पड़ेगा। अगर मौत सामने खड़ी हो, तो क्या कोई दूसरे भाव में रत हो सकता है ? उसको कुछ नहीं सूझता, केवल अपने सहायक को पुकारता है। नैय्या डूब रही हो तो दूसरे नाविक को पुकारेगा। मुझे बचाओ। भागकर नाविक उसे बचा लेता है। मौत से बढ़कर और कोई दूसरा भय त्रिलोकी में है, जो मौत आये एवं हँसता हुआ जाये ? आज कैसा शुभ क्षण है जो मैं मेरे अमर माँ बाप की गोद में जा रहा हूँ। अब तक मेरे असली माँ–बाप की गोद नहीं मिल पाई थी। यह तब ही होगा जब मोह–ममता का पिण्ड छूट जाएगा अर्थात् सम्पूर्ण रूप से वैराग्य दिल में समाया होगा। मोह–ममता इतनी सूक्ष्म वृत्ति है कि इसको पकड़ना असम्भव ही है।

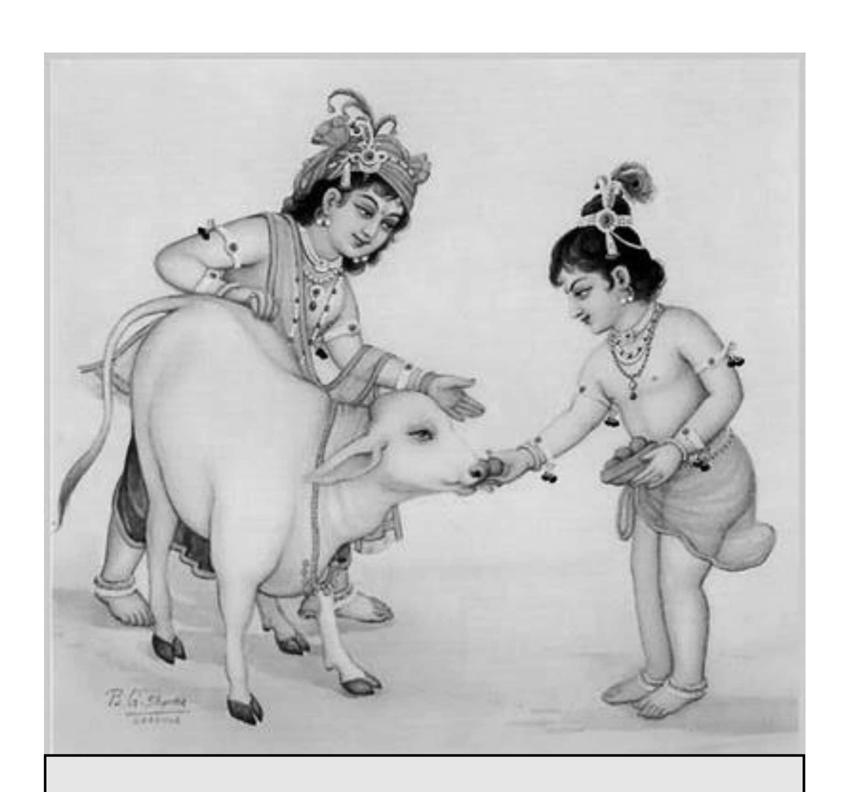
इसमें स्वयं का अहंकार ही कारण है, अतः इस अहंकार के कारण ही असली माँ–बाप से दूर रहते हैं। यह भी बहुत सूक्ष्म है, इसे अनुभव पकड़ नहीं सकता। हाँ, जब भगवान् के प्रति रोना प्रकट हो जाये तो कुछ पकड़ में आ सकता है।

ऐसे समर्थ गुरु–वर्ग की चरणों की कड़ी में जुड़कर भी यदि कड़ी से विलग रह गये तो कितना बड़ा नुकसान हाथ लगा। यह जुड़ना अपने बल पर नहीं है, यह पूर्व–जन्म की भक्ति पर निर्भर है। तब ही ठाकुर जी सच्चे गुरु के रूप में अपने खोए हुए शिशु को अपना लेते हैं। वरना तो अनन्त गलत मार्ग में जीव चला जाता है, क्योंकि उस जीव की सुकृति कमजोर है।

अच्छे मार्ग वालों में भी अलगाव पना रहता है। यह भी उन्नति का ही कारण बनता है। सच्चे भक्त को कोई कष्ट दे ही नहीं सकता। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद के विरोधी भी प्रभुपाद का बाल भी बांका नहीं कर सके। सन्त कबीर पर भी बहुत आघात हुआ, मीरा पर भी बहुत अत्याचार हुआ, प्रह्लाद को भी बहुत सताया गया। अनेक उदाहरण हैं, इसमें भी मंगल ही होता है। इससे तो उत्कर्ष बढ़ता है, कम नहीं होता।

आप जिस अवस्था, स्थिति में चल रहे हैं, भगवान् की ही प्रेरणा समझकर अपने पथ पर चलते रहना चाहिए। इसमें भी मंगल ही है।

नोट : रात में मन को एकाग्रचित करके हरिनाम का आसरा लेना चाहिए। दिन में तो कई असुविधा होती रहती हैं। भक्तों से की गई प्रार्थना ही सहायक होती है। ठाकुर से प्रार्थना भक्तों की प्रार्थना से कमजोर पड़ती है। क्योंकि, ठाकुर जी भक्त की इच्छा निभाया करते हैं, अपनी इच्छा तुच्छ कर देते हैं।



दानव्रततपस्तीर्थक्षेत्रादीनाञ्च या स्थिताः।
शक्तयो देवमहतां सर्वपापहराः शुभाः।।
राजसूयाश्वमेधानां ज्ञानसाध्यात्मवस्तुनः।
आकृष्य हरिणा सर्वाः स्थापिता स्वेषु नामसु।।

(स्कन्धपुराण से उद्धृत)

दान में, व्रत में, तप में, तीर्थ-क्षेत्रों में, प्रधान-प्रधान देवताओं में समस्त प्रकार के पापों को हरण करने वाले सत्कर्मों में, शक्ति समूह में, राजसूय और अश्वमेध यज्ञादि में तथा ज्ञान-साध्य आत्म वस्तु में— जहाँ भी जो कुछ है, श्रीहरि ने उसे वहाँ से आकर्षण कर अपने नाम में स्थापन कर दिया है।

21

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी, राजस्थान
दि. 20/05/2006

परमाराध्यतम व परमश्रद्धेय, शिक्षागुरुदेव श्री भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़कर विरहाग्नि प्रज्वलित होने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

रोते क्यों हैं भगवान्?

मैं जो भी आपके चरणों में सेवार्थ लिख रहा हूँ, भक्तों की तथा श्रीगुरुदेव की कृपावर्षण से ही लिख रहा हूँ। तुच्छ जीव आकाश में सूर्य भगवान् को कैसे छू सकता है। लेकिन इस लेखन से मेरे मन को शान्ति व आपका शुभचिन्तन होता रहता है। यह मेरे भजन में सहायक रहता है।

प्रश्न– भगवान् शीघ्र प्रसन्न कैसे हों?

उत्तर– श्रीगुरुदेव व महत् पुरुषों की तन, मन, धन, तथा प्राण से सेवा करने से। उनके चरणों में बैठकर, मीठे वचन से भजन हेतु पूछने से।

प्रश्न– मानव के चित्त में दुर्गुणों का वास रहता है। सद्गुण कैसे आ सकते हैं?

उत्तर– सद्गुरु और महत् पुरुषों की कृपा का अवलम्बन ही सर्वोत्तम है। तब सद्गुण आकर बसने लगते हैं।

प्रश्न– जीव व आत्मा में क्या अन्तर है?

उत्तर– जीव आत्मा – परमात्मा का अंश स्वरूप है। जीव मायाबद्ध होने से आत्मा से दूर रहता है। या यों कहिए जीव संज्ञा जगत् आसक्ति से ही है। आत्मा भोक्ता है। जीव भोग्य है। जीव भगवान् कभी नहीं बन सकता। जीव आदि जन्म से ही भगवान् का

किंकर (दास) है। या यों कहिए कि कारण शरीर (असत् स्वभाव) ही **जीव** की संज्ञा है। जब कारण शरीर (सत् स्वभाव) अपना अहम् जगत से तोड़कर भगवान् के चरणों में अर्पित हो जाता है तो जीव संज्ञा समाप्त होकर शुद्ध आत्मा बनकर आवागमन से सदैव के लिए छूट जाता है। आवागमन तब ही होता है, जब भगवान् उस शुद्ध आत्मा को जीवों के उद्धार हेतु मृत्युलोक में भेजते हैं। जैसे नानकदेव, सूरदास, तुलसीदास, श्रीगुरुदेव आदि।

प्रश्न– पाप और अपराध में क्या अंतर है ?

उत्तर– पाप जीव जन्य होता है। अपराध महत् जन्य होता है। पाप करने से भगवान् इतने क्रोधित नहीं होते, जितने अपराध से होते हैं। भक्त भगवान् का प्यारा होता है। अन्य जीव अपने कर्म भोग करते रहते हैं। भगवान् को उनसे कोई प्रयोजन नहीं। जीव को भगवान् से कोई प्रयोजन नहीं रहता। भागवत में सनकादिकों के प्रसंग में भगवान् ने सन्तों को अपना आराध्य देव घोषित किया है। भगवान् कहते हैं, 'संतों की रज (चरणधूलि) से मुझे सब सामर्थ्य प्राप्त हुआ हैं।' उद्धव ने भगवान् से प्रार्थना की है, 'मुझे वृन्दावन में कोई झाड़ी आदि बना दें ताकि गोपियों की चरणरज मुझ पर पड़ती रहे तो मेरा जीवन सार्थक बनता रहे।' महत् चरण रज ही महत्वशील है। कोई इसे छोटा न समझे वरना अपराध हो जाएगा।

प्रश्न– अपराध क्यों करता है मानव ?

उत्तर– असत् संग व पिछले जन्मों के संस्कारवश।

प्रश्न– अपराधी को कितना दण्ड भोगना पड़ता है ?

उत्तर– अपराधी को दण्ड उसके अपराध के मापदण्ड पर निर्भर करता है। भक्त की भक्ति के मापदण्ड पर आधारित है। शरणागत को भगवान् हर क्षण अपने चित्त से लगाए रहते हैं। जैसे माँ अपने शिशु को हृदय से लगाकर रखती है। उसको जो भी दुःखी करेगा, माँ को सहन नहीं होगा।

प्रश्न– क्या अपराध मार्जन का कोई संशोधन है ?

उत्तर– अवश्य है! जिससे अपराध हुआ है उसकी चरणरज, चरण जल तथा महाप्रसादी लेने से ही अपराध क्षमा होता रहता है। लेकिन अलक्ष रूप में लेवे। उसको मालूम नहीं होना चाहिए। यदि मालूम हो गया तो दुगुणा अपराध हो जायेगा। क्योंकि उसको दुःख होगा। प्रत्यक्ष रूप में अपराध का मार्जन उसकी सेवा करके करना चाहिए।

प्रश्न– भगवान् क्या खाते पीते हैं ?

उत्तर– भक्त का भाव।

प्रश्न– भगवान् कहाँ रहते हैं ?

उत्तर– शरणागत के हृदयकमल पर विराजते हैं।

प्रश्न– भगवान् कब रोते हैं ?

उत्तर– भगवान् तब रोते हैं, जब भक्त उनकी याद में विकल हो जाता है। जैसे गोपियाँ! भगवान् गोपियों के लिए कहते हैं– “गोपियो! मैं अनेक जन्मों में भी तुम्हारी भाव की चिरस्थिति से उऋण नहीं हो सकता।”

प्रश्न– भगवान् रोते क्यों हैं। वे तो सर्वसमर्थ हैं ?

उत्तर– भगवान् भक्त की कठपुतली है, जैसे भक्त करता है, वैसा ही भगवान् को करना पड़ता है। यह गीता का उपदेश है।

प्रश्न– महत् पुरुष कब रोता है ?

उत्तर– जब संसार से वैराग्य होकर भगवान् को हृदय से पुकारता है, तो उसे रोना निश्चित आता है। वह भगवान् से मिलने के हेतु तड़पता रहता है। तब भगवान् भी भक्त से मिलने के लिए तड़प जाते हैं।

प्रश्न– चिन्मय जन्म का क्या अर्थ होता है ?

उत्तर– चिन्मयता Super Natural अलौकिकता का सूचक है। जिस जीवात्मा में चिन्मयता का आरोप हो गया वह दिव्यता पा गया अर्थात् उसमें भगवत्ता का गुण प्रकट हो गया।

प्रश्न– आकुलता–व्याकुलता स्थिति से क्या आशय है ?

उत्तर– यह मन की स्थिति होती है। इसमें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता। यह अपने आराध्य को अष्टप्रहर याद कर–कर रोता रहता है। यह स्थिति अन्तिम स्थिति है। इसको कुछ भी नहीं सुहाता है। बराबर उन्हीं का चिन्तन रहता है। अतः भगवान् भी बेचैन हो जाते हैं। भेंट करने को प्रकट हो जाते हैं। ऐसी स्थिरता कोई विरले ही सुकृतिशाली की होती है।

प्रश्न– जहाँ सभी गुरु जी के शिष्य हैं व भजनशील भी हैं। कभी–कभी आपस में तू–तू, मैं–मैं होने की सम्भावना रहती ही है। तब अपराध होने से उसकी नैया कैसे पार होगी ? भगवान् को कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?

उत्तर– जिससे भी तू–तू, मैं–मैं हो गई, अलक्ष रूप से उसकी चरणधूलि वक्षस्थल व सिर पर मलने से तथा अलक्ष रूप में प्रार्थना रूप से चरणों में प्रणामादि कर लेवे। तब भगवान् अपराध क्षमा करते रहते हैं। अपराध तब ही होता है, जब उसका बुरा चिन्तन होता है। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, सबके मन की बात जानते हैं।

प्रश्न– भगवान् ने अनेक ब्रह्माण्डों की रचना कर, स्वयं अनेक जीव धारण कर, दुःख पाने का बखेड़ा रचा ही क्यों ?

उत्तर– भगवान् भी अकेले नहीं रह सके। उनको भी खेलने की चाह हुई। अतः ब्रह्मा रूप से सृष्टि रचना शुरू कर एवं जीवों के कर्मानुसार भोग भोगने हेतु 84 लाख योनियाँ बनाईं ताकि जीव अपना किया हुआ शुभ अशुभ कर्म भोग सके। परम पिता परमात्मा किसी जीव के दुःख का कारण नहीं है। जीव ही अपना शुभ–अशुभ कर्म करके दुःख पाता रहता है।

22

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 3/06/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मणीय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमल में इस अधमाधम दासानुदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर वैराग्य सहित बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

गृहस्थी भी साधु

आपकी ही प्रेरणा से मैं आपको पत्र लिखे बिना रह नहीं सकता। यदि नहीं लिखता हूँ, तो भजनस्तर गिरता रहता है। लिखने में परमानन्द महसूस होता है। आपकी ही वस्तु आपके चरणों में चढ़ाकर सुखी होता हूँ। मैं अनपढ़ जीव, क्या लेखन में सक्षम हो सकता हूँ? कभी नहीं।

प्रश्न- धर्म-शास्त्रों में भक्त पद रज, भक्त पदजल, भक्त अवशेष तथा झूठन महाप्रसादी पढ़ने में तथा सुनने में आती है। इसका सच्चे रूप में क्या आशय है?

उत्तर- पहला तो मुख्य आशय यह है कि जैसे महत् पुरुषों ने अपना जीवन यापन किया है, उसी प्रकार भक्त भी अपना जीवन यापन करता रहे। दूसरा जो गुप्त आशय है कि उक्त रज, जल, प्रसाद साक्षात् रूप में सेवन करे। जिसके शास्त्रों में प्रत्यक्ष उदाहरण देखने में आते हैं।

1. उद्धव जी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना करके, यही माँग की है कि, "मुझे कुसुम सरोवर व राधाकुण्ड परिक्रमा में, या कहीं भी वृन्दावन में झाड़ी झंकार में परिणत कर दे तो मेरा जीवन सफल हो जाये। गोपियों की पदरज मुझ पर पड़ती रहे। तो मैं निहाल होता रहूँ।"

2. प्रह्लाद जी की उक्ति- जब तक महत्जन की पद रज से अभिषेक नहीं होगा तब तक भगवद्-कृपा प्राप्त नहीं होगी।

3. गंगा जी ने पापियों के स्नान करने पर दुःख प्रकट किया तो भगवान् ने कहा– भक्त के स्नान करने पर तुम सदैव पवित्रता प्राप्त करती रहोगी।

4. केवट ने श्रीराम जी के चरण धोकर घर में चरणामृत छिड़का, तथा चरणामृत का पान किया।

5. अहिल्या श्रीराम जी की चरणरज लगते ही सुन्दर युवती बन गयी जो शापवश पत्थर की बनी हुई थी।

6. श्रीमद्भागवत पुराण की उक्ति– साधुगण, महापुरुषों के चरणों की धूल से अपने को निहाले बिना–केवल तप, वेदाध्ययन, यज्ञादि, कर्मादि से भगवान् का स्थान प्राप्त नहीं हो सकता।

7. भगवान् की प्यारी सखियों के चरणकमलों से जिस रज का स्पर्श होता है, वह रज धन्य हो जाती है। महत् पुरुषों की चरणरज का तो कहना ही क्या है? भगवान् ने चरण–रज के लिए सिर दर्द का बहाना किया। गोपियों ने चरण–रज दी। महत् पुरुष के चरित्रानु–सार चलना तो बहुत दूभर है, परन्तु भक्त चरण–रज और प्रसादी तो बहुत सरलतम है। इससे भक्ति बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है। 'भजन गीति' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्रश्न– जहाँ पर महात्माजनों का दर्शन बहुत दुर्लभ है, वहाँ पर रज, पद जल, भक्त अवशेष प्रसादी कैसे प्राप्त होगी? इसका भी कोई उपाय है?

उत्तर– हाँ, है! चिन्तन द्वारा सब सम्भव हो जाता है। क्योंकि यह सब चिन्मय रास्ते हैं। भक्त चिन्मय होता है। चिन्तन भी चिन्मय होता है।

प्रश्न– जीव की असली कमाई कौन सी है?

उत्तर– केवल भक्त व भगवद् प्रेम की प्राप्ति ही असली कमाई है।

प्रश्न– त्रिगुण क्या होते हैं?

उत्तर– त्रिगुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण) के बन्धन से ही जीव अथाह दुःख सागर में डूबा रहता है। सच्चे भजन से निर्गुण अवस्था प्राप्त हो जाती है। भजन होगा सत्संग से।

प्रश्न– निर्गुण क्या होते हैं ?

उत्तर– जिस जीव में गुण (तीन गुण) नहीं है, वह जीव दिव्य होता है। यह Super natural person होता है। इसको परमहंस की पदवी मिल जाती है। इसको तुरीय अवस्था प्राप्त हो जाती है। इसे भगवद्प्राप्त पुरुष कह सकते हैं।

प्रश्न– निर्गुण अवस्था कैसे प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर– जिसका कारण शरीर (स्वभाव का शरीर) सत् में परिणत हो। जो हरक्षण भगवद्चिन्तन में ओत–प्रोत हो। अहंकार की सूक्ष्मतम वृत्ति तब ही नष्ट होगी जब सच्चा ज्ञान, मन, बुद्धि, चित्त में समा जाएगा। अज्ञान, जगत् में आसक्ति का द्योतक है। वही आसक्ति भक्त और भगवान् की तरफ मुड़ जाये तो सच्चा ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो जाये। अन्धेरा रूपी अज्ञान समूल नष्ट हो जाये। ऐसा शास्त्रों व सन्तजनों का कहना है।

प्रश्न– मैंने श्रीगुरुदेव जी से पूछा, "महाराज जी साधु को कैसे पहचाना जाये ?"

उत्तर– **वेश भूषा से साधु की पहचान नहीं होती। गृहस्थी भी साधु हो सकता है। जो भी भगवद्प्राप्ति के लिए साधना करता है एवं जिसका अन्तिम ध्येय ही भगवद्प्राप्ति है, वह साधु है।**

किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय।
जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेई गुरु हय॥

कोई ब्राह्मण हो या संन्यासी हो अथवा शूद्र ही क्यों न हो, जो व्यक्ति कृष्णतत्त्व का जानकार है, वही गुरु होने का अधिकारी है। कृष्णतत्त्वविद् होना ही गुरु का प्रधान लक्षण है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत–मध्यलीला, 8.127)

प्रश्न– अब इनको पहचाने कैसे ?

उत्तर– आप उनके चरणों में जाकर बैठो, प्रणाम करो, तो साधु के मुख से निकलेगा, 'जय राधेश्याम' एवं 'भजन कैसा हो रहा है?' साधु पूछेगा। बाद में भगवद्चर्चा शुरू कर देगा। जैसे कोई पतिपरायणा स्त्री अपने पति की चर्चा होने पर आनन्द मानती है। उसी प्रकार भगवद्भक्त का भी भगवान् की चर्चा में बैठे रहने का मन करेगा। यदि साधु में साधुता नहीं है तो बैठने वाले का मन उठने की कोशिश में रहेगा। शर्म से बैठ सकता है। फिर उसकी दिनचर्या से मालूम हो जायेगा। उसके स्थान से, उसके पड़ोसी से, फिर उसके भगवद्चर्चा करने पर सात्विक भावों से मालूम हो जायेगा। कपटी साधु के पास मन ऊब जाता है, बैठने का मन ही नहीं करता।

प्रश्न– गुरुदेव! यह कैसे जाने कि मन से भजन हो रहा है?

उत्तर– जब जगत् का महत्वपूर्ण काम छोड़कर मन भगवान् की तरफ ही खिंचता रहे तथा चर्चा करने पर पुलक अश्रु होता रहे, तो समझना चाहिए कि भजन बढ़ रहा है। वरना घट रहा है।

प्रश्न– भजन बढ़ने का उपाय क्या है?

उत्तर– किसी अनुकूल सच्चे सन्त का सम्पर्क करते रहो तथा तन, मन, वचन तथा धन से सेवा भी करते रहो तो भजन स्तर बढ़ जायेगा।

प्रश्न– कलियुग में कपटी सन्त अधिकतर होते हैं। सच्चे सन्त का समागम दुष्कर है। सच्चे सन्त का सम्पर्क कैसे बने?

उत्तर– भगवद् कृपा बिना सच्चा सन्त नहीं मिल सकता। रामायण की उक्ति है–

बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं सन्ता।

ठाकुर से सच्चे दिल से प्रार्थना करने पर सच्चा सन्त मिल जाता है।

प्रश्न– तो फिर क्या यह मनुष्य जन्म बेकार ही चला जायेगा?

उत्तर– बिल्कुल नहीं, भगवान् के सन्तों के प्रति आतुरता ही जन्म-मरण से छुड़वाकर धाम में नित्य वास करा देती है।

प्रश्न– यह आतुरता कैसे प्रकट की जाये?

उत्तर– भगवान् के सामने रोकर ही आ सकती है।

प्रश्न– रोना तो एकक्षण भी आता नहीं है। कोई उपाय है ?

उत्तर– अवश्य उपाय है, हरिनाम को कान से सुनो। बार–बार नाम सुनने से आतुरता आकर रोना प्रकट हो जाता है। रोना ही भगवान् को खींचने की कला है।

प्रश्न– गुरुदेव आप आशीर्वाद दें कि ऐसी अवस्था मेरे हृदय में प्रकट हो।

उत्तर– अवश्य हो जायेगी। गुरु और भगवान् में अन्तर नहीं है। गुरु को तो देखा है लेकिन भगवान् को देखा नहीं है। अतः गुरुचरणों में बैठकर उनके चरणों का ध्यान करें।

श्रीगुरु पदनख मणिगन ज्योती। सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

मैं : श्रीगुरुदेव अब मैं चलूँ ?

गुरुदेव : ठीक है! जाओ और मन से हरिनाम करते रहना। कल फिर आकर कोई संशय हो तो पूछ लेना।

मैं : आपकी कृपा का ही सहारा है। मुझे क्या चिन्ता!

सहारा लो नाम का अमृत समझकर।
पीलो कान से मन को सटाकर।।
आठों याम हरिनाम को जपाकर।
आनन्दमय गुजरेगा जीवन सजाकर।।
इसी जप से कभी संकट न आता।
पापों की गंध जड़ से उखड़ जाता।।
इसी जप से विरह आनन्द होगा।
इसी जप से सन्तों से प्यार होगा।।
इसी जप से संसार असार होगा।
इसी जप से शान्ति विस्तार होगा।।
यही जप माता पिता भाई।
क्यों न पुत्र बनकर करलो कमाई।।

अनिरुद्ध दास तेरा तो, पाप अपराध करलो अघाकर।
शिशु सम्बन्ध से पाप अपराध होता ही नहीं।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 10/06/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव के चरण–युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरह सागर में डूबने की अनन्त कोटि बार चरणों में प्रार्थना!

सत्संग का अवसर

एक जुगुनू सूर्य को रोशनी दे, कैसी महान् मूर्खता है। ऐसे ही पतंगा दीपक के पास जाता ही है, चाहे मर भी जाये। क्योंकि पतंगे का स्वभाव ही है, कि रोशनी उसे खींच लेती है। बस इसी में समझना पड़ेगा। मैं पत्र लिखे बिना रह नहीं सकता। क्योंकि आपने मेरे मन को कैद कर रखा है। अब सोचिए, कैदी जाये भी तो कहाँ जाए ? पैरों में बेडियाँ पड़ी हैं। हाथ पीछे बाँध रखे हैं। बेचारा याद करके दिल ही दिल में रोया करता है।

बस, हरिनाम का आसरा लेकर जीवन यापन करता रहता हूँ। बस, यही सन्तोष करने की अमोघ औषधि है। इसी में असीम सुख मानकर मस्ती में रहता हूँ। अपने दिल के उद्गार इकतारे के तारों में भरकर आपके चरणों में अर्पण करता रहता हूँ और आनन्द मनाता हूँ।

अब तो सुविधायुक्त कमरा बरामदे के ऊपर बना दिया है। वहाँ आपको एकान्त व शुद्ध हवा मिलेगी। आप आ जायें तो मेरा जीवन सफल हो जाये। सत्संग की प्यास बड़ी जोरों से लग रही है। कोई सत्संग करके प्यास बुझाता नहीं।

ठाकुर को मन के उद्गार बोलकर इकतारे का आसरा ले लेता हूँ। जो नीचे आपके चरणों में अर्पण कर रहा हूँ।

दृढ़ विनयोक्ति–

हे गौर! दयावानों के सिरमौर बता दो।
छोड़ूँ मैं भला आपको किस तौर बता दो।।
हाँ, शर्त यह कर लो तो मैं हट जाऊँगा दर से।
अपना सा दयासिन्धु कोई और बता दो।।
यदि चरणों में, गौर रह सकता नहीं।
तो दयालु कोई और ठौर बता दो।।
यदि रोने पर भी आपका दिल पसीजता नहीं।
तो अनिरुद्ध शिशु को आपकी गोद के सिवा कुछ भाता नहीं।।

दैन्योक्ति–

भक्त बनता मगर, अधमों का सिरताज भी।
देखकर पाखण्ड मेरा, हँस पड़े गिरिराज भी।।
कौन मुझसे कपटी होगा, इस संसार में।
सुनके मुझ कपटी की चर्चा, डर गए यमराज भी।।
क्यों पापी कहे उनसे, कि अपनालो मुझे चैतन्य जी।
हैं पतितपावन तो खुद रखेंगे अपनी लाज भी।।
नैनों से सरिता बहा देंगे, हृदय उनका दहला देंगे।
अनिरुद्ध जो है पापी, अपनालो अब तो बापजी।।

प्रश्न– भगवद् चिन्तन हर पल कैसे हो ?

उत्तर– मृत्यु को सामने रखकर अपना जीवनयापन करें। किसी महत् पुरुष की कृपा प्राप्त करते रहें।

प्रश्न– भजन ह्रास करने वाली कौन सी अवस्थाएँ हैं ?

उत्तर– असत्–संग, असत्–आहार–विहार, अब्रह्मचर्य, अनुप–युक्त निद्रा, असत्–विचार, अशुद्ध रोजगार, मौन न रहना, अवैराग्य।

प्रश्न– 50–60 वर्ष की उम्र होने के बाद राजा लोग बदरिकाश्रम जाते थे, तो इसका क्या कारण हो सकता है ?

उत्तर– वृद्धावस्था में बद्री वन जाने पर जीव को आवागमन से छुटकारा मिल जाता है, यदि वहाँ एक रात भी रहने का अवसर

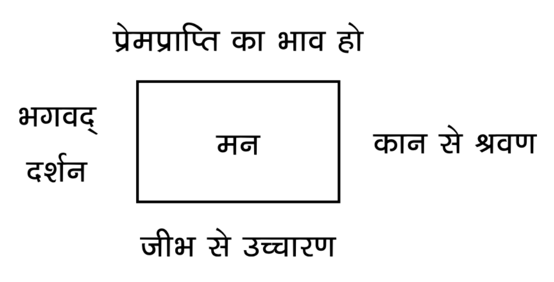
मिल जाये। गुरुदेव आप परम सुकृतिवान हैं, जो इस अवस्था में आपको वहाँ जाने का अवसर मिल गया। मेरी भी बड़ी इच्छा है। एकबार तो मैं जा चुका हूँ। वहाँ साक्षात् नर नारायण तपस्या करते रहते हैं। ऐसा शास्त्रों में अंकित है।

प्रश्न– सच्ची भक्ति क्या होती है ?

उत्तर– सच्ची भक्ति का लक्षण है– स्वाभाविक ही प्रवृत्ति हो, जैसे गोपियों की थी। उन्होंने न माला घुमाई, न सत्संग किया, फिर भी उनका श्रीकृष्ण में स्वाभाविक प्रेम तथा चिन्तन था। साधारण मानव को भक्ति का प्रयास करना पड़ता है। स्वाभाविक भक्ति की प्रवृत्ति, जन्म–जात होती है। प्रयास से नहीं होती। यह भक्ति दिव्य पुरुषों की होती है। जिनको भगवान् मृत्युलोक में जीवों का उद्धार करने के लिए भेजते रहते हैं। जैसे मीरा, सूरदास, तीर्थ महाराज, गुरुदेव, श्रीमाधव महाराज आदि।

प्रश्न– भक्ति प्राप्ति का सरलतम रास्ता कौन सा है ? विशेष करके कलिकाल में ?

उत्तर– भारतवर्ष में जन्म! सत्संग का सुअवसर! भक्तकुल में जन्म! फिर हरिनाम की सद्गुरु से शिक्षा! हरिनाम को कान से सुनकर स्मरण सहित आदर पूर्वक जप! जप का आसान सरलतम तरीका।



उक्त कोष्टक के अनुसार जप करने पर मन एक क्षण भी कहीं नहीं जा सकता। यह 100% सत्य रास्ता है। कोई भी आजमाकर देख सकता है। यदि ऐसा अभ्यास नहीं होता तो उस मानव का

जन्म व्यर्थ है। ऐसा करने से भगवान् के लिए मन तड़पने लगेगा। इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है।

नदी किनारे पर मानव बैठा है और लहरों को देख-देखकर आनन्द मना रहा है। उसे पता नहीं है कि कब बाढ़ आजाये और कब किनारा कट जाये और बहता हुआ भवसिन्धु में डूब जाये। न समझेगा तो ऐसा निश्चित ही होगा। चाहे वह युवक हो, चाहे बूढ़ा हो।

इन सब में से उद्धार होने का एकमात्र उपाय है, हरिनाम को कान से सुनने का अभ्यास बढ़ाये। चेत जाने का समय होने पर भी अनसुनी करे तो इससे बड़ा त्रिलोकी में कोई नुकसान नहीं है। यह अकाट्य सिद्धान्त है।

उक्त आकृति के अनुसार चतुर्भुज में मन को रोक दिया गया तो मन को निकलने का कोई भी रास्ता नहीं है। मन कहाँ जायेगा, केवल भगवद् चिन्तन में ही रमा रहेगा।

गो-कोटि-दानं ग्रहणे खगस्य प्रयागगंगोदककल्पवासः।
यज्ञायुतं मेरूसुवर्णदानं गोविन्द कीर्तने समं शतांशैः।।

(स्कन्धपुराण से उद्धृत)

सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के दिन कोटि गोदान, प्रयाग या गंगातट पर एक कल्प तक का वास, हजारों यज्ञ और सुमेरू पर्वत के समान ऊँचे सोने के पर्वत का दान - यह सब कुछ 'श्रीगोविन्द' नाम के कीर्तन के सौवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकता।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 5/07/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणारविन्द में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्यबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमाभक्ति प्राप्ति की बारम्बार प्रार्थना।

भगवान् से अपनापन

ठाकुर जी के प्रति अपनत्व ही विरहाग्नि प्रज्वलित होने का मूल साधन है। जब तक अपनत्व संसार में होगा, विरहमयी छटपट आ ही नहीं सकती। यह अपनत्व ही अहंकार (अहम्) को भक्षण कर जाता है। जब तक संसार में अहम (मेरापन) रहेगा, ठाकुर जी से अपनत्व होने का सवाल ही नहीं है। चाहे कितना ही सत्संग कर लो, कितनी ही माला हरिनाम की कर लो। अपनत्व तब ही जन्म लेगा जब कान से हरिनाम श्रवण होगा। बस यही एक भक्ति का मूल साधन है। यही शरणागति का मूल लक्षण होगा, वरना केवल कपट ही नाचेगा।

अपनापन एक ऐसी अटूट रस्सी है, जो विरह को खींच लेती है। गोपियाँ, द्रोपदी, भीलनी, नरसी मेहता, तुलसीदास जी, मीरा आदि अनेक इस अपनत्व के उदाहरण हैं।

अपनत्व होने से वियोग सहन नहीं होता। मिलने के लिए क्षण-क्षण युग के समान होता दिखाई देता है। फिर ठाकुर को भी भक्त का वियोग सहन नहीं होता।

चतुर्मास आरम्भ होने वाला है। कमर कस कर खड़े होने में असीम लाभ है। यों ही समय निकल जायेगा। काल आकर दबोच लेगा। चारों दिशाओं में वह मुख फाड़े खड़ा है। जब मौका मिलेगा तब ही निगल जायेगा।

कम से कम तीन लाख हरिनाम जप तो परमावश्यक ही है। आठों याम भजन–साधन में लगना चाहिए। दिन में बहुत सारे झंझट बखेड़े सामने खड़े रहते हैं। रात भजन के लिए अनुकूल रहती है। जहाँ सुनसान वातावरण, ठण्डी रातें, सुहावना मौसम हो, फिर इससे ज्यादा अनुकूलता क्या होगी ?

गीता कहती है–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.69)

जो सब जीवों के लिए रात्रि है, वह आत्मसंयमी के जागने का समय है और जो समस्त जीवों के जागने का समय है वह आत्म–निरीक्षक मुनि के लिए रात्रि है।

भजनानन्दी रात में जागता है। दिन में सोता है। जगने में ही अपना हित है। जिस प्रकार कामी को रात में नींद नहीं आती। इसी प्रकार विरही को रात में नींद नहीं आती। वह कामी विष पान करता है। विरही अमृत का मजा लेता है।

चाहे कुछ भी बोलो यह होगा केवल मात्र हरिनाम से! वह भी स्मरण को साथ में रखकर, अर्थात् कान से जोड़कर, दोनों का घर्षण अपनत्व प्रकट कर देता है। जब तक अपना खास घर नहीं मिलेगा, तब तक भटकन होती ही रहेगी। जब से बाप से बिछड़े हैं, झंझटों में फंसे हैं। कौन सुखी है ? केवल परमहंस भक्त ही अपने जीवन में मस्त है।

अपनत्व से अहम्, काम, संसारी–आसक्ति, दुःख, कष्ट, चिन्ता आदि सब कुछ विलीन हो जाता है। यह सब होगा हरिनाम से।

हरिनाम जिसको प्यारा लगा, वही चारों वेद, अठारह पुराणों उपनिषदादि का पूर्ण ज्ञाता हो गया। भीलनी ने कौन से शास्त्र पढ़े थे ? केवल श्रीराम से अमरत्व प्राप्त कर लिया।

हरिनाम ही भगवान् को प्रकट करने की सच्ची युक्ति है। लेकिन हरिनाम में कोई भाग्यशाली विरला ही रुचि रखता है। भार समझकर संख्या तो पूरी करता है। यह भी न जपने से तो उत्तम ही है। इससे सुकृति इकट्ठी होती रहती है। कई जन्म लेने के बाद हरिनाम में रुचि हो जायेगी और वह अमरत्व प्राप्त कर लेगा।

अवलम्बन (सहारा) भी एक महत्वशील भाव है। इसके बिना भगवद् सृष्टि चल ही नहीं सकती। जीव को पाँच तत्वों का पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, आकाश आदि का अवलम्बन चाहिए। इनमें से अगर एक भी तत्व की उपलब्धि नहीं हुई तो शरीर रह ही नहीं सकता। अवलम्बन बिना सब निस्सार है।

मनुष्य श्रीगुरुदेव द्वारा भगवान् का अवलम्बन लेता है। परन्तु, जब तक भगवान् से अपनापन नहीं होगा तब तक अवलम्बन से ही बात नहीं बनेगी। अपनत्व ही सारभूत भाव है। इसके बिना सब निस्सार होगा।

संसार में न जाने कितने मनुष्य मरते रहते हैं। अपनत्व न होने से कोई दुःख मन को नहीं व्यापता। अपने परिवार में कोई निजजन मरता है, तो अपार दुःख सागर में डूब जाते हैं क्योंकि उनसे स्वयं का अपनत्व है।

इसी प्रकार यदि भगवान् से अपनापन हो जाएगा तो सारा का सारा बखेड़ा ही मिट जाएगा। बस, इसी की कमी के कारण जीव दुःख भोग करता रहता है।

अब सवाल यह हो सकता है कि यह अपनापन कैसे प्राप्त हो ? तो इसका सरलतम उपाय है, कि मौत को सामने रखे और विचार करें कि तेरे सामने कितने ही जाने अनजाने व्यक्ति मौत के मुख में चले गए। अब तेरा भी नम्बर आने वाला है। फिर विचार करें, कोई सुखी है ? सभी किसी न किसी दुःख में पिस रहे हैं। इसमें कोई अपना नहीं, सभी पराए हैं। केवल मात्र भगवान् ही अपना है जो सबका बाप है, उसी की गोद में जाने से सुख

मिलेगा। चाहे कितने भी वैभवशाली हो जाओ। वैभव सुख नहीं देगा। क्योंकि वहाँ सुख दिखता है, लेकिन है नहीं।

भजन बिना ब्रह्मा व महादेव, देवी–देवताओं को ही सुख नहीं, तो फिर हम किस गिनती में हैं! बारम्बार विचार करें तो हरिनाम में रुचि होने लगेगी। **भगवान् ने जीवों को अपनाने हेतु अपना नाम सृष्टि में रमा रखा है इसलिए कि, इसी एकमात्र मेरे नाम को पुकारने से मैं (भगवान्) पुकारने वाले के पास न चाहते हुए भी खिंचकर आ जाता हूँ।** लेकिन इतना सरल साधन होने पर भी कोई इसको अपनाता नहीं और अपनाता है तो इसमें अपनत्व नहीं रखता है। इसी तरह इसका जीवन व्यर्थ की बातों में चला जाता है। फिर उसको यह संयोग मिलता भी नहीं।

रोग के रूप में मौत आँखें दिखा रही है, फिर भी मानव सोता रहता है, कितनी मूर्खता है। सोने में भी कारण है, सन्त अपराध। गौरहरि ने अपनी माँ तक को भी क्षमा नहीं किया, सन्त का मन से भी बुरा सोचना अपराध है। जितना सन्तों में मन से प्यार होगा, उतना ही नाम में रुचि होगी। भार समझकर नाम लेना कई जन्म करवा देगा। नाम से विरह होना चाहिए। यही अवस्था मन की परीक्षा करवा देती है। इसका आशय है, अभी भी मन संसार से जुड़ा हुआ है।

श्रीगुरुदेव दिल्ली में आ रहे हैं, मैं भी दर्शनार्थ जाऊँगा। यदि आप भी वहाँ रहें तो सूचित करने की कृपा करें, ताकि भजन की बातें आपसे हो जायें। वहाँ जाने से गुरुदेव की कृपा बरसेगी, तो भजन विरहमय होगा। आपका दर्शन, स्पर्श व वार्तालाप हो सकेगा।

बुढ़ापा व्याप रहा है, शरीर लड़खड़ा रहा है, अब अपनत्व आपसे व ठाकुर जी से ही होने में लाभ है। यह घर परिवार छोड़कर जाना ही है, तो इनसे अपनत्व करना भारी नुकसान है। हालांकि परिवार के लोग भक्त हैं, फिर भी खून का रिश्ता होने से फँसावट हो सकती है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 15/07/2006

परमादरणीय श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का बारम्बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम, तथा चतुर्मास में तीन लाख हरिनाम करने के लिए शक्ति प्रदान करने की चरण स्पर्श कर प्रार्थना।

कल मौत आयेगी

प्रभु का प्रेमसहित विरहमय भजन नहीं होता। इसका मुख्य उपाय निम्नलिखित है–

1. भक्त, भगवान् और स्वयं की कृपा का अनुभव महसूस करते रहना।

2. मौत को सिर पर मंडराते हुए मन से महसूस करना।

इसके अलावा भजन में रुचि होने का तीसरा उपाय हो ही नहीं सकता।

राजा परीक्षित को मालूम पड़ गया था कि मृत्यु आने में सात दिन ही हैं, अतः उनको बेचैनी हो गयी कि भजन तो हुआ ही नहीं, उद्धार कैसे होगा ? तब उन्हें एकदम संसार से वैराग्य हो गया तथा पूर्ण रूप से उनका मन भगवान् में लग गया।

हमारा मन इसीलिए नहीं लग रहा है, क्योंकि हम सोचते हैं कि, मौत अभी बहुत दूर है, अतः संसार में फँसावट रहती है। जब तक फँसावट रहेगी, वैराग्य होगा ही नहीं।

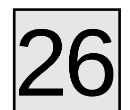
अतः ऐसा विचार करके महसूस करना होगा कि कल का भी पता नहीं है कि मैं जीवित रहूँगा भी या नहीं ? तब ही मन संसार से हट सकता है।

जब फाँसी का तख्ता सामने हो तो फांसी पर चढ़ने वाले का मन क्या संसार में रह सकता है ? उसे तो मौत सामने दिखाई देती है, वह कुछ नहीं चाहता। वह तो यही चाहता है कि मैं मौत से बच जाऊँ। भगवान् के लिए छट-पट तब ही होगी जब मौत दिखाई देगी। हरिनाम में भी मन लगेगा, सब सहारा छूटेगा तब भगवान् का सहारा होगा एवं रोएगा। भगवान् के नाम में कोई मन नहीं लगा सकता, केवल मौत के स्मरण से ही मन लग सकता है। फिर स्वयं ही नाम में मन लग सकेगा। हाँ! भक्त आशीर्वाद सहायक बन जाता है। क्योंकि भगवान् भक्त की सिफारिश मानते हैं। चर्तुमास में तीन लाख जप आवश्यक है। रात में 2.30-3.00 बजे से 6.00 बजे तक और बाद में दिन में हो सकता है। नाम ही आवागमन से छुड़ायेगा। क्योंकि यही कलियुग का धर्म है।

अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तपाः।
ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिताः।।
सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः।।

(पद्मपुराण से उद्धृत)

जिनकी कोई दूसरी गति नहीं है, जो भोगी हैं, दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं, ज्ञान और वैराग्य से रहित हैं, ब्रह्मचर्य-वर्जित हैं और जो समस्त धर्मों से बाहर हैं, वे केवलमात्र विष्णु तथा कृष्ण का नामकीर्तन कर जो गति प्राप्त करते हैं उस गति को सारे धार्मिकजन एक साथ मिलकर भी प्राप्त नहीं कर सकते।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 09/04/2006

परमाराध्यतम प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हृदय में भगवान् के प्रति विरहज्वाला भड़कने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

चरण रज का महत्त्व

16, 32, 64 माला तथा डेढ़–दो लाख हरिनाम जपने पर तथा अष्टयाम सत्संग सुनने पर भी अन्तिम पुरुषार्थ भगवद् प्रेम तथा भगवान् के प्रति विरहाग्नि न जलने की जीवन में सबसे बड़ी हानि निम्न कारणों से धर्मशास्त्रों में अंकित है।

1. भक्त अपराध मानसिक तथा स्थूल रूप से होते रहते हैं।
2. हरिनाम कान से सुनकर नहीं होता है।
3. असत् संग, ब्रह्मचर्य व्रत त्याग, संसारी आसक्ति।
4. जीवमात्र में दया का अभाव।

उक्त मुख्य चार कारणों से ठाकुर जी तथा सन्तों के प्रति प्रेम सम्बन्ध नहीं होता।

भक्त तथा भगवान् से प्रेम कैसे अंकुरित होता है, उसका सरलतम उपाय निम्नलिखित है, जो शास्त्रों तथा सच्चे भक्तों से प्राप्त होता है।

भक्त पद रज + भक्त पद जल + भक्त अवशेष प्रसाद + भक्त सेवा – (वाचिक, मानसिक तथा प्रत्यक्ष रूप में)

उक्त का स्थूल रूप है कि उनके आचरण तथा उपदेशानुसार जीवनयापन करना।

सूक्ष्म रूप है, कि साक्षात् रूप में भक्त की चरण रज सिर पर तथा सारे शरीर पर लगाना। इसी प्रकार चरण जल को मुख में डालना तथा भक्त अवशेष प्रसाद को सेवन करना। परन्तु, गुप्त रूप से, जिस भक्त के प्रति अपराध हुआ है उसे मालूम न पड़े। यदि मालूम होगा तो उसको दुःख होगा तो दुगना अपराध हो जाएगा।

इसका साक्षात् उदाहरण नीचे लिखा जा रहा है, जो ध्यान पूर्वक मनन करे।

1. श्रीउद्धव जी भगवान् से कह रहे हैं कि वृन्दावन में कहीं भी गोपियों के आस-पास मुझे वृक्ष, लता कुछ भी बना दो, ताकि हवा चलने पर गोपियों की चरणरज मेरे ऊपर पड़ती रहे तो मैं पवित्र होता रहूँगा।

2. भक्त प्रह्लाद की उक्ति- जब तक महत् पुरुष के चरण-रज से अभिषेक नहीं होगा, तब तक जीव का उद्धार कदापि नहीं होगा।

3. श्रीगंगाजी की भगवान् के प्रति प्रार्थना- हे प्रभु मेरे जल में पापी लोग स्नान कर पाप को मेरे अन्दर छोड़ जाएंगे तो मैं तो पापिनी हो जाऊँगी। इसका कोई उपाय बतायें।

भगवान् ने कहा- 'जब भक्त स्नान करेंगे तब वह पाप समाप्त हो जाएगा।'

4. श्रील रूप गोस्वामी का एक भक्त के प्रति मानसिक रूप से अपराध हो गया, तब सनातन गोस्वामी ने उन्हें भण्डारा करने को कहा। भण्डारा किया। सब प्रसाद पाने आए। जिस सन्त के प्रति अपराध हुआ वे नहीं आए। सबसे पूछा गया कि कौन सन्त नहीं आये। कहा गया कि, अमुक सन्त नहीं आए। तब श्री रूप ने उनके चरणों में पड़कर निवेदन किया कि, आप प्रसाद पावें। उन्होंने आकर प्रसाद पाया तब जाकर रूप गोस्वामी जी को भगवद् लीलाएँ स्फुरित होने लगीं।

5. श्रीराम ने भीलनी के झूठे बेर खाये। क्योंकि वह स्वयं चख-चख कर खिला रही थी। भगवान् प्रेम सहित खा रहे थे। भगवान् जब कह रहे हैं कि, सन्त तथा भक्त मेरे से बड़े हैं, मेरे आराध्य देव हैं तब भक्त का झूठा प्रसाद कितना बल दे सकता है! मनन कर महसूस करें।

6. अहिल्या जी पत्थर बन खड़ी थीं तब श्रीराम जी ने अपनी चरण-रज छुवा दी, तब अहिल्या जीवित हो गई। रज का कितना प्रभाव है।

7. केवट ने राम के पैर धोकर उनका चरणामृत अपने घर पर सबको पिलाया।

8. अम्बरीष महाराज के चरणों में दुर्वासा को अपराध मार्जन के लिए जाना पड़ा।

9. श्रीकृष्ण भगवान् को सिर दर्द हो गया, तो उन्होंने नारद जी को कहा कि, यदि किसी भक्त की चरण-रज मेरे सिर पर मल दो, तो मेरा सिर दर्द मिट जाये। नारद जी बहुत जगह माँगते फिरे परन्तु अपराध तथा नरकभोग के भय से किसी ने भी अपनी चरण-रज नारद जी को नहीं दी। वापस आकर उन्होंने कहा कि, भगवान् किसी ने चरण-रज नहीं दी। तब भगवान् बोले- तुम गोपियों के पास जाओ वे शायद दे देंगी। नारद जी ने गोपियों को सब बताया, तो गोपियाँ दौड़-दौड़ के अपने पैरों की मिट्टी को रगड़-रगड़ के देने लगीं और कहा कि, जल्दी जाकर दे दें। हमारे प्राणनाथ तड़प रहे हैं। जल्दी जाओ! क्या नारद जी के पास उनकी खुद की चरण-रज नहीं थी ?

अन्य कई उदाहरण हैं। जिनको पत्र में लिखना असम्भव है। अतः कहने का आशय यह है कि उक्त लिखे भक्त चरण रज, जल, प्रसाद इतने प्रभावशाली हैं कि भगवान् को लाकर सामने खड़ा कर देते हैं, क्योंकि भगवान् का एकमात्र स्थान भक्तों का हृदय कमल ही है।

एक भंगी जाति का भक्त था। उसकी फैंकी हुई आम की गुठ्ली जो कूड़े में पड़ी थी, साक्षात् भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु उसे उठाकर खा गए थे। अब इससे ज्यादा उदाहरण क्या हो सकता है ?

रामचरितमानस जघन्य अपराध का शिव का दिया हुआ दृष्टान्त–

इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। काल दंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहिं मरहि। भक्तद्रोह पावक सो जलहि।।

अपराधी उसी समय मरता नहीं वह मन ही मन घबराता रहता है। पावक लोहे को पिघलाकर द्रवित कर देता है। इसका उदाहरण है– जो श्रीवास पण्डित के घर के बाहर माँस लाकर रख देता था उसको कोढ़ हो गया, तो वह बुरी तरह से तड़पता रहता था। किसी ने उसके लिए गौरहरि से प्रार्थना की, तो गौरहरि ने कहा– 'वह करोड़ों जन्मों तक यूँ ही तड़पेगा'। गौरहरि की माँ का अपराध, जो श्रीअद्वैताचार्य के प्रति मन में हो गया था, तो गौरहरि ने अपनी माँ को भी क्षमा नहीं किया।

आप से कोई बात छिपी नहीं है, परन्तु लिखने में आनन्द आता है। सती स्त्री को पति की चर्चा जैसे प्यारी लगती है, वैसे ही तो आपका स्मरण मुझे प्यारा लगता है।

यदि अपने पुत्र के प्रति भी अपराध हो जाये तथा अपनी स्त्री के चरणों में अपराध हो जाये तो उसका भी मार्जन करना परमावश्यक है। क्योंकि ये भी भक्त श्रेणी में आते हैं। यदि ये भक्त न हों तो कोई अपराध नहीं होता।

श्रीगुरुदेव की जो प्रार्थना है, **'हे मेरे गुरुदेव करुणासिन्धु करुणा कीजिए'**– यह प्रार्थना गोरखपुर में जो कल्याण के सम्पादक हैं, जो मेरे जानकार थे उन्होंने लगभग, 40 साल पहिले मेरे से लिखवाकर ली थी। उन्होंने इस प्रार्थना को किसी पुस्तक में भी छपवाया था। आपने मुझसे एक दो बार पूछा भी था कि यह प्रार्थना आपने रची है क्या ? पहले तो मैं बताना नहीं चाहता था, परन्तु बार–बार पूछने पर मैंने बता दिया। मैंने यह गुप्त प्रार्थना किसी को नहीं बताई थी। क्योंकि बताने से भजन ह्रास हो जाता है। मैंने बचपन में लगभग

500 भजन लिखे हैं, जो गुप्त ही रखता हूँ। केवल मात्र आपके चरणों में ठाकुर जी ने प्रेरित कर बताया है। कुछ प्रार्थना आपके चरणों में अर्पण कर रहा हूँ, कृपया अंगीकार करें।

प्रार्थना

शिशु हूँ गौर मैं आदिजन्म का तुम्हारा।
सुना है तू है दया का भण्डारा।।
जो निजकर्म से होता तरने का सहारा।
तो फिर ढूंढ़ता क्यों सहारा तुम्हारा?
इस पामर की नजरों में जब तुम आए,
उसी क्षण में तरने का हो गया सहारा।
इस दुःखिया की बिनती सुनो मेरे बाप!
अनिरुद्ध दास शिशु है प्यारा तुम्हारा।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी द्वारा प्रस्तुत 'हरिनाम चिन्तामणि' चतुर्थ परिच्छेद, श्लोक 70,71,72 से उद्धृत)

भक्ति लभिवारे आर नाहिक उपाय।
भक्ति लभे सर्वजीव वैष्णव कृपाय।।
वैष्णव-देहेते थाके श्रीकृष्णेर शक्ति।
सेइ-देह-स्पर्शे अन्ये हय कृष्णभक्ति।।
वैष्णव-अधरामृत आर पद-जल।
वैष्णवेर पदरजः तिन महाबल।।

वैष्णव-कृपा को छोड़कर भक्ति को प्राप्त करने का और दूसरा कोई उपाय नहीं हैं। वैष्णव की कृपा से ही जीवों को भक्ति की प्राप्ति होती है। वैष्णवों के देह में श्रीकृष्ण-शक्ति रहती है। ऐसे वैष्णवों को स्पर्श करने से भी श्रीकृष्ण में भक्ति उदित हो जाती है। वैष्णवों की जूठन, वैष्णवों के चरणों का जल तथा वैष्णवों के चरणों की धूलि-'ये तीनों ही भक्ति की साधना में महाबल प्रदान करते हैं।

27

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 20/07/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का बारम्बार दण्डवत् प्रणाम तथा चतुर्मास के अनुष्ठान में सुचारु रूप से हरिनाम जप पूरा होने की करबद्ध प्रार्थना।

अश्रु बिन्दु के लेख

शास्त्र व सभी भक्तगण कहते हैं कि अपना भजन छिपाकर रखना चाहिए। वास्तव में कहना तो ठीक है, परन्तु इसमें भी अपवाद है। जिसके सिर पर काल मण्डरा रहा हो, सामने दुःख सागर उमड़ता दिख रहा हो, जिसका दूसरों का हित करने का अन्तःकरण से भाव हो, तो क्या उसके भजन का कोई कुछ बिगाड़ कर सकता है ? क्या प्रतिष्ठा उसके सामने आएगी ? क्या धन-वैभव उसे ललचायेगा ? जो फाँसी के तख्ते पर जा रहा हो, क्या उसे संसारी वैभव सता सकता है ?

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, श्रीरामानुजाचार्य हैं। इनके गुरुदेव ने मंत्र देकर आदेश दिया था कि इस मंत्र को छिपाकर रखना।

रामानुजाचार्य जी ने पूछा, क्यों महाराज!

श्रीगुरुदेव ने कहा- इससे भगवान् के दर्शन हो जाएँगे। यदि इस मंत्र को न छिपाया तो नरक भोग करना होगा।

रामानुज ने दूसरों के हित की भावना से छत पर जाकर जोर-जोर से सबको यह मंत्र सुना दिया।

श्रीगुरुदेव ने कहा- 'यह तुमने क्या किया ?'

रामानुज ने कहा- 'दूसरों को भगवान् के दर्शन हो जायें, तो उत्तम ही है। चाहे इसके बदले, मैं नरक क्यों न चला जाऊँ!'

श्रीगुरुदेव ने कहा– जब तुम्हारा जीवों के प्रति ऐसा भाव है, तो तुम नरक में कभी जा ही नहीं सकते। जिसका दूसरों के प्रति अन्तःकरण में हित करने का भाव है, उसका संसार क्या बिगाड़ सकता है ? उसे तो सभी को अपना भजन भाव बताने में कोई हर्ज नहीं, क्योंकि बताने से दूसरे भी वैसा भजन करना चाहेंगे।

फिर भी पात्र को बताना ही श्रेयस्कर होगा, हर किसी को बताने से कोई लाभ नहीं है। भैंस के आगे बीन बजाना निरर्थक ही है।

ठाकुर जी जैसी प्रेरणा करते हैं, उसी प्रेरणा से आपकी सेवा करने का मौका मुझे देते हैं। वह सेवा केवलमात्र हरिनाम में मन लगाने की है तथा नाम में विरहाग्नि कैसे प्रज्वलित हो, ऐसी सेवा मुझसे करवाते हैं। अतः चाहे इसे मेरी बुद्धि समझें, या भगवान् बुद्धियोग देते हैं, ऐसा समझें। जैसा कि गीता में भगवान् ने अर्जुन को बोला है कि– मैं बुद्धियोग देता हूँ!

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(श्रीगीता10.10)

जो प्रेमपूर्वक निरन्तर मेरा भजन करते हैं, उन्हें मैं ऐसा ज्ञान तथा बुद्धि प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वे मुझ तक आ सकते हैं।

जीव का अन्तिम प्रयोजन यह है कि, केवल हरिनाम से विरह हो जाये। विरहाग्नि भौतिकता को जला कर राख कर देती है। कान से सुनने में थोड़ी कठिनाई आती है, अतः ठाकुर जी ने सरलतम रास्ता यही बताया है कि, 'मैं भक्त के हृदय रूपी गुहा में हरदम रहता हूँ, अतः भक्त के चरणों में पड़कर मुझे याद किया जाये तो दसों इन्द्रियाँ एक ठौर आकर विरह जागृत कर देती हैं। मुझे तो कभी देखा नहीं परन्तु मेरे भक्त को तो पुस्तकों में देखा भी है, तो भक्त के चरणों में मन अधिक देर तक टिकेगा।'

जहाँ मन स्थिर होगा, वहाँ रोना अवश्य आयेगा। रोने से ठाकुर दर्शन होने लगेगा तो अधिक रोना प्रकट होगा। वियोग और संयोग दोनों में ही रोना आने लगेगा।

बच्चा जब रोता है तो माँ शीघ्र भागकर गोद में ले लेती है, तो भी शिशु रोना बन्द नहीं करता। ऐसा क्यों ? 'माँ ने इतनी देर के बाद मुझे क्यों सम्भाला' प्रेम के कारण रोने का ही यह दूसरा रूप है। जब रोना नाम से नहीं होगा, तो समझना चाहिए कि अभी रास्ता बहुत दूर है। जन्म–मरण के चक्कर से छूटने में देरी है। सब सन्तों के चिन्तन से ही, केवल मात्र उनके अवलम्बन से ही भगवान् मिलेगा। अखिल ब्रह्माण्डों में दूसरा कोई रास्ता नहीं है और बाकी सब रास्ते तो विडम्बना मात्र ही हैं। अनन्त संत हैं। सत्‌युग, द्वापर, त्रेता, कलियुग के किसी भी सन्त के चरणों की रज का (मानसिक रूप से) स्नान करलो, सन्तों की कमी आएगी ही नहीं।

यह सब मैं नहीं कह रहा हूँ, ये सब शास्त्र ढोल बजा बजाकर कह रहे हैं, परन्तु जो बहरा हो वह क्या लाभ ले सकता है ? उसको जो मानव जन्म मिला है, अन्त में बेकार चला जायेगा। उसे हरि नाम से कुछ नहीं मिलेगा, केवल भौतिक लाभ हो जायेगा। क्योंकि जीवन में जिसका चिन्तन होगा, नाम उसका लाभ कर देगा। नाम तो चारु चिन्तामणि है। नाम कल्पवृक्ष है। जो चाहोगे वह मिल जायेगा। लेकिन भगवान् नहीं मिलेगा। कभी भी नहीं।

समय नहीं है, सिर पर काल मुख फाड़े खड़ा है। कभी भी अचानक निगल जायेगा। अतः शीघ्र चेत जाना ही लाभप्रद होगा।

यदि समय मिले तो आप मेरे पर कृपा करने आ जाया करें। कभी छींड में कभी चण्डीगढ़ में, मैं वास्तव में आपकी कृपा का भिखारी हूँ। मुझ में न भक्ति है, न शक्ति है। मैं केवल ढोंगी हूँ। संसार में रमा हुआ, अनन्त अवगुणों की खान, गुण का तो मुझमें लेश भी नहीं है। यह सब लिखता हूँ, केवल मात्र ठाकुर की कृपा से, वे तो अदोषदर्शी हैं। मुझ जैसे पापी पर कृपा कर रहे हैं। क्योंकि पुत्र रघुवीर, अमरेश, हरिओम व बहुएँ सच्चे दिल से भक्तों की सेवा व नाम जप करती हैं। अतः उन पर कृपा होने से मुझ पर भी सन्तों व ठाकुर की कृपा हो गयी। परोसी हुई थाली मुझे मिल गई। अब मैं क्यों न उसका भोजन करूँ! वास्तव में सच्चे दिल से कह

रहा हूँ। वरना मैं तो गिरा हुआ प्राणी हूँ। रघुवीर की माँ तो ठाकुर के सामने बैठकर सुबक-सुबक कर रोती रहती है। आप मानो या ना मानो। ये सेवा का मौका मिलने से मैं भी भवसागर पार हो जाऊँगा। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। करने धरने वाला तो कोई और ही है। श्रीगुरुदेव के म्यूझियम बनाने में हम भी आप की कृपा से कुछ तुच्छ भेंट देने को योग्य हो गये हैं। जैसे ठाकुर जी की प्रेरणा होगी, जो दिलवाएंगे देना होगा। श्री भक्ति प्रचार विष्णु महाराज को मेरी ओर से प्रार्थना करना, मेरी भी तुच्छ भेंट स्वीकार करने की कृपा करें। श्रीओमप्रकाश आदि को दण्डवत्!

सन्तों के माध्यम से हरिनाम स्मरण करने से ही ठाकुर जी प्रसन्न रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, श्रीगौड़ीय मठ की भजन गीति। जिसमें ठाकुर से प्रार्थना न करके केवल मात्र भक्तों से भजन रति होने की प्रार्थना की गई है। अब कोई आँख, कान बन्द कर भजन गीति का पठन करे तो किसकी गलती है ? यह तो स्वयं की ही है। इसमें रामायण व भागवत तथा अन्य शास्त्र प्रमाण हैं। लेकिन नाम को जीभ से जपना परमावश्यक है।

उदाहरण स्वरूप-

1. **जीह नाम जप जागहि जोगी। बिरत बिरंच प्रपंच वियोगी।।**
2. **जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ। जीह नामजप जानहि तेऊ।।**
3. **पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नामजप लोचन नीरू।।**

इस तरह से जीभ से जपने के अनेक उदाहरण हैं।

आप गहराई से सोचिए, क्या गाँव का गँवार रूपी कीड़ा समुद्र को चोंच में भरकर खाली कर सकता है ? या खाली समुद्र को भर सकता है ? यह केवल भक्त चरण-रज का अमोघ प्रभाव है तथा श्रीगुरुदेव की असीम कृपा का ही फल है। जो पागल भी वेद का पारगामी विद्वान् हो गया। भगवान् और भक्त को दोष दर्शन तो कभी होता ही नहीं।

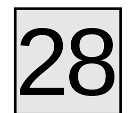
जब तक विरहाग्नि नहीं जलती तब तक कहीं न कहीं गलती हो रही है। मैं तो समझता हूँ, इसमें कहीं न कहीं मोह छिपा हुआ

है। यदि मन कहीं भी न हो तो फिर मन कहाँ टिकेगा ? **जब मोह कहीं नहीं है, तो मन को टिकने की जगह केवल भक्त और भगवान् ही होंगे।** मोह इतना सूक्ष्म है कि पता नहीं पड़ता। यह अहंकार का ही रूप है यह मेरापने का ही छायामात्र है। यह भक्त और भगवान् के चरणों में अवलम्बन की ही कमी है। जब तक पूर्ण शरणागति (अवलम्बन) नहीं होगी, तब तक तीव्र विरहाग्नि बुझी ही रहेगी। जब मोह चला जाएगा, तब स्वतः ही नाम से विरहाग्नि प्रज्वलित हो पड़ेगी। समय निकल रहा है। शीघ्र चेत जाना चाहिए। मैं आपको नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल आपके मुखारविन्द से ये अमृतवाणी अन्यों को सुनाने के लिए कह रहा हूँ।

विरह सागर में गोता लगाकर ही कुछ पाया जा सकता है। बाकी और सब तो विडम्बना मात्र है। हीरे, मोती, पन्ने आदि नग रत्न विरहसागर के पैंदे में ही मिला करते हैं। मैं जो चुन-चुनकर माला पिरोता हूँ उस माला को ठाकुर जी बड़े प्रेम से गले में धारण करते हैं। वही माला ठाकुर जी आप पर कृपा वर्षा करने के लिए आपके पास भेजते रहते हैं। मेरा कल्याण करने के लिए आप परमहंस निष्किंचनता की मूर्ति के पास सेवा कराने हेतु मेरे द्वारा भेजते रहते हैं। यह सेवा ही मेरा अनमोल धन है। अश्रु बिन्दुओं की स्याही से यह लेख लिखे जाते हैं।

अश्रु बिन्दु कोई साधारण जल नहीं है, यह ठाकुर जी के कलेजे का सन्तप्त जल है, जो प्रेम का प्रतीक है।

शीघ्र विरहाग्नि जलने के लिए प्रसाद सेवन युक्ति है। जब प्रसाद सामने आये, तो नमस्कार कर ऐसी भावना करें कि इस अमृत प्रसाद को मेरे ठाकुरजी ने पाया है। बाद में मेरे गुरुदेव ने और अन्य भगवद् प्रेमियों ने पाया है। अर्थात् यह चिन्मय है। अब मैं पाऊँगा तो मैं भी चिन्मय हो जाऊँगा। मौन होकर नाम जपते हुए प्रसाद पा लेना चाहिए तथा पानी भी ठाकुर को पिलाकर पीना चाहिए, तो एक हफ्ते में थोड़ा बहुत विरह होने लग जाएगा। बाद में जोरदार विरह होगा। **यह युक्ति ठाकुर जी ने ही बताई है।**



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 26/07/2006

महामहिम आचार्य श्रीश्री 108 श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज का अलौकिक चरित्र

महाराज जी अवतारी दिव्य पुरुष हैं। जब मेरे गुरुदेव 20 नवम्बर 1952 को जयपुर मन्दिर में पधारे थे, तब मैंने महाराज जी के प्रथम बार दर्शन किये।

जयपुर में सोमी हलवाई की धर्मशाला में श्रीगुरुदेव ठहरे हुए थे। मैंने देखा व महसूस किया कि दोपहर में प्रसाद लेकर सभी आराम किया करते हैं लेकिन महाराज विश्राम न कर अकेले माला जपा करते थे। एक दिन डरते-डरते मैं इनके चरणों में पहुँच गया एवं कुछ भजन पद्धति के बारे में जिज्ञासा की। महाराज जी ने बड़े प्रेम व प्रसन्नता से हरिनाम जपने का तरिका बताया। तब से मैं महाराज जी को जानता हूँ। जब ये ब्रह्मचारी वेष में थे, तब उनका नाम था कृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी एवं वर्ण भी शरीर का था श्याम।

जब मेरे श्रीगुरुदेव जी की कृपा महाराज पर बरसी तो महाराज जी के शरीर का वर्ण हो गया गौर! श्रीगुरुदेव जी ने अपने शरीर का चोला महाराज जी को पहना दिया। श्रीगुरुदेव मुझे हर माह पत्र देकर कृपा करते रहते थे, तो वह पत्र श्रीतीर्थ महाराज जी के हाथ का लिखा हुआ प्राप्त होता था। मेरे गुरुदेव नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिया करते थे। बहुत सी लिखने की बातें हैं, लेख बढ़ने का डर है।

ठाकुर जी की प्रेरणा से, जो ठाकुर जी लिखवा रहे हैं, लिख रहा हूँ।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि।।

उक्त श्लोक महाराज जी में शत–प्रतिशत दृष्टिगोचर होता है।

मानसिक आन्तरिक शत्रुओं को भगवद्कृपा से विरले ही जीव जीत पाते हैं। क्रोध को जीतना असम्भव है। लेकिन महाराज जी में क्रोध की झलक भी कभी जीवन में नहीं देखी गयी। विपरीतता में भी महाराज में प्रेम ही देखा गया है। छोटे से छोटे को सम्मान देना, बच्चे की तरह पूछना कि, क्या करना चाहिए ? यह हृदय में खलबल मचा देता है। मेरे पर महाराज जी की अपार करुणा व कृपा है। अयोग्य व मूर्ख होते हुए भी मुझसे पूछते हैं, क्या मुझे स्टेज पर भाषण देने को चलना है। मेरा दिल चूर–चूर हो जाता है एवं दिल चाहता है कि, मैं इनके चरणों में लिपट कर रोता रहूँ। महाराज जी में कितनी विशेषता है, मेरा पत्थर दिल भी दण्डवत् करते समय रोये बिना नहीं रहता। महाराज की याद आज भी मेरे दिल को जलाती रहती है। मेरे गुरुदेव के दर्शन महाराज जी में प्रत्यक्ष रूप से होते हैं। मेरे गुरुदेव का तन का चोला महाराज जी पहने हुए हैं।

जब तक मैं जीऊँगा तब तक महाराज की चरणों की याद में रोता ही रहूँगा। अब भविष्य में महाराज जी 'छींड की ढाणी' में नहीं पधारेंगे। मैंने महाराज के चरणों में पड़कर रोते हुए प्रार्थना की थी, कि महाराज जी अब मैं भविष्य में अपना जीवन कैसे बिताऊँगा आपके पदार्पण बिना ?

महाराज जी ने मुझे बच्चे की तरह पुचकारकर कहा था कि, मैं अवश्य आऊँगा, तुम चिन्ता क्यों करते हो! मैंने रोकर प्रार्थना की, कि आपने संसार को प्रेमभक्ति उपहार में दान की। मुझे रोता ही रख दिया। भजन बनता नहीं है। महाराज जी ने करुणा में भरकर सिर पर हाथ रखा और कहा– भजन तुम्हारा हो रहा है और होगा। प्रेम से हरिनाम करते रहो। महाराज जी की कृपा से ही गाड़ी चल रही है, मैं तो विषय कूप में पड़ा–पड़ा महाराज जी की चरण–रज चाहता रहता हूँ।

महाराज जी तो करुणामय अवतार हैं, मैं ही कुपात्र हूँ, जो करुणा लेने में भी असमर्थ हूँ।

बस, मुझे तो एक ही सहारा मिल गया है, महाराज जी की याद में रोना। रोना ही मेरे जीवन का साथी है। रोने में ही महाराज जी के दर्शन सुलभ हैं।

कलियुग पावनावतारी भगवान् श्रीगौरसुन्दर जी के अत्यन्त प्रियतम स्वरूप, श्रीमद् भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी को मैं नमस्कार करता हूँ। आप मायावाद रूपी असत् शास्त्रों का भक्ति के विशुद्ध सिद्धान्तों द्वारा खण्डन करने वाले हैं। आप हमेशा ही अपने गुरुजी से सुनी दिव्य वाणी का ही अनुकीर्तन करते रहते हैं। पश्चिमी देशों में अर्थात् विदेशों में भी आप भगवद्-भक्ति का उपदेश देते रहते हैं। आपका चेहरा हमेशा प्रसन्नता से खिला रहता है। आप शुद्ध-भक्ति की गंगा को प्रवाहित करने वाले हैं। हे शुद्ध भक्ति के भागीरथ! आप श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी के ही अभिन्न स्वरूप हो। आपको मेरा नमस्कार है। श्रीहरिनाम-संकीर्तन के द्वारा ही अखिल-रसामृतमूर्ति, नन्द-नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जी के नाम, रूप, गुण, लीला व धाम आदि के अमृत रस का महामधुर रसास्वादन करने एवं करवाने वाले, भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के मूर्त स्वरूप व उनकी दिव्य-ज्ञान-परम्परा में स्वयं आचरण करके शिक्षा देने वाले, हे आचार्य आपको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् श्री गौरहरि के मधुर रसमय नाम का निरन्तर प्रचार करने से जिनका कोमल हृदय उस दिव्य नाम-रस से भरा हुआ है, जो हर समय भगवान् के भक्तों की सेवा करने की ही आकांक्षा करते रहते हैं तथा अपने गुरु-भाइयों से जिनको बहुत प्यार है, जो अपने प्रत्येक गुरु-भाई के प्रति सद्भाव रखते हैं ऐसे श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज रूपी महापुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 5/08/2006
एकादशी

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का बारम्बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा चर्तुमास निर्विघ्न सम्पूर्ण होने की असंख्य बार प्रार्थना।

ठाकुर श्रीविग्रह के दर्शन से भगवद्–चरण प्राप्ति

ठाकुर जी के दर्शन दो प्रकार से हुआ करते हैं।

ठाकुर झाँकी–

जो भक्त की चर्म आँखों से (जड़ दर्शन) हुआ करते हैं। पुजारी जी जैसा ठाकुर को वस्त्र अलंकार परिधान आदि से तथा फूल पत्रादि से सजाकर भक्तों को झाँकी कराते हैं। भक्त केवलमात्र ऊपर से ठाकुर झाँकी करता है। अर्थात् थोड़ी देर तक झाँक कर मन्दिर से बाहर आ जाता है। बाहर आने के बाद उसको श्रीविग्रह की याद भी नहीं रहती। जब कोई पूछता है कि– ठाकुर जी कैसी पोशाक पहने हुए थे ? तो उत्तर मिलता है, 'यह तो मैंने देखा नहीं!' यह है ऊपरी दर्शन, इससे सुकृति तो होती है, परन्तु ठाकुर से लगाव नहीं रहता।

ठाकुर दर्शन–

यह होता है, मन की आँखों से। भक्त एकाग्रता से चरण से लेकर मस्तक तक ठाकुर जी का दर्शन करता है। वह ऐसा चिन्तन करता है कि, 'ठाकुर जी मेरी ओर प्रेम दृष्टि से निहार रहे हैं। कुछ मुख पर मुस्कुराहट भी महसूस कर रहे हैं, कुछ मूक होकर मेरे से

कुछ कहना चाह रहे हैं।' भक्त अपने मन के भावों को ठाकुर जी को मूकता से बता रहा है कि– कब तक मुझे अपने चरणों से दूर रखोगे। क्या मैं आपका नहीं हूँ? आप तो करुणा की मूर्ति हैं। क्या करुणा मुझ पर नहीं होगी? इतना कहकर भक्त अन्दर ही अन्दर रोता है। जब रोता है, तब आकाशवाणी (हृदयाकाश में) होती है, 'क्यों चिन्ता करता है? मैं तो तेरे पास में ही हूँ!' इसी प्रकार कई तरह के हृदय स्पर्शी उद्गार भक्त भगवान् के सामने प्रकट करता रहता है। कभी–कभी इतनी प्रगाढ़ता आ जाती है कि, किसी की भी शर्म न कर जोर से चिल्ला उठता है, तो उसकी पोल खुल जाती है। वह भक्त श्रेणी में आ जाता है। इससे कोई नुकसान नहीं है। क्योंकि उसका मन ठाकुर जी के पास में रहता है। अतः अहंकार का शिकार नहीं होता। इससे दूसरे भक्तों को भी लाभ हो जाता है। वह पछताने लगते हैं, कि 'इतना समय भक्ति करते हो गया, एक आँसू भी ठाकुर हेतु न आया।' मन्दिर के बाहर आने पर भक्त का मन ठाकुर जी में खिंचा चला जाता है। कभी पुलक, कभी अश्रु, कभी सुस्त हो जाता है।

ठाकुर जी पत्थर की मूर्ति नहीं हैं, साक्षात् आपको दर्शन देने के लिए विराजमान हैं। ठाकुर जी कह रहे हैं, 'क्यों भटक रहा है? मेरे दर्शन कर, मेरी गोद में आ जा। नहीं आएगा तो बहुत योनियों में भटकता फिरेगा, जहाँ दुःख ही दुःख है। जब से बिछुड़ा है। दुःख सागर में क्यों गोते खा रहा है?'

ठाकुर जी के दर्शन करने पर यदि अश्रुपात नहीं हुआ, तो समझो भक्त को दर्शन नहीं हुआ, केवल झाँकी हुई है। **कितनी शर्म की बात है। सारी उम्र चली गयी, अब भी ठाकुर के दर्शन से वंचित ही रहे।**

ठाकुर के असली दर्शन से सभी विपदाएँ सहज में ही चली जाती हैं। भक्त को ठाकुर जी का ध्यान भी रखना चाहिए। ठाकुर को भोग कैसा लग रहा है? ठाकुर जी को गर्मी तो नहीं लग रही है? सर्दी में ठाकुर जी ठिठुर तो नहीं रहे हैं? ठाकुर जी को अच्छी

नींद आती है कि नहीं ? पुजारी की परीक्षा छिप-छिप कर करते रहना चाहिए। ठाकुर जी को सोने के लिए अच्छे गद्दे, रजाई साफ-सुथरे हैं कि नहीं ? ऐसा करने से ठाकुर जी भक्त के अधीन हो जाते हैं। स्वप्न में ठाकुर जी भक्त को अपना कष्ट कहते रहते हैं। मुझे सर्दी लग रही है। गर्मी लग रही है, प्रातः भूख लग जाती है। बिस्तर गरम न होने से नींद नहीं आती, आदि-आदि भक्त की अधीनता स्वीकार करते रहते हैं।

जहाँ ठाकुर विराजमान हों वहाँ असुविधा कैसी ? असुविधा हो तो ठाकुर जी को कहना पड़ता है- आपके विराजने पर भी यह असुविधा क्यों होती है ? ठाकुर के सामने जाकर बोलो, ठाकुर जी शीघ्र सुनते हैं। हृदय से कहने पर ठाकुर को टालना बेकाबू हो जाता है। ठाकुर तो हर समय, हर जगह विराजमान रहते हैं। फिर असुविधा क्यों ? केवल हृदय की पुकार की कमी के कारण ही।

मेरे गुरुवर्ग में कितने उदाहरण हैं। जहाँ ठाकुर जी भक्त से निहोरा करते हैं, 'मुझे भूख लगी है, मुझे गर्मी लग रही है, चन्दन लेप करो। मुझे बुखार हो रहा है, खिचड़ी बना दो।'

ठाकुर जी भक्तों से ही लीला करते रहते हैं। संसार में भक्तों से ही उनका मन लगता है। भक्त न हों तो ठाकुर जी भी दुःख सागर में डूब जाते हैं।

ठाकुर जी की क्षण-क्षण में याद आती रहे। कभी नाम जप करें, कभी शास्त्र अवलोकन करें। कभी एकान्त में बैठकर गुन-गुनायें। कभी चिन्तन में ठाकुर को पास में न पाकर रोयें। कभी ठाकुर जी को याद करें तो खिल-खिला कर हँसने लग जायें। यही है ठाकुर की क्षण-क्षण याद-स्मरण।

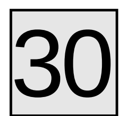
ऐसी अवस्था होने पर संसार याद आता ही नहीं। ठाकुर से लगाव ही उसका संसार हो जाता है।

स्वप्न में ठाकुर जी भक्त को कुछ कहते रहते हैं। भक्त को कष्ट या संकट आता है, तो यह ठाकुर जी की लीला मात्र होती है।

जो भी लिखा गया है इसका मूल है, हरिनाम को कान से सुनते रहें। कान से ठाकुर जी हृदय में जाकर भाँति-भाँति की लीला करते रहते हैं। कान से न सुनने पर ठाकुर जी हृदय में न विराजकर बाहर भ्रमण करते रहते हैं। जहाँ मन हरिनाम को ले जाता है, हरिनाम वहाँ का मंगल करता रहता है। स्वयं का मंगल तो नाम सुनने से ही होगा। सुनकर ही कोई नीचे गिरा है, सुनकर ही कोई ऊँचा चढ़कर गोलोक धाम पहुँच पाया है। अतः श्रवण का महत्व अकथनीय है।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि-15 वाँ परिच्छेद से उद्धृत)

हरिनाम का जप करने से अपने-आप ही बड़ी आसानी से भक्ति के अन्य अंगों का पालन हो जाता है। नाम और नामी (भगवान्) एक तत्त्व हैं, ऐसा विश्वास करके दस नामापराधों को त्यागकर जो साधक एकान्त में बैठकर भजन करता है, उस पर हरिनाम प्रभु दया-परवश होकर अपने श्यामसुन्दर रूप में उसके हृदय में प्रकाशित हो जाते हैं। जब साधना में नाम और रूप एक ही हैं ऐसा अनुभव हो जाता है, तब नाम लेने से ही हर समय भगवान् का रूप भी चित्त में आ जाता है। इसी प्रकार रूप के साथ-साथ क्रमशः गुण, लीला और धाम की भी स्फूर्ति भक्त के चित्त में होने लगती है।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 9/08/2006

परमाराध्यतम प्रातःस्मरणीय श्रद्धेय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग बारम्बार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की असंख्यबार प्रार्थना!

हरिनाम में दिलचस्पी

आपके संग में मैं चण्डीगढ़ नहीं जा सका इसके लिए क्षमा प्रार्थना है। क्योंकि इसके कुछ कारण थे। पहला तो, मैं मेरे संग पहनने के लिए तथा काम में लेने के लिये कुछ भी सामग्री नहीं लाया था। दूसरा, जन्माष्टमी **छींड** में मनानी थी। तीसरा, धर्मपत्नी भक्त होने के नाते उसकी अनुमति लेना जरूरी रहता है, वरना अपराध होता है। रात में हरिनाम जप करते हुए सात्विक भाव इसको भी प्रभावित करते रहते हैं। मेरे अभाव में भजन स्तर गिरने का डर रहता है। चुम्बक लोहे को आकर्षित करता ही है। जैसे कोई हँस रहा हो तो सामने वाले को भी हँसी आ ही जाती है और भी कई कारण हैं, जो लेख बढ़ने से लिख नहीं सकता।

जन्माष्टमी के बाद यदि ठाकुर और आपकी कृपा हुई तो अवश्य आ जाऊँगा।

रात में हरिनाम करते हुए, ठाकुर की आकाशवाणी हृदय में हुई– श्रीगुरु महाराज अब अधिक दिन नहीं रहेंगे। अपने भजन का स्तर बढ़ाना चाहिए। Revolution होने से आप पर भी गहरा बुरा प्रभाव पड़ सकता है। भजन ही साथ देगा।

जाको राखे साइयाँ। मार सके ना कोय।।

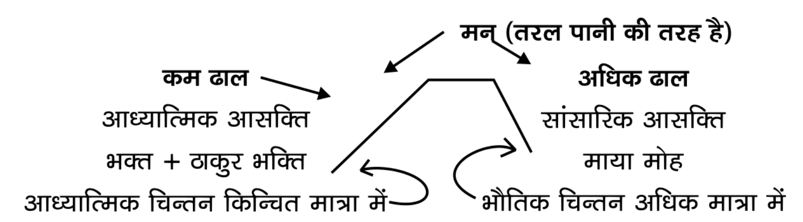
भूतकाल में भक्तों पर हुए अत्याचार भी ठाकुर जी की लीला मात्र है। उनका बिगाड़ स्वप्न में भी नहीं होता।

भगवद् प्रेम (ठाकुर) प्राप्ति का दार्शनिक सरलतम साधन मार्ग है– अपनत्व + अवलम्बन + शरणागति।

उक्त भाव जागृत होने से ठाकुर हृदय में प्रकट होंगे ही। जिस प्रकार स्तन पीता शिशु अपनी माँ में यही भाव रखता है, तो माँ बेबस होकर शिशु का लालन पालन रक्षादि करती ही है। आत्मा परमात्मा का शिशु ही तो है।

कहते हैं, मन वश में नहीं है। पत्र लिखते हुए तथा जिस काम में दिलचस्पी होती है, वहाँ मन कैसे रुक जाता है।

इसका एक ही अर्थ है कि हरिनाम में दिलचस्पी नहीं है। इसका महत्व समझ में नहीं आया। मन पानी की तरह है। उदाहरण स्वरूप–



यदि ऊपर वाले तीनों भाव मन में प्रकट हों, तो मन स्वतः ही ठाकुर की तरफ बहेगा। क्योंकि हृदयरूपी जमीन का ढाल अधिक रहेगा तो संसारी आसक्ति का ढाल कम हो जायेगा। जल ऊपर से ही बहता है, जहाँ अधिक ढालू जमीन होती है।

अब प्रश्न उठता है, कि उक्त तीन भाव कैसे प्रकट हों? यह न सत्संग से होगा, न शास्त्र पढ़ने से होगा, न अपनी शक्ति से होगा। यह होगा केवल मात्र हरिनाम को कान से सुनेंगे तब। कान से हरिनाम बीज हृदयरूपी जमीन पर गिरेगा तो विरहरूपी जल से सिंचित होकर अंकुरित हो जायेगा। फिर बड़ा होकर अपने स्वरूप में आ जायेगा। अर्थात् कृष्ण प्रकट हो जायेंगे। आकर्षण होने से विरहाग्नि अधिक प्रज्वलित होगी तो तीनों भाव स्वतः ही आ जायेंगे।

अपनत्व + अवलम्बन + शरणागति प्रकट होने से संसार हमेशा के लिए छूट जायेगा। भगवद् चरण प्राप्त हो जायेंगे। यह सब अपनी शक्ति से नहीं होगा। यह शक्ति गुरुवर्ग के चिन्तन के द्वारा प्रार्थना करने से प्राप्त होगी। इसमें नारद जी, शिव जी, सनकादिक, नव योगेन्द्र, माधवेन्द्रपुरी आदि हैं। यह भी हरिनाम की कृपा से ही होगा। हरिनाम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सुलभ हो जाते हैं। हरिनाम को कान से सुनना ही उक्त विधान की शुरुआत है। कान से न सुनने से केवल सुकृति होगी। भाव प्रकट नहीं होंगे।

एक साधारण सी बात है। कान से सुन-सुनकर संसार में फँसावट हुई है। ऐसे ही सत्संग सुनने से भगवान् में फँसावट होगी। यह तो अकाट्य दार्शनिक सिद्धान्त ही है। हरिनाम को कान से सुनना, यही वास्तविक सच्चा संग तथा सत्संग है।

3 लाख जप अपनी शक्ति से नहीं हो सकता। इसके पीछे गुरुवर्ग, भक्त कृपा तथा ठाकुर कृपा उत्साहित करती रहती है। यदि ऐसा नहीं होगा तो अहंकार का शिकार होकर जप छूट जायेगा। विरह प्रकट नहीं होगा। जब तक विरह नहीं होगा, तो समझिए कान में नाम गया ही नहीं। नाम बाहर ही उड़ता रहा। हृदय में नाम तब ही अंकुरित होगा जब कान द्वारा प्रविष्ट होगा।

सुमिरन का अर्थ है- मन + कान का संयोग। दो का संयोग तीसरी वस्तु प्रकट करता है। यह दार्शनिक सिद्धान्त है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

हरिनाम जप करने के लिए सभी सन्त प्रवचन में कहते रहते हैं, परन्तु जो कि असली बीज केवल हरिनाम ही है, इसे किस प्रकार जपना चाहिए, यह कोई सन्त नहीं बताता।

लेकिन शिव जी उमा को हरिनाम की महिमा बताते रहते हैं।

1. **जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।**
2. **पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।**
3. **जाको नाम जप एकही बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।**
4. **जीह नाम जप जागहि जोगी। विरत विरंच प्रपंच वियोगी।।**

शास्त्रों में अनेक उदाहरण हैं, परन्तु अभागा मानव आँख बन्द कर चलता रहता है। एवं सारी जिन्दगी मार्ग भटककर निकाल देता है। कितनी नुकसान की बात है। यदि अब भी चेत हो जाये तो सब कुछ प्राप्त कर सकता है। क्योंकि मौत को बहुत दूर की समझ रहा है। एक क्षण में मौत आ सकती है, यदि ऐसा समझलें तो स्वतः ही मन से भजन होने लग जाये, जैसे परीक्षित् महाराज को अनुभव हुआ।

भजन के बिना वैराग्य नहीं होता, यह प्रकट तब होगा, जब हरिनाम को कान से सुना जायेगा। विरहाग्नि संसारी आसक्ति को जलाकर भस्म कर देती है। वैराग्य स्वतः ही प्रकट हो जाता है।

यश चाहने पर सब मलियामेट हो जाता है। ठाकुर दूर भाग जाते हैं, ठाकुर जी से नजदीक कोई नहीं एवं ठाकुर जी से दूर भी कोई नहीं। आस्तिक के नजदीक है तथा नास्तिक से बहुत दूर है।

जब मौत आयेगी तब कुछ न कुछ रोग लायेगी। फिर भजन दूर भाग जायेगा। जब तक शरीर निरोगी है, भजन स्तर बढ़ाते रहना चाहिए। वरना बाद में पछताना ही पड़ेगा। संसार आसक्ति साथ ले जायेगा। चौरासी लाख योनियों में घूमता रहेगा, जैसे राजा भरत हिरन बन गये!

भक्ति हृदय में विराजमान होगी तो भविष्य में भी मंगल करेगी।

प्रजा हेतु वात्सल्य

जब राम वनवास से अयोध्या पधारे तो प्रजागण से उन्होंने कहा कि आप मुझे राजा बनाएँगे, अतः शाम को सभा में आ जाना। ऐसा ढिंढोरा अयोध्या में पिटवा दिया।

सभी प्रजा दरबार में इकट्ठी हुई। वहाँ राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न व सभी सपरिवार मंच पर बैठे।

तब हाथ जोड़कर श्रीराम ने प्रजा से कहा कि आप मुझे राज पदवी दे रहे हैं, मैं आपका नौकर बनकर लालन-पालन तथा रक्षा करूँगा।

लेकिन मेरे से भी कोई गलती हो जाये तो मुझे निःसंकोच कह देना, डरना नहीं।

इससे प्रजा में हाहाकार मच गया कि श्रीराम कैसी छोटी बात कर रहे हैं। इसमें ऐश्वर्यभाव की झलक भी नहीं थी।

जब प्रजा उठकर जाने लगी, तो फिर राम ऐश्वर्यभाव में बोलने लगे कि, देखो! सुनो! मैं एक सार बात बोल रहा हूँ। आप ध्यान देकर सुनना। प्रजा हाथ जोड़े खड़ी रही। राम ने कहा-

मार्मिक बात-

मम गुण गावत पुलक सरीरा। गद्‌गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
ताकी करुं सदा रखवारी। जिमि बालक राखहिं महतारी।।

प्रजा ने यह सुनकर फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया। राम ने कहा- सभी अपने-अपने घर जाओ, कोई दुःख हो तो मुझे आकर सुना देना। यह है प्रभु की कृपा!

31

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 19/12/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमल में अधमाधम दासानु-दास अनिरुद्ध दास का अनन्त बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्वलित होने की चरण स्पर्श सहित प्रार्थना!

अति सर्वोत्तम सार चर्चा

परमात्मा ने ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यंत सभी जीवात्मा अपने से प्रकट किए, अतः वह सभी जीवों के माँ बाप बने। सभी चर-अचर जीव रिश्ते से उनके पुत्र हुए। जिनमें मनुष्य को स्वयं के जैसे प्रकट किया तथा वह बुद्धिशील बने। उन्होंने सभी जीवों के लिए अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि की रचना की ताकि ये जीव अपने कर्मानुसार भ्रमण करते हुए इनमें वास करते रहें।

परमात्मा के केवल मात्र दो प्रकार के ही पुत्र हैं-

1. आस्तिक, 2. नास्तिक।

आस्तिक अपने पिता परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है। दूसरा, नास्तिक अपने पिता परमात्मा की आज्ञा पालन न करके निरादर करता है। अतः यह कपूत बेटा है। इसे परमात्मा तरह-तरह के दुःख सागरों में डालकर मायारूपी त्रिगुणों से तपाता रहता है। सपूत पुत्र (भक्त) को परमात्मा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों का सुख दान करता रहता है। इन पुत्रों को कपूत पुत्र दुःख देते हैं, तो परमात्मा को सहन नहीं होता। परमात्मा उन्हें दुःखालय रूपी अग्नि में जलाता रहता है।

शिव वचन-

इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला। कालदण्ड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहीं। भक्त द्रोह पावक सो जरहीं।।

पावक वह प्रचण्ड अग्नि है जो पत्थर और लोहे को पानी बनाकर पिघला देती है। सारी जिन्दगी वह दुःख से पीड़ित रहता है।

अब यदि यह कपूत पुत्र किसी सपूत पुत्र (भक्त) से किसी प्रकार संयोग से सम्बन्ध बनालें तो यह कपूत पुत्र भी परमात्मा का आज्ञाकारी होकर सुख सागर में गोता लगा कर सदा के लिए अपने पिता परमात्मा की गोद में खेलने को चला जाय, पीने को अमृत सागर को प्राप्त करले।

सपूत पुत्रों (भक्तों) में भी कई श्रेणियाँ हैं–

1. **योगी तपस्वी–** जो ज्योति का ध्यान कर दुःखों से छूटना चाहता है तथा अपने पिता परमात्मा से मिलना चाहता है।

2. **कर्मी भक्त–** जो अपने सारे कर्म अपने पिता भगवान् को समर्पण कर देता है। सभी कर्म भगवान् के लिए करता है।

3. **ज्ञानी–** जो अहम् ब्रह्मास्मि, मतलब मैं भी ब्रह्म ही हूँ, ब्रह्म में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार से निर्गुण अवस्था प्राप्त करना चाहता है।

4. **साधु–** जो अपनी साधना में लगा रहता है कि, मैं इस साधन से परमात्मा को प्राप्त कर लूँगा। आवागमन से (जन्म–मृत्यु के चक्र से) छूट जाऊँगा।

5. **सन्त–** जो अपनी दसों इन्द्रियों को वश में कर अपनी साधना में लगा रहकर भगवान् को प्राप्त करना चाहता है।

6. **भक्त–** जो भगवान् के चरणों में आसक्त रहता है। शरणापन्न होकर अपना जीवन यापन करता है। जैसे पाण्डव आदि।

7. **रसिक भक्त–** जो अपनी रसना से भगवद्गुण गा–गाकर भगवान् को रिझाता रहता है। जैसे वृन्दावन में स्थित श्रीबाँकेबिहारी के प्राकट्यकर्ता स्वामी हरिदास जी।

8. **विरही भक्त–** जो रोने में ही मस्त रहता है, रो–रोकर भगवान् को अपने हृदय कमल पर विराजमान रखता है। जैसे भीलनी (शबरी), गोपी।

9. पागल भक्त– यह परमहंस तथा तुरीय अवस्था को प्राप्त है। इसका संसार से कोई लेना देना नहीं रहता। जैसे जड़भरत तथा जगन्नाथदास बाबा जी महाराज।

वैसे बहुत तरह के भक्त हैं जो भगवान् को बहुत तरह से रिझाते रहते हैं। लेकिन उक्त नौ श्रेणी के भक्त प्रत्यक्ष में नजर आते रहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी चार प्रकार के भक्त बताये हैं– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी।

परमात्मा को प्राप्त करने हेतु दो बड़ी रुकावटें हैं–

1. दस नामापराध

2. मान प्रतिष्ठा की चाह –

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद ने प्रतिष्ठा को शूकर विष्ठा (सूअर का विष्ठा) बोला है।

जब ये दोनों हृदय में होंगी तो हृदय को दूषित बनाती रहेंगी। यदि इनसे बचाव होता रहा, तो हरिनाम को कान से सुनकर एक दिन विरहाग्नि प्रज्वलित हो पड़ेगी, जिनसे अन्य जो दुर्गुणों की रुकावटें हैं वह जलकर भस्म हो जायेंगी। बस, उक्त दो कारणों को हृदय में स्थान न देवें।

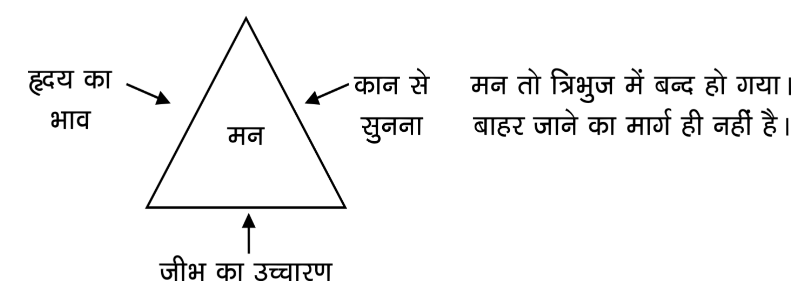
ये दो रुकावटें होने पर हाथ में माला लेना ही असम्भव हो जायेगा। भक्ति का बढ़ना रुक जायेगा। अतः मन को टटोलना चाहिए। यदि ऐसा हो तो पश्चाताप की अग्नि में जलना चाहिए। क्योंकि मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा।

संसार सम्बन्धी तथा भगवद् सेवा सम्बन्धी चिन्ता हरिनाम के सुनने में प्रमुख बाधा है।

इस चिन्ता को हटाने हेतु एक ही उपाय है। अपना सारा भार भगवान् पर छोड़ दें, जैसे द्रोपदी ने अपना तन, मन का बल गोविन्द पर छोड़ दिया था तो द्रोपदी की लाज बच गई। अपनी चिन्ता तब तक रहेगी, जब तक अपने ऊपर भार रहेगा। तब तक भगवान् भी नहीं सुनेगा। भगवान् पर भार छोड़कर तो देखें, क्या

गुल खिलते हैं! जब भी जैसी भी चिन्ता हो भगवान् को सौंपने से काम सुगमता से स्वतः ही हो जाता है।

उक्त साधन करने से, नाम को कान सुनेगा। जब कान से सुना जायेगा तब ही प्रेमांकुर हृदय में अंकुरित होगा। जब प्रेम अंकुरित होगा तब ही भगवान् के लिए रोना प्रकट होगा। रोए बिना भगवान् कृपा नहीं करेंगे। रोना नहीं आता तो समझना होगा, मन संसार में फँसा पड़ा है। मन में एक ही वस्तु रह सकती है, चाहे संसार–चाहे भगवान्! एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकतीं।



जीभ + कान + भाव– तीनों ही मन के आश्रित हैं। बिना मन तीनों का संचालन हो ही नहीं सकता, अतः मन △ त्रिभुज में ही रहेगा।

जीभ का उच्चारण– जब मन बोलेगा कि, हरिनाम उच्चारण करो, तब जीभ हरकत में आयेगी।

कान का श्रवण– मन जब कान को इशारा करेगा तब कान सुनने की हरकत करेगा।

हृदय का भाव– जब मन हृदय के भाव को जागृत करेगा तब ही हृदय में छटपट होगी।

अतः मन के द्वारा ही तीनों का संचालन हो सकेगा वरना तीनों ही सुप्तावस्था में रहेंगे। कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। जैसे बच्चा माँ–माँ पुकारकर माँ को खींचकर ले आता है। इसी प्रकार ''**हरे कृष्ण हरे राम**'' भी माँ–माँ कहना ही है। यह भी भगवान् को माँ–माँ कहकर बुलाना ही है।

बुलाने वाले के कान में भी शब्द है। सुनने वाले के कान में भी शब्द है और हृदय के भाव में भी शब्द ही है। तीनों जगह शब्द की आवाज है, तब ही शब्द से कुछ सार निकलेगा।

अगर उक्त प्रकार की अवस्था नहीं आयेगी तो अन्तिम पुरुषार्थ प्रेम (विरह) प्रकट नहीं होगा। गहराई से समझना होगा। तीन बार पढ़कर समझना पड़ेगा।

हरिनाम को कान से सुने बिना किसी जन्म-जन्मान्तर में भी भगवद् कृपा नहीं मिल सकेगी। चाहे कितना भी सत्संग करो, चाहे कितना भी शास्त्र अध्ययन करो आदि-आदि, सब रफू चक्कर हो जायेगा। अब तक इतना सब कुछ किया, क्या मिला? कुछ नहीं।

यदि पूर्ण शरणागति प्राप्त करनी हो तो हरिनाम को कान से सुनकर विरहाग्नि प्रकट करो। स्वतः ही शरणागति प्रकट हो जायेगी। यह ध्रुव सत्य और अकाट्य सिद्धान्त है।

यदि उक्त स्थिति नहीं है, तो कपट भक्ति ही समझना होगा।

मेरे श्री गुरुदेव ने जो शिष्यों के नाम दिए हैं, उनके स्वभावानुसार ही दिए हैं। आपका नाम निष्किंचन कितना सार्थक है। वास्तव में आप निष्किंचन ही हैं। मेरा नाम श्रीकृष्ण के पोते पर अनिरुद्ध दिया है। यह कृष्ण का शिशु ही है, अतः मेरा भाव भी शिशु का है। वैसे भी देखा जाय तो सभी प्राणी भगवान् के बच्चे ही तो हैं। अबकी बार आपकी कृपा असीम हो रही है। जन्म-जन्म का ऋणी रहूँगा।

नोट : यह लेख आपके लिए नहीं है, अन्यों के लिए लिखा गया है। सूर्य को क्या दीपक दिखाना। मेरा अपराध क्षमा करें।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हि रक्षति डुकृञ्करणे।।

(आद्य शंकराचार्य)

अरे मूर्खो (मूढमति), केवल श्रीगोविन्द का भजन करो, केवल श्रीगोविन्द का भजन करो, केवल श्रीगोविन्द का भजन करो। तुम्हारा व्याकरण का ज्ञान एवं शब्दचातुरी मृत्यु के समय तुम्हारी रक्षा नहीं कर पाएगी।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 24/12/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवद् प्रेम बढ़ने की उत्तरोत्तर प्रार्थना!

कान कहीं – मन कहीं

भगवान् ने जीवात्माओं के कर्मानुसार रहने हेतु अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की रचना की।

जगत् में नाम से ही सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। नाम बिना किसी वस्तु को पहचाना नहीं जा सकता। अतः निष्कर्ष यह निकला कि जगत् में नाम का ही प्रभाव है।

भगवान् नाम के बल पर ही आकृष्ट होते हैं। अन्य साधन तो केवल गौण रूप से हैं। अन्य साधनों का केवल यही आशय है कि, जीवात्मा का इन साधनों से भगवान् के नाम में मन लग जाये। जब नामनिष्ठ हो जाये तो अन्य साधनों की आवश्यकता ही नहीं है।

राम न सकहि नाम गुण गाई।

चारों युगों में हरिनाम का ही प्रभाव है, कलियुग में विशेषकर है। सभी शास्त्र भी नाम का ही गुण वर्णन कर रहे हैं। लेकिन नाम को कैसे जपना चाहिए यह एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं।

राम ने मोहन को बोला– 'मोहन! बाजार से एक साबुन लेते आना।'

अब मोहन ने उसे सुना नहीं क्योंकि उसका मन किसी उधेड़बुन में था। वह डर गया और बाजार से साबुन की जगह नील ले आया। क्या नील से काम चल जायेगा, अर्थात् कर्म गलत बन गया।

इसी प्रकार हरिनाम तो ले रहे हैं, जिससे भगवान् को बुला रहे हैं। लेकिन मन चला गया दुकान में, तो क्या दुकान को बुला रहे हो। फिर भगवान् क्यों आने लगे! गलत सोच रहे हो अतः इच्छित कर्मफल नहीं मिलेगा। इसप्रकार से हरिनाम करने से लाभ नहीं होगा। हरिनाम से लाभ तब ही होगा जब कान से सुन सकेंगे। यदि कान तक आवाज नहीं गई, तो समझना होगा कि, मन कहीं और था तब हरिनाम से केवल सुकृति (भाग्य) इकट्ठी होगी। भगवद्प्रेम प्रकट नहीं होगा।

सुनने में तीन इन्द्रियाँ सचेत होती हैं। प्रथम तो आदेश देने वाले की इन्द्रिय–**जीभ**। दूसरी, सुनने वाली की इन्द्रिय– **कान** तथा आदेश पालन करने वाले का **मन (हृदय) तथा बुद्धि**। जीभ + कान + हृदय का कान– तब कहीं सुचारु रूप से कर्म बन सकेगा। वरना कर्म गलत बन जायेगा। जब संसारी कर्म ही गलत बन जाता है, तो पारमार्थिक कर्म कैसे सही बन सकेगा ?

अतः जब तक हरिनाम को स्मरण सहित अर्थात् मन + कान साथ रखकर नहीं जपा जायेगा तब तक भगवद् कृपा स्वप्न में भी नहीं होगी।

अब तक जिन जापकों को 30–40 साल हरिनाम जपते हो गए, उनसे सुना है कि, हमारा तो वैसा का वैसा ही स्वभाव बना हुआ है। न कभी भगवान् के लिए अश्रुपात होता है न कभी नाम में रुचि होती है, इसका क्या कारण है ? मैं कहता हूँ, एक ही कारण है। नाम को कान से नहीं सुना। अब सुनकर तो देखो, क्या गुल खिलते हैं! क्या एक Engineer बिना Lecture सुने ही पास होकर Engineer बन गया ? विचार करो जब संसार का काम ही सफल नहीं होता है, तब परलोक का काम कैसे सफल हो सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि, हरिनाम का महत्व ही समझ में नहीं आया।

33

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 5/01/2007

परमादरणीय भजनशील प्रेमास्पद, श्रीहितैष मलिक के चरणों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना!

विरह की बीमारी

आप मेरे पूजनीय भक्तप्रवर हो। पूजनीय वही होता है, जो भगवान् को चाहता हो, तथा उसे भक्ति की भूख हो। छोटी उमर होते हुए भी आपमें भक्ति की तृष्णा जागृत होती रहती है। अतः आदर सूचक शब्द आपको लिखना मेरे लिए स्नेह व प्रेम सूचक है।

वैसे आप मेरे लिए Super natural son हो। क्योंकि मैं आपके पिता बराबर हूँ। यह भौतिक सम्बन्ध है, परन्तु भक्त के नाते आप मेरे गुरु वर्ग समान हैं। आप में जो पंचम पुरुषार्थ प्रकट हुआ है, यह कोई मामूली प्राप्ति नहीं है। यह तो कई जन्मों के बाद सन्त और भगवद् कृपा से प्राप्त होता है। यदि 10 नामापराध व मान प्रतिष्ठा से बच गए तो यह उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहेगा। इसी जन्म में भगवद् दर्शन हो सकता है। विरहाग्नि ही भगवान् के हृदय को तपाकर खींचकर लाती है, इसके शास्त्रों में अनन्त उदाहरण हैं। मीरा, नरसी मेहता आदि तो अभी हुए हैं। अपने गुरुवर्ग भी तो अभी हुए हैं, जिनसे भगवान् बातें करते थे। भगवान् को भी उनकी फटकार सुननी पड़ती थी। पूरी बातें तो लिखी नहीं जा सकतीं, कागज छोटा पड़ता है।

कहते हैं– भजन को जितना छिपाकर रखा जाय उतना अधिक बढ़ता है। बिल्कुल ठीक है। इसका कारण यह है कि, उसकी पूजा बढ़ जाती है, तो उसको मान हो जाता है, घमण्ड हो जाता है, इसलिए गिर जाता है। जिसका भजन खोल कर बताने का उद्देश्य

दूसरे के भजन वृद्धि हेतु हो तो उसे प्रतिष्ठा से घृणा होती है। उसकी भजन वृद्धि होती जाती है। उसके भजन को देख–सुनकर दूसरों को भी पश्चाताप होता है, कि इतने साल से भगवद्प्रेम नहीं हुआ, तो वह अधिक भजन करने लगते हैं। अपना भजन दूसरों को दिखाने से उसके भजन में गिरावट नहीं आती, उल्टा भजन अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि उसका ध्येय दूसरों का भजन बढ़ाने का होता है।

मुझे मेरे घरवाले छोड़ना नहीं चाहते क्योंकि इनको मेरे भजन से उत्साह मिलता रहता है। अधिक से अधिक 15–20 दिन के लिए आपके पास भेज सकते हैं।

गुरु, सन्त और ठाकुर कृपा से अब मेरा विरह तीव्र गति में हो गया है। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त का हरिनाम विरह सागर में डुबोए रखता है। फिर भी चैन नहीं लेता। मन तो उत्तरोत्तर भगवान् की तरफ खिंचता रहता है। हो सकता है कि, आपके पास कथा सुनने पर अधिक विरह हो जाये!

एक छूत की बीमारी होती है, जो छू जाने पर लग जाती है। यही विरह की बीमारी मुझे लग गयी। इसको बीमारी कहना तो अनर्थ की बात है लेकिन शब्दों में कहना पड़ रहा है। मेरे पास वाले को भी लग जाती है, यदि उसको अपराध और मान–प्रतिष्ठा का रोग नहीं हो। मेरे साथ में रहने से मेरी धर्मपत्नी को भी यह विरहाग्नि की बीमारी लग गयी है। यह बीमारी तो मुझे 20 साल की उम्र में ही लग चुकी थी जब मैंने 1954 में कृष्ण मंत्र का (गोपाल मंत्र का) पुरश्चरण किया था। अब लगभग 4–5 साल से यह फिर जागृत हो गयी है। अब तो कुछ अधिक ही उग्र रूप धारण कर रही है। आप किसी से मेरी चर्चा न करें यदि लाभ हो तो अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा में उल्लेख करें, लेकिन मेरा नाम गुप्त रखें। गुप्त न रखने पर मेरे पीछे अपात्र भी पड़ सकते हैं, जिससे मेरे भजन में मुझे समय न मिलने पर नुकसान हो सकता है।

आप सबको भजन में अधिक से अधिक लगायें यह कहकर कि हरिनाम को कान से सुना करो। इसी उपाय से विरह जागृत

होता है। दो इन्द्रियों का घर्षण अग्नि प्रकट करता है। यह अभ्यास पर निर्भर है। इसी जन्म में आवागमन छूट जायेगा। चिन्ता न करें। ब्रह्मचर्य संयम रखें ताकि नाम में अधिक देर मन लग सके। गहरा विचार करना होगा। खंडन से भावना का तार छूट जाता है।

मैंने भी इसी रास्ते से अपना जीवन बिताया था। **मेरे जीवन में भगवान् ने असम्भव बातें सम्भव कर दिखाई थी। अब भी हो रही हैं। बताना उचित नहीं है।**

आपका भजन स्तर बढ़ाने के लिए इतना लेख लिखा गया है क्योंकि आप इसके पात्र हो। आप पात्र हो तब ही तो परमहंस निष्किंचन महाराज जी ने गौरहरि आविर्भाव उत्सव पर आपको कथा कहने को प्रेरित किया है, वैसे वहाँ बहुत ब्रह्मचारी और संन्यासी वर्ग मौजूद हैं। यह ठाकुर जी की कृपा समझनी चाहिए।

मैंने भी आपका ही सहारा लिया है। मैं भी अधिक कुछ नहीं जानता हूँ। केवल नाम के बारे में जैसा रास्ता अपनाया है, वैसी सबको प्रेरणा देकर लगाने की कोशिश करता रहता हूँ। इससे ठाकुर जी मुझ पर अधिक कृपालु बन जाते हैं।

मठ में जाने पर मुझे बड़ा समझकर जौहर जी व अन्य महात्मा मुझे आग्रह कर कभी–कभी कह देते हैं, कीर्तन करो। आदि–आदि आदेश दे देते हैं।

मैं उनके आदेश का पालन न करूँ तो अपराध से डर जाता हूँ। अब मुझे विरह होने का डर रहता है, बोलने पर दिल मचल जाता है, तो मेरी पोल सबको मालूम हो जाती है, फिर जो पात्र भी नहीं है वह मेरे पीछे पड़ने लग जाता है, तो भजन में नुकसान हो जाता है। क्योंकि समय देना पड़ता है, उसे तो कुछ फायदा भी नहीं क्योंकि वह विषयों का गुलाम है, भजन चाहता ही नहीं।

अतः फिलहाल मुझे कोई बोलने को न कहे। मैं सुनने को ही वहाँ बैठ सकता हूँ।

जो पात्र होगा ठाकुर उसे मेरे पास भेज देगा। जो अपात्र होगा वह मेरे पास क्यों आने लगा?

मेरा स्वभाव है कि, जो भी मेरे पास आयेगा उसे मना करना मेरा धर्म नहीं है, चाहे मुझे नुकसान ही क्यों न हो। आप मेरा स्वभाव जानते ही हो। आप मेरी रक्षा कर सकते हैं। मेरे अंग रक्षक आप ही हो। मेरा वहाँ आना तब सार्थक होगा, जब आप मेरी रक्षा करो।

संकीर्तन–पिता

महाप्रभु श्री चैतन्य को 'संकीर्तन–पिता' कहा गया।
श्रवण–पिता, परिक्रमा–पिता, कथा–पिता, दर्शन–पिता
नहीं कहा गया।
कारण उन्होंने केवल और केवल नाम का आश्रय लिया।
नाम का प्रचार किया,
नाम संकीर्तन किया, चाहे नदिया की गलियों में
चाहे श्रीवास के आंगन में, उन्होंने कहीं
कथा की हो, प्रवचन किया हो, ऐसा नहीं–
श्रीहरिनाम केवल श्रीहरिनाम।
बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन धाम
और कलियुग में नाम द्वारा ही प्रेम
प्राप्ति सम्भव है। अन्य जितने भी श्रवण,
दर्शन, परिक्रमा, कथा आदि हैं– ये नाम के प्रति अनन्यता
उत्पन्न करने को ही हैं।
नाम में श्रद्धा होने पर ये सब छूटते ही हैं।

34

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 19/01/07

परमाराध्यतम श्रद्धेय, श्रीगुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणों में अधमाधम दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम!

कर्म ही प्रधान है

जीवात्मा जब से भगवान् से बिछुड़ा है, तब से ही अशान्ति में भटक रहा है। इसका मुख्य कारण है, कर्म! कर्म अच्छे और बुरे दो तरह के होते हैं। अच्छे कर्म से शान्ति और बुरे कर्म से अशान्ति होती है। भगवान् ने सभी प्राणियों को पैदा किया है, तो सभी प्राणी भगवान् के पुत्र समान हैं। जब कोई प्राणी किसी प्राणी का अहित करता है, तो भगवान् माया द्वारा उनको सजा दिलाता रहता है। जो प्राणी किसी प्राणी का हित करता है, तो उसे माया से सहायता मिलती है, तथा भगवान् उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देकर उसे सुख प्रदान करते हैं।

जो जीव दूसरे जीवों को भगवान् के घर में पहुँचाने का हित करता है, अर्थात् शास्त्र द्वारा वर्णित बातों को सुनाकर मानव को भगवान् की भक्ति में लगाता है, उस पर भगवान् की अपार कृपा बरसती है।

शिव जी अपनी अर्धांगिनी उमा को बता रहे हैं–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

मानव से कर्म होते ही रहते हैं, बिना कर्म किए जीवन यापन हो ही नहीं सकता। कर्म – मन वचन और तन से होते हैं। तीन प्रकार के कर्म हैं– 1. संचित, 2. प्रारब्ध, 3. क्रियमाण–

मानव के अलावा किसी प्राणी से कर्म नहीं बनते, केवल मात्र मानव ही कर्म से बँधता है। कितनी ही बार वह 84 लाख योनियाँ

भुगत कर आया है। जिसमें कितनी ही बार मानव शरीर मिला है। उसमें उसने तीनों तरह के कर्म किए हैं। वे संचित होकर प्रारब्ध के रूप में भुगतते हुए जीवन यापन करता आया है। जब प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाता है तब मृत्यु होने के बाद स्वभावानुसार जैसी मन की भावना होती है, उसके अनुसार वह दूसरे शरीर में चला जाता है। फिर जब मानव शरीर मिलता है, तो फिर क्रियमाण कर्म करता है। वह संचित कर्म में जुड़ता रहता है। इसी तरह से यह चौरासी लाख योनियों का चक्कर चलता ही रहता है।

जब कभी सुकृति उदय हो जाती है तो मानव को भगवान् की कृपा से साधु संग मिलता है। तब मानव सद्गुरु की शरण ले लेता है। सद्गुरु देव भगवान् के हाथों में उस जीव को सौंप देते हैं। भगवान् के हाथों में जाने से उसके जन्म-जन्म के संचित कर्म जलकर राख हो जाते हैं। भगवान् का वचन है-

सन्मुख होय जीव मोहि जबहि।
कोटि जन्म अघ नासहिं तबहि।।

अब प्रारब्ध कर्म से उसका जीवन चलता रहता है। यदि क्रियमाण कर्म को सम्भाल लिया जाये तो उसका जन्म-मरण का दारुण दुःख सदैव के लिए समाप्त हो जाये। अर्थात् प्रेमाभक्ति हरिनाम के द्वारा अन्तःकरण से शरणापन्न हो जाये तो वह मानव अपने खास घर पर अर्थात् भगवान् की गोद में चला जाये। तो सारा का सारा बखेड़ा ही समाप्त हो जाये।

कहने का आशय यह है कि, अपना स्वभाव सुधारकर भगवान् की गोद में चले जाना ही श्रेयस्कर है, जब तक स्वभाव बिगड़ता रहेगा, तब तक माया द्वारा दण्डित होते रहोगे। कलिकाल में हरिनाम ही एक ऐसी औषधि है जो सारा का सारा रोग मिटा सकती है। हरिनाम स्वयं शब्द ब्रह्म है! हरिनाम जपने वाला भगवान् के चरणों में ही रहता है, अर्थात् सम्मुख रहता ही है। हरिनाम जपने से संचित कर्मों का नाश हो जाता है। भक्ति करने से संचित कर्म ही जब राख हो जायेंगे तो प्रारब्ध कहाँ बचेंगे ? केवल मात्र क्रियमाण

कर्म से ही जीवन चलता रहेगा। क्रियमाण कर्म केवल भक्ति सम्बन्धित रहेंगे तो अन्त समय जब मौत आयेगी और स्वभाव भक्तिमय होगा तो मन (अन्तःकरण) भगवान् में लगने से आवागमन का अन्त हो जायेगा।

परिवार में एक व्यक्ति भगवान् का प्यारा बन गया तो भगवान् उसकी 21 पीढ़ियों को अपने धाम में बुला लेगा। अगर पापी एक नाव में बैठ जाये तो सभी को डुबा देगा और एक भक्त नाव में बैठने से सभी को किनारे लगा देगा।

कितना सुन्दर सरल मौका कलियुग में मानव को मिला है। फिर भी अभागा इस स्वर्ण अवसर को खाने-पीने मैथुनादि में व्यतीत कर देता है। इसकी मूर्खता की भी हद हो गई। उसे मालूम नहीं है कि एक दिन यहाँ से कूच करना ही पड़ेगा, क्यों सो रहा है बेवकूफ!

अपना नुकसान करके भी दूसरों का हित करना चाहिए। क्योंकि सभी भगवान् के पुत्र हैं। अहित करने से भगवान् नाराज ही होंगे।

सबसे बड़ा महान् हित है, किसी को भगवान् की भक्ति में लगा देना। इससे बड़ा हित त्रिलोकी में तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में अन्य कोई नहीं है।

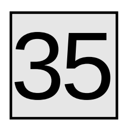
यही सोचकर मैं पत्र पर पत्र देकर भगवान् की कृपा लेता रहता हूँ। मेरी शक्ति से कुछ भी नहीं हो सकता। भगवद् कृपा से ही एक लाख हरिनाम जप ब्रह्म मुहूर्त में विरहसागर में डूबकर होता रहता है। मैं जितना अपना भजन का प्रचार करता रहता हूँ उतना मेरा भगवान् की तरफ आकर्षण बढ़ता है। **मेरी देखा-देखी में अगर एक भी मानव भक्ति में लग गया तो मेरा निश्चित ही बेड़ा पार हो गया।** दिन में विरह बहुत कम होता है। भगवान् और आप भक्तों की कृपा से दिन में भी विरह होने लग जायेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है ? क्या बच्चे का रोना माँ बरदाश्त कर सकती है ? कभी नहीं! भगवान् तो वात्सल्य भाव की असीम मूर्ति है, वह भक्त का रोना कैसे सहन कर सकता है। मैंने अपने जीवन में भगवद् कृपा

का अनुभव न जाने कितनी बार किया है, इसका कोई अन्दाजा नहीं है। संकट आते ही भगवान् को दूर करना पड़ा। भजन बताने से अन्यों को अधिक श्रद्धा बनती है। मुझे कहने में थोड़ा भी नुकसान नहीं दिखाई देता, अतः कह देता हूँ। जो भी लेख लिखा जाता है किसी अदृश्य शक्ति द्वारा ही लिखा जाता है। मैं झूठ कहूँगा तो अपराध का भागी बन जाऊँगा। क्योंकि मैं मेरे अन्तःकरण को जानता हूँ कि कितना गन्दा है। केवल मात्र सन्तों का ही सहारा है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–

तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो, अतएव मैं तुम्हें अपना परम आदेश, जो सर्वाधिक गुह्यज्ञान है, बता रहा हूँ। इसे अपने हित के लिए सुनो। सदैव मेरा चिन्तन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो। इसप्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें वचन देता हूँ क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय मित्र हो। समस्त प्रकार के धर्मों का परित्याग करो और मेरी शरण में आओ। मैं समस्त पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत। यह गुह्यज्ञान उनको कभी भी बताया न जाये, जो न तो संयमी हैं, न एकनिष्ठ, न भक्ति में रत हैं, न ही उसे, जो मुझसे द्वेष करता हो। जो व्यक्ति भक्तों को यह परम रहस्य बताता है, वह शुद्धभक्ति को प्राप्त करेगा और अन्त में वह मेरे पास वापस आएगा। इस संसार में उसकी अपेक्षा कोई अन्य सेवक न तो मुझे अधिक प्रिय है और न कभी होगा।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18.64–70)



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 26/01/07

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

विष और अमृत

हरिनाम जप का हृदय से शरीर पर कैसे प्रभाव पड़ता है, वह नीचे Practical रूप में लिखा जा रहा है।

प्रत्येक शब्द में अमृत (सुख) और विष (दुःख) पूर्ण रूप से निहित रहता है। उच्चारण करने में तथा चिंतन करने में शब्द में अपार शक्ति है। चिन्तन होता है चित्त से और उच्चारण होता है जीभ से, चित्त से स्फुरणा होकर मन पर प्रभाव करता है। मन से बुद्धि पर आक्रमण करता है। इसके बाद अहंकार में परिणत हो जाता है। अर्थात् 'मैं ऐसा करूँगा' ऐसा भाव मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से हृदय कोष्ट निर्मित है। उदाहरणार्थ-

काम, क्रोध, लोभ, मोह सम्बन्धित जो भी चर्चा या चिन्तन होगा वह प्रथम चित्त में स्फुरणा करेगा। चित्त से मन पर, मन से बुद्धि पर, बुद्धि से शरीर पर हावी होगा। शरीर उसे कार्य रूप में परिणत करना चाहेगा।

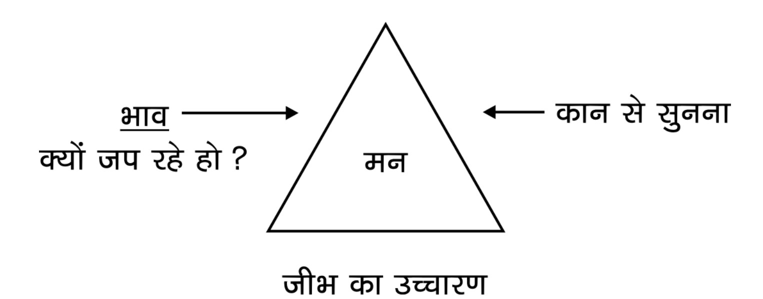
किसी ने किसी को गाली दी तो वह चित्त में स्फुरणा कर हृदय को अकुला देगी। वहाँ से क्रोध की उत्पत्ति हो पड़ेगी। वहाँ से शब्द ने जहर फैला दिया। जहाँ जहर हो गया, वहाँ मरण प्रकट हो जायेगा। इसी प्रकार प्रत्येक शब्द प्रभाव कर देगा।

किसी ने किसी को कहा, कि 'आइये महाशय जी, बहुत दिनों के बाद आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो सका।' तो आपस में गलबैया देकर प्रेम प्रकट कर दिया।

अब विचार करना होगा कि केवल मात्र शब्द ने ही तो अमृत और विष की स्फुरणा हृदय पर की तथा सुख और दुःख का प्रभाव हृदय पर हुआ।

इसी प्रकार '**हरे कृष्ण राम**' ये शब्द प्रेम समुद्र से ओत–प्रोत हैं। जो भी इन शब्दों का उच्चारण या चिन्तन करेगा तो दूसरों के हृदय में प्रेमसमुद्र को उड़ेल देगा, हृदय में भर देगा तथा जो पहले से ही दुर्गुणों का विष जमा था वह बाहर फेंक देगा। जैसा शब्द का Action वैसा ही Reverse होकर Reaction होगा ही।

मन को कैसे **हरे–कृष्ण–राम** इन शब्दों में फँसाया जाये यह नीचे की आकृति के द्वारा समझना होगा।



जीभ का उच्चारण

भाव– भगवान् मिल जाये।

त्रिभुज से मन को निकलने का रास्ता ही नहीं है। अभ्यास से सफलता मिलेगी ही।

कलिकाल में हरिनाम जप से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ मिल ही जायेंगे।

भगवान् भक्त से निहोरे करता है, इसके भूतकाल के अनेक उदाहरण हैं। भक्त जैसा नचाता है, भगवान् कठपुतली की तरह नाचता–फिरता है। भक्तों से पिटता फिरता है। यशोदा और कौशल्या ने भगवान् को कई बार थप्पड़ मारे। डर के मारे भगवान् थर–थर काँपे। केवल प्रेम के ही कारण....।

सेवा अपराध

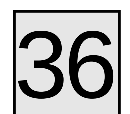
मठ की (ठाकुर जी की) सेवा करते हुए अन्तःकरण में द्रवता क्यों नहीं आती अर्थात् शरीर पुलकित क्यों नहीं होता? नित्य संकीर्तन आदि साधन करने पर भी अष्ट सात्विक विकार क्यों प्रकट नहीं होते? इसका मुख्य कारण है तोते की रटन। तोते को, तोता पालन करने वाला कोई शब्द-वाक्य जैसे सिखा देता है, वह उसी वाक्य को बारम्बार रटता रहता है। इसलिए जब कोई उसके पिंजरे के पास आता है, तब उसके बोलने का मन पर कोई असर नहीं पड़ता। उसको यह नहीं मालूम कि, वह क्या बोल रहा है, इस बोलने का क्या आशय है, वह इस पर कोई ध्यान नहीं देता। बस केवल उसे रटने से काम है।

इसी प्रकार मठ की (ठाकुरजी की) सेवा जो हो रही है, वह उक्त तोते की रटन के समान ही है। उसका अन्तःकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्तःकरण उसे छूता ही नहीं। कोई भी शब्द या वाक्य जब अन्तःकरण को छुएगा, तब ही उसका प्रभाव स्थूल व सूक्ष्म शरीर पर पड़ेगा, वरना हवा की तरह उड़ जायेगा। जैसे के तैसे ही आचरण से जीवन बसर होता रहेगा। कोई भी लाभ दिखाई नहीं देगा। केवल श्रम ही मिलेगा।

इसमें अपराध, मान-प्रतिष्ठा की चाह तथा आहार-विहार ही मुख्य कारण है, जैसे कि मठों में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है।

जब तक हरिनाम कान+मन को सटाकर नहीं होगा, तब तक उक्त दोषों का संहार नहीं हो सकेगा। कम से कम एक लाख जप स्मरण सहित होना चाहिए।

एक माला भी ध्यान पूर्वक होने से नाम अवश्य रक्षा कर देगा।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
29/01/2007
एकादशी

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, 108 श्री श्रीमद् भक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में दासानुदास अनिरुद्ध दास का अनन्त कोटि बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना!

कलियुग में सहजता से हरिनाम स्मरण से भगवद् प्राप्ति

शिव वचन-

कृत जुग-त्रेता-द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार गर्भोदकशायी विष्णु ने ब्रह्मा जी द्वारा **जरायुज-अंडज-स्वेदज और उद्भिज** ऐसे चार प्रकार के प्राणी प्रकट कराये। विष्णु को इन प्राणियों में अपने जैसा मानव देह सबसे अधिक पसन्द आया।

मानव को भगवान् ने हृदय और बुद्धि तत्व उक्त प्राणियों से ज्यादा विशेष रूप में अर्पित कीं। गीता में भगवान् ने वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को अपना ही स्वरूप बताया है। वैसे भी वेदों में अखिल ब्रह्माण्ड को पीपल के वृक्ष के रूप में लक्षित किया गया है। अब इसीसे हरिनाम स्मरण का विधान घोषित किया जा रहा है, जो ठाकुर जी द्वारा हो रहा है। मेरा इसमें कुछ नहीं। (कृष्ण नाम रूपी) इस पीपल वृक्ष का आश्रय लेने से मानव सर्वसुखी हो सकता है। **आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप** (इन त्रिविध तापों से) बच जाता है तथा सत्वगुण-रजोगुण-तमोगुण जैसे दारुण दुःखदायी रोगों से तथा अन्तर्भूत अनन्त रोगों से छुटकारा पा

सकता है। अन्त में आवागमन रूपी असहनीय दारुण दुःखों से सदैव के लिए छुटकारा पा जाता है।

(कृष्ण नाम रूपी) पीपल के बीज को हृदय रूपी जमीन में बोने के लिए कान रूपी घड़े में जीभ उच्चारण रूपी हाथों से हरिनाम रूपी जल द्वारा त्रिकाल समय-ब्रह्ममुहूर्त में, दिन में तथा रात में सिंचन करे तो पीपल बीज अंकुरित होकर शाखा रूपी शास्त्र, टहनी रूपी सच्चा ज्ञान, पत्तों रूपी रतिमति, फूल रूपी वैराग्य तथा फल रूपी प्रेम प्राप्त कर सकता है।

मानव इतना स्वादिष्ट फल प्राप्त कर सकेगा कि उसे खाकर मस्ती में झूमेगा। कोई भय-शंका-दुःख स्वप्न में भी नहीं देख सकेगा।

इसके विपरीत यदि हरिनाम रूपी जल कान रूपी घड़े में न जाकर यदि घड़े के बाहर गिरता रहेगा तो पीपल वृक्ष बीज में केवल सीलन रूपी सुकृति पहुँच सकेगी। जिससे वृक्ष को बढ़ने में काफी समय लग जायेगा। उक्त प्राप्ति जो जल पहुँचने पर हुई है, जल न पहुँचने के कारण बहुत समय बाद हो सकेगी अर्थात् रति-मति वैराग्य-प्रेम आदि की प्राप्ति देरी से होगी।

जब हरिनाम रूपी जल डालने में पूरी निष्ठा हो जायेगी तो सत्संग रूपी शास्त्र हृदय में अंकुरित हो पड़ेंगे तथा रति-मति वैराग्य-प्रेम आने में समय नहीं लगेगा। यह सब भक्ति-साधन केवल हरिनाम स्मरण में निष्ठा के लिए ही होते हैं। यदि इन साधनों से हरिनाम में निष्ठा नहीं हुई तो केवल श्रम ही हाथ लगा। समय व्यर्थ नष्ट हुआ।

दस नामापराध एवं मान-प्रतिष्ठा का त्याग करने से शरणागति स्वतः ही प्रकट हो जायेगी। अहम् ठाकुर जी में प्रतिष्ठित हो जायेगा।

इस लेख का अन्तिम आशय यह है कि, हरिनाम को कान से सुने बिना केवल श्रम होगा। जीवन व्यर्थ जाएगा। कान तब ही सुन पायेगा जब मन साथ में होगा। बिना सुने तो संसार का काम भी

सफल नहीं हो पाता। जरा पूरा ध्यान देकर विचार करे कि, बात तो सही है। यह होगा अभ्यास से, अभ्यास से क्या नहीं हो सकता ? जरा गौर करें।



चार प्रकार की उत्पत्ति

जरायुज – गर्भ से उत्पन्न हुए जैसे मानव, गाय या घोड़े–कुत्ते आदि जानवर

अंडज – अंडे से उत्पन्न हुए जैसे पक्षी और कीड़े मकौड़े आदि

स्वेदज – पसीना, लार, जैविक पदार्थों से उत्पन्न हुए जैसे वायरस, बैक्टीरिया, जूँऐ आदि

उद्भिज – पृथ्वी से उत्पन्न हुए जैसे वृक्ष और लतापता आदि

37

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 13/02/2007
एकादशी

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, श्रीनिष्किंचन महाराज के चरणों में अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम।

केवल मात्र नाम से ही सृष्टि का व्यवहार चलता है

सभी प्राणी नाम के पीछे-पीछे दौड़ते रहते हैं। नाम के अभाव में सृष्टि का कोई काम चल ही नहीं सकता। यहाँ तक कि पशु, पक्षी जिनमें बुद्धि तत्व का अभाव है, नाम उच्चारण करते ही वह दौड़कर पास में आ जाते हैं। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि, **'हरे, कृष्ण, राम'** का नाम लेते ही भगवान् शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। जब मायिक प्राणी ही नहीं रुक सकते, तो मायापति निर्गुण ब्रह्म (भगवान्) नाम लेने पर कैसे रुक सकते हैं ?

परन्तु, लेंगे तो हरिनाम और अन्तःकरण में आ जाये नदी या पहाड़ का ध्यान तो वहाँ भगवान् का दर्शन क्यों होगा ? भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। मन का संकल्प-विकल्प जानते हैं। भगवान् के हृदय में न आने से उनके गुण भी नहीं आ सकेंगे। ऐसा सिद्धान्त है कि, हृदय में जैसा संकल्प-विकल्प आता है, वैसा ही हृदय में रंग चढ़ जाता है।

जिसको अन्तिम पुरुषार्थ प्रेम फल प्राप्त हो गया, उसे अन्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। आम का फल प्राप्त हो जाने पर आम के बौर की, पेड़ की, शाखा की, प्रशाखा की, टहनी की, पत्तों की कोई आवश्यकता नहीं।

अर्थात् जिसे ठाकुर का प्रेम विरह प्राप्त हो गया उसे शास्त्र पठन, सत्संग, तीर्थाटन, मन्दिर दर्शन, आदि की अधिक आवश्यकता

नहीं है। उसे तो स्मरण से ही सब उपलब्धि हो जाती है। उक्त का थोड़ा सम्पर्क तो होना ही चाहिए।

नाम के पीछे-पीछे भगवान् दौड़ते हैं-

भयहु तुम्हार तनय सोई स्वामी।
राम पुनीत नाम प्रेम अनुगामी।।

मायिक नाम तथा चिन्मय नामादि में अपार शक्ति है। जो अन्तःकरण को सचेत कर देती है और तड़पन में परिणत कर देती है। यह तड़पन शुभ-अशुभ को लेकर ही होती है। शुभ नाम शब्द में आनन्दानुभूति होती है और अशुभ शब्दों में दुःखानुभूति होती है। मायिक शब्दों में दुःख और परमायिक शब्दों में सुखानुभूति होती है।

एक साधारण सा चित्रण है, जब हम किसी वस्तु विशेष का नाम लेते हैं तो वह हमारे अन्तःकरण में चित्रित हो पड़ती है, एवं उसका असर इन्द्रियों में आ जाता है। इन्द्रियों से स्थूल शरीर पर आ जाता है। स्थूल शरीर उसे व्यावहारिक रूप में काम लेने लगता है।

इसी प्रकार हरिनाम लेने पर ठाकुर जी का चित्र (आकृति) अन्तःकरण में दीखने लगती है। अधिक देर रहने पर उसका प्रभाव इन्द्रियों पर से स्थूल शरीर पर आने लगता है। स्थूल शरीर उसे व्यावहारिक रूप में परिणत करता है। अर्थात् सन्तों से मिलना, शास्त्र पढ़ना, मन्दिर जाना आदि करता है क्योंकि वह प्रभाव उसे ऐसा संग करने को प्रेरित करता है।

हथेली पर रखी हुई वस्तु जब तक कोई बता न दे या दिखा न दे तब तक हृदय उसे पकड़ न पायेगा। जैसे हथेली पर आम है। नाम लेते ही शक्ल हृदय में उदित हो जाती है। नाम के बिना पास की वस्तु भी नजर में नहीं आती। इसी प्रकार हरिनाम से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। नाम के पीछे सृष्टि चलायमान होती है।

मैंने अपने माँ–बाप (राधा–माधव) से एक भक्त के लिये झगड़ा किया कि 'एक भक्त है, उनके लिए आपने कुछ नहीं किया। आँख मींचकर सोते रहते हो, यह तो ठीक नहीं है। मैं भी आपसे अब नहीं बोलूँगा यदि इसी तरह से बेपरवाही की तो आप देख लेना इसका नतीजा खराब होगा।'

मेरे बाप ने उत्तर दिया, "मैं क्या करूँ, जब वह ही सोता रहता है। कितनी बार उसे जगाता रहता हूँ, फिर भी सो जाता है। उसके बदले तुम ही कुछ करो।

मैंने कहा–'मैं भोजन करूँ और उसका पेट भर जायेगा, ऐसा हो सकता है क्या ?"

मेरे बाप ने कहा, "मैं तो उसको बहुत प्रेरित करता हूँ, परन्तु वह कुछ सचेत हो भी जाता है। पश्चाताप भी करता है। चिन्ता भी करता है। परन्तु नतीजा कुछ नहीं होता।

उनके लिए बेटा तुम्हारी सिफारिश करना बेकार है। कितनी बार बेटा तुम मुझे उनके लिए कह चुके। उनको कोई असर होता ही नहीं है। अब आगे मुझे कुछ नहीं कहना। कहोगे तो मैं अनसुनी करता रहूँगा।

उस अन्धे को इतना भी मालूम नहीं है कि, तेरे सिर पर मौत नाच रही है और तू अचेत होकर सो रहा है। इससे भी बड़ा कोई नुकसान हो सकता है क्या ? समय उसको खूब मिलता है। लेकिन मन लगाकर मुझे याद करता ही नहीं है। उसको तो अपने स्वास्थ्य की चिन्ता ही लगी रहती है। मेरा इसमें क्या दोष है ?

मठ में आयोजन होता है तो उसको गहरी चिन्ता हो जाती है, वह बावला हो जाता है। उसने कभी सारा भार मुझ पर छोड़ा ? तुमने भी बेटा उसको बहुत समझाया कि यह आयोजन का काम ठाकुर जी सबसे करवा रहे हैं। आप क्यों इतनी चिन्ता करते रहते हो ? परन्तु, उसको मुझ पर भरोसा ही नहीं है, उसे लगता है कि मैं नहीं देखूँगा तो सारा काम बिगड़ जायेगा।

अब तुम ही बताओ, वह मेरी याद कर सकता है ? उसको तो चारों ओर की आफतें घेरी रहती हैं। क्या वह मठ चला रहा है ? मठ तो मैं ही चलवा रहा हूँ।

जब तक वह अपने ऊपर भार ले के रखेगा, तब तक वह मुझे याद नहीं कर सकता। माला लेकर बैठ जाता है कि हरिनाम करूँगा और नाम के बजाय न मालूम क्या-क्या स्मरण करता रहता है। पूरी उम्र बीत चुकी, अभी भी मन स्थिर नहीं हुआ तो, जिन्दगी में क्या हासिल किया ?"

मैंने नाम जपते रोते-रोते मेरे बाप को उलाहना दिया था कि "आपका वचन झूठा पड़ रहा है कि, मैं भक्त की आवाज सुनकर उसे पूरा करता हूँ। आप झूठे हो, आपने मेरी आज तक सुनी जरूर परन्तु कभी-कभी अनसुनी भी की है। या तो मैं आपका शरणागत भक्त नहीं, या फिर आप झूठे हो।"

लेकिन जब मेरे माँ-बाप ने शिकायत की तो मेरे समझ में आ गया कि कमी राधा-माधव जी में नहीं है। कमी उस भक्त में है।

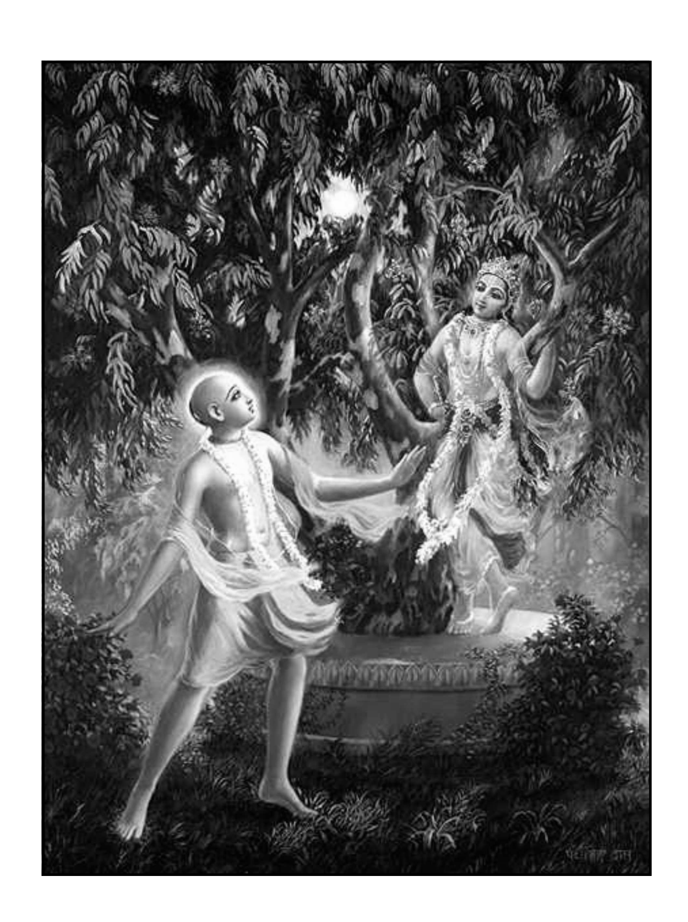
माँ-बाप ने शिशु के चलने के लिए वॉकर ला दिया और शिशु उससे चलना सीखे ही नहीं, तो माँ-बाप क्या करेगा ? यह शिशु की बदमाशी है। मैंने उस भक्त से कहा, "अब आप मुझे दोष मत देना। मैंने अपना कर्तव्य अदा कर दिया अब आप जानो, आपका काम जाने। मैं तो उऋण हो चुका।"

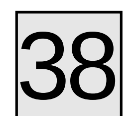
अबकी बार में, मैंने पूरी रामायण में से माखन निकालकर इकट्ठा किया था कि आपको वह माखन खिलाऊं ताकि उससे मेरे माँ-बाप के चरणों तक जाने की ताकत मिल सके। लेकिन मेरे गोविन्द के परिवार का दुर्भाग्य, आपका यहाँ आना नहीं हो सका। लगभग 250-300 चौपाइयाँ मैंने छाट कर रखी है, जो भक्ति स्तर बढाने में सक्षम है।

मैं भी नहीं आ सकता, फोन पर ही कुछ मसाला मिल जाता है, या पत्रद्धारा कुछ भोजन हो जाता है।

यह पत्र स्वयं ही पढ़े, चाहे तीन बार पढ़ना पड़े। इति

नोट– इस पत्र को काल्पनिक ना समझें। यह ध्रुव–सत्य चर्चा हुई है। यदि इसे आप काल्पनिक समझेंगे तो आपका बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा, आपका त्रिदण्ड लेना बेकार हो जायेगा। मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा, न संन्यास धर्म मिलेगा, न ऐसे वातावरण का संग व मौका मिलेगा। यह चर्चा गुह्य है। किसी को न बताया। बताओगे तो भारी नुकसान भुगतान पड़ेगा। घोर अपराध हो जायेगा।





॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 5/02/2007

परम प्रेमास्पद भक्त शिरोमणि सत्संग प्रचारक को इस अधमाधम दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम तथा सप्रेम हरिस्मरण। बच्चे को चिर आयु आशीर्वाद।

प्रेरणात्मक कथानक

हे, हितेश मलिक (श्रीहरिवल्लभदास)!

ठाकुर प्रेरित हृदय आकाशवाणी जो मुझे रात में 2 से 4 बजे के बीच में हुई उसे आप ध्यानपूर्वक हृदयगम्य (अन्तःकरण में) करें। अन्यों को भी सुनायें, परन्तु मेरा नाम गुप्त रखें, अमुक भक्त ने सुनाई थी, सत् कथा है ऐसा बोल दें।

एक निर्धन व्यक्ति जिसका परिवार बहुत बड़ा हो गया था। एक समय भी भोजन मिलना मुश्किल हो गया था। पूछता फिरता था कि, "कैसे दिन काटूँ? बच्चे भूख से तड़पते रहते हैं, देखा नहीं जाता।"

किसी सज्जन व्यक्ति ने कहा, "अमुक एक सन्त, अमुक ठौर पर भजन करते रहते हैं। वे ही इस कष्ट को मिटा सकते हैं। कोई युक्ति बता सकते हैं। उनके पास जाकर अपना दुखड़ा रोओ।"

वह बेचारा वहाँ गया, जहाँ सच्चे भजनशील सन्त भजन किया करते थे। उनके पास उसने अपना दुखड़ा रो दिया। सन्त ने कहा, 'चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायेगा।'

सन्त ने उसको, बच्चे जो काँच की कंचे खेला करते हैं, उससे भी छोटा एक पत्थर का गोल टुकड़ा देकर कहा, 'यह ले जाओ एवं इसको किसी को देना नहीं, घर में रख लेना।

उस गरीब ने सोचा, यह पत्थर का टुकड़ा तो एक ग्राम का भी नहीं है। क्या इससे कंगाली जायेगी? हाथ जोड़कर वह वहाँ से

चल दिया। उसने सोचा, घर में सब्जी नहीं है, इस टुकड़े से सब्जी ही ले चलें। क्योंकि वह पत्थर का टुकड़ा चमकता था।

वह मालिन के पास जाकर बोला, "माताजी यह टुकड़ा ले लो और मुझे थोड़ी-सी सब्जी दे दो।"

झल्लाती हुई मालिन बोली, "जा यहाँ से, मुझे ही सताने आया है, पैसा दे और सब्जी ले।"

बेचारा मन मसोस कर चल दिया। फिर एक दुकान पर गया और बोला, 'थोड़ी चीनी दे दो, और यह पत्थर का टुकडा ले लो।' उस दुकानदार ने कहा, 'मैं ही ठगने को मिला! जाता है कि बाट से मारूं।'

गरीब गिड़गिड़ाया, 'दे दो भैया, इतना नाराज मत हो।'

उसका पिंडा छुड़ाने के लिए झुंझला कर दुकानदार ने एक मुठ्ठी चीनी दे दी और कहा, "अब कभी इस दुकान पर मत आना।"

"ठीक है मालिक" ऐसा बोलकर वह गरीब चीनी खाता हुआ वहाँ से चला गया। इस टुकड़े ने चीनी तो दिलाई, ऐसा वह सोचने लगा।

दूर से एक दलाल उसको देख रहा था। उसने सोचा यह जो पत्थर का टुकड़ा बनिया को दे रहा था, मामूली नहीं है। उसने आकर गरीब को बोला, "दिखा वह पत्थर का टुकड़ा, कहाँ से लाया ?"

गरीब ने सच-सच बता दिया, जहाँ से उसे मिला था।

गरीब ने उसको वह टुकड़ा दिखा दिया।

दलाल ने बोला, "मुझे दे दो।"

गरीब ने बोला, "इसके बदले आप मुझे क्या दोगे ?"

दलाल ने कहा, "मैं दस रुपये दे दूँगा।"

गरीब ने बोला, "नहीं दूँगा।"

दलाल ने बोला, "तो क्या लेगा ?"

गरीब ने बोला, "कुछ नहीं लूँगा।"

क्योंकि सन्त ने उसे देने को मना कर दिया था। दोनों के बीच रस्सी खेंच चलने लगी। 100 ले ले, नहीं! 1000 ले ले–नहीं! तो फिर कितना लेगा ? कुछ नहीं लूँगा!

दलाल ने बोला, "तुझे जौहरी की दुकान पर ले चलूँ ? वहाँ ज्यादा मिलेगा। लेकिन आधा मुझे देना पड़ेगा।"

गरीब ने बोला, "ठीक है, चल।"

जौहरी को गरीब ने वह टुकड़ा दिखाया।

जौहरी ने बोला– "क्या लोगे ?"

गरीब ने बोला,"आप क्या दे सकते हैं ?"

जौहरी ने बोला, "1 लाख दे सकता हूँ।"

तब तो गरीब की आँख खुली और उसने सोचा कि– यह तो बड़ा कीमती है! उसने कहा, "मुझे देना ही नहीं।"

जौहरी ने बोला,"10 लाख ले लो।"

गरीब ने बोला, "नहीं मुझे देना नहीं है।"

दलाल ने बोला, "जो सबसे बड़ा जौहरी है, उसके पास चलोगे ?"

गरीब ने बोला, "क्यों नहीं, चलो!"

दलाल ने बोला, "आधा मुझे देना पड़ेगा।"

गरीब ने बोला, "ठीक है, दूँगा।"

जौहरी ने टुकड़े को देखा तो वह मन ही मन यह सोचने लगा कि– यह टुकड़ा तो तू खरीद ही नहीं सकता।

उसने गरीब से पूछा, "क्या लोगे ?"

गरीब ने बोला, "आप क्या दे सकते हैं ?"

जौहरी ने बोला, “1 करोड़ रूपया दे सकता हूँ।”

गरीब ने बोला, “थोड़ा है।”

तो दोनों में रस्सी खेंच चलने लगी...

10 करोड़ ले लो। नहीं! तो एक अरब ले लो।

गरीब ने बोला, “मुझे देना ही नहीं है।”

जौहरी ने बोला, “तू आया ही क्यों, जब तुझे देना ही नहीं था।”

गरीब ने बोला, “मैं तो इसकी कीमत अँकवाने आया था।”

उधर स्वर्ग का राजा इन्द्र जो अत्यन्त लोभी है, देख रहा था। जो सन्तों की भक्ति बिगाड़ता रहता है। कहीं कोई मेरा स्वर्ग छीन न ले। अप्सराओं को भेजकर मन डिगाता रहता है।

उसने सोचा, टुकड़ा बड़ा कीमती है, मैं ही खरीद लूँ!

वह गरीब के पास आकर बोला, “दिखाना तेरा वह पत्थर का टुकड़ा। मैं खरीद लूँगा।”

गरीब ने बोला, “देख सकते हो और आप इसका क्या दोगे ?” इन्द्र ने बोला, “स्वर्ग का राज तुमको मिल जायेगा।”

गरीब ने कहा,“स्वर्ग में क्या क्या है ?”

इन्द्र ने कहा,“वहाँ पारिजात वृक्ष है। कल्पतरु वृक्ष है।”

“इनका मैं क्या करूँगा ?”, गरीब ने बोला।

इन्द्र ने बोला, “तुम्हें मालूम नहीं है, यह जो वृक्ष है वह तुम जो कामना करोगे उसे पूरी कर देते हैं।”

गरीब ने बोला, “और क्या–क्या है ?”

इन्द्र ने बोला,“अप्सरायें हैं, जो हर प्रकार का सुख देंगी। विमान है, जहाँ चाहो वहाँ ले जाते हैं। सभी सुख स्वर्ग में हैं। लाओ वह पत्थर का टुकड़ा मुझे सौंपो और स्वर्ग में जाकर राज करो।”

गरीब ने बोला,“मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए।”

इन्द्र ने बोला, "तो क्या चाहिए ?"

गरीब ने बोला, "कुछ नहीं।"

इतने में ही भगवान् वैकुण्ठ छोड़ कर वहाँ की बात सुनने के लिये आ गये और बोले,"इन्द्र! इस गरीब से क्यो झगड़ा फसाद कर रहे हो ?"

इन्द्र ने बोला, "इसके पास पत्थर का टुकड़ा है, लेकिन इसका इस पर इतना मोह है कि देना ही नहीं चाहता!"

भगवान् बोले, "दिखाओ! मैं भी खरीद सकता हूँ।"

गरीब ने बोला, "यह देखो!"

भगवान् उसे देखकर बोले, "मैं इसकी कीमत नहीं चुका सकता। हाँ, इसके बदले मुझे ही मोल ले लो। मैं तुम्हारा नौकर बनकर क्षण-क्षण तुम्हारा काम करता रहूँगा। तब भी इस हीरे की कीमत असीम ही होगी।"

वह हीरा और कुछ नहीं साक्षात् हरिनाम ही था!

भगवान् बोले-

राम न सकहि नाम गुण गाई।

भगवान् भी हरिनाम का गुण वर्णन करने में असमर्थ हैं। क्योंकि **राम तथा कृष्ण** ने तो बहुत कम पापियों को तारा होगा। लेकिन नाम ने तो बेशुमार असंख्य पापी तारे हैं, तारते हैं और तारेंगे।

सद्गुरु ने **हरिनाम का हीरा** दिया। लेकिन इसकी कीमत न समझने के कारण व्यक्ति इसे कूड़े में डाल कर मजे से सोता है, फिर अन्त समय पछताता है।

यह सत् वार्ता है। हरिनाम का सहारा ही आनन्द समुद्र में गोता लगा देगा। भूलो नहीं, चेत जाओ। समझा समझा कर थक गया। लेकिन एक भी नहीं मानी।

नोट : चूको मत समय जा रहा है। सुअवसर फिर नहीं मिलेगा। इसी जन्म में जन्म-मरण अवश्य छूट जायेगा। नहीं तो पछताना ही होगा।

इस रूपक का आशय समझना होगा।

मालिन ने इस टुकड़े को गली में फेंकने योग्य समझा-**अर्थात् नास्तिक व्यक्ति।**

जौहरी ने इसकी कीमत समझी- **अर्थात् भक्त**

इन्द्र ने इसे अमूल्य समझा-**अर्थात् नामनिष्ठ ने अमूल्य वस्तु समझा।**

भगवान् इसके बदले बिक जाते हैं।

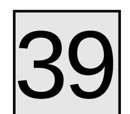
इस हरिनाम का मूल्य खुद भगवान् भी बताने में अक्षम हैं।

शिववचन-

हरिनाम का अमित प्रभावा। सन्तपुराण उपनिषद् गावा।।

राम नाम के हीरा मोती

राम नाम के हीरा मोती, मैं बिखराऊँ गली गली।
ले लो रे कोई राम का प्यारा, शोर मचाऊँ गली गली।।
माया के दिवानों सुन लो, एक दिन ऐसा आएगा।
धन दौलत और माल खजाना, यहीं पड़ा रहा जाएगा।।
सुन्दर काया माटी होगी, चरचा होगी गली गली।।
क्यों करता है मेरा मेरा, यह तो मेरा मकां नहीं।
झूठे जग में फँसा हुआ है, वह सच्चा इन्सान नहीं।।
जग का मेला दो दिन का है, अन्त में होगी चला चली।।
जिन जिन ने यह मोती लूटे, वह तो माला माल हुये।
धन दौलत के बने पुजारी, आखिर वह बेहाल हुये।।
चाँदी सोने वालो सुनलो बात सुनाऊँ खरी-खरी।।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 22/02/2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

हरिनाम में रति-मति न होने के कारण

श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी और मेरे गुरु जन मेरा अपराध क्षमा करें। मैं नहीं लिख रहा हूँ, मेरे ठाकुरजी ही मुझसे सेवा लेकर भक्तों के चरणों में कुछ लिखने को प्रेरित कर रहे हैं। हरिनाम में मन क्यों नहीं लग पाता है? इसके कई कारण हो सकते हैं तथा होते हैं।

1. शरीर का अस्वस्थ रहना।
2. स्थान में दूषित वातावरण।
3. मायिक भौतिक विचारों की भरमार।
4. सत्संग का अभाव।
5. पड़ोसियों से असुविधा।
6. मन में उत्साह की कमी।
7. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, मान-प्रतिष्ठा में रत रहना।
8. पिछले जन्मों के संस्कारों का आक्रमण।
9. दूषित खान-पान।
10. अपनी मौत को भूले रहना।
11. **माया**-ईश्वर तथा स्वयं के बारे में अज्ञान का आवरण।
12. रजोगुणी वृत्ति में अशान्त रहना-तृष्णा में रहना

13. अनर्थ समूल नष्ट न होना।

14. पाप वासना का दबाव।

15. मन, कर्म, वचन से भक्तों के प्रति अपराध होते रहना।

16. अभ्यास की कमी तथा वैराग्य की क्षीणता।

17. विषयों का विष अन्तःकरण को दूषित करते रहना।

18. हरिनाम का महत्व न समझना।

19. श्रीगुरुदेव को साधारण समझना।

शिव वचन–

हरिनाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद् गावा।।
जे सठ् गुरु सन इर्षा करहिं। रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहि नाम गुण गाई।।

नाम के पीछे भगवान् चलते हैं। अतः कान से नाम को सुनना परमावश्यक है। जब मन लगा होगा तब ही कान सुन सकेगा। जीभ का उच्चारण तथा कान का श्रवण विरहाग्नि प्रकट कर देगा। दो चीजों का घर्षण – गर्मी प्रकट करता है।

जब तक विरहावस्था प्रकट नहीं होगी तब तक मानव जन्म सार्थक नहीं होगा। विरह भी दो प्रकार का होता है, एक निम्न कोटि का और दूसरा उच्च कोटि का।

निम्न कोटि के विरह में आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है, जो अधिक देर तक नहीं रहती, कुछ समय के लिए ठाकुर के प्रति हो जाती है। इसके विलीन होने पर अन्तःकरण में संसार आ टपकता है। यह भी होना किसी विरले भक्त को ही होता है।

उच्च कोटि के विरह में अश्रुधारा के साथ नाक से श्लेष्मा बहने लगता है। अष्ट–प्रहर भी यह स्थिति रह सकती है तथा 2–4 घंटे भी रह सकती है। इसमें अन्नमय कोश–प्राणमय कोश–मनोमय कोश–विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश जिसको चित्तमय कोश भी कहा जाता है, इसमें मन की स्थिति होकर समाधि की अवस्था

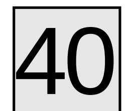
में स्थिरता हो जाती है। **जिसको तुरीय अवस्था भी कहा जाता हैं।** इसमें कभी-कभी साँस का चलना बन्द भी हो जाता है। बेहोशी भी हो जाती है। इसमें ठाकुर जी की आकाशवाणी तथा रमणीय दर्शन तथा अलौकिक महक का भी अनुभव हो जाता है। परमहंस प्राप्त व्यक्ति का आवागमन निवृत्त हो जाता है। **यह अवस्था करोड़ों में से किसी एक सुकृतिशाली व्यक्ति को ही हुआ करती है।** इसका संग भी किसी सुकृतिशाली व्यक्ति को ही होता है, जिसपर ठाकुरजी की असीम कृपा होती है।

मम गुण गान नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोई जानई परमानन्द संदोह।।

उक्त अवस्था प्राप्त व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम मोक्ष प्राप्त हो जाता है। **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** हो जाती है।

कूपमण्डूक न्याय

कुएं के अन्दर के मेंढक का न्याय। कुएं के अन्दर का मेंढक सोचता है कि, उसका कुआं ही विश्व का सबसे बड़ा जलाशय है और वह महासागर के विशालता की कल्पना नहीं कर सकता! उसी प्रकार, तथाकथित बुद्धिमान लोग सोचते हैं कि, 'मैं एक व्यक्ति हूँ और मैं सीमित हूँ- व्यक्ति असीमित नहीं हो सकता। भगवान् असीमित हैं, इसलिए व्यक्ति नहीं हैं!' परन्तु जिस प्रकार कुएं का मेंढक समुद्र की विशालता को नहीं समझ सकता, उसी प्रकार तथाकथित बुद्धिमान लोग इस बात को नहीं समझ सकते कि, भगवान् असीमित होकर भी एक व्यक्ति हैं।



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 28/02/2007

आश्चर्य–आश्चर्य–आश्चर्य

परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण–युगल में इस अधमाधम दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम और हरिनाम में मन लगाने की प्रार्थना!

प्रश्न कुछ जटिल है, उत्तर देना असम्भवसा प्रतीत होता है।

प्रायः देखा गया है कि, साधु, सन्त, महात्मा अन्त समय वृद्ध अवस्था में खटिया में पड़कर कष्ट भोग कर देह–त्याग करते हैं। यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है।

नास्तिक मायासक्त व्यक्ति बोलते हैं कि– भगवान् को भजने से क्या लाभ, जो इतना दुःख भोगकर मरना है एवं दुष्ट अत्याचारी मानव एक क्षण में ही मरता देखा गया है। फिर भक्ति करने से क्या लाभ ?

इसका खास मुख्य कारण है भगवान् की असीम कृपा!

अपने भक्त को भगवान् स्वच्छ कर के धाम ले जाते हैं। खटिया में पड़ने से न तो उनसे कोई पाप होता है, न मन, वचन, कर्म से भक्त अपराध होता है। पूरी उम्र भर नाम की शरण लेकर जीवनयापन किया है, अतः अंतिम सांस भी भगवद्चिन्तन में ही निकल जाती है। गीता के कहे अनुसार, वे सदा के लिए जन्म–मरण रूपी दारुण दुःख से छूट जाते हैं।

नास्तिक मायिक मानव अचानक मर जाने से उसे भगवान् की स्मृति आ ही नहीं सकती। जिस भाव में उसने जीवन बिताया है, उसी भौतिक भाव में साँस निकल जाने से अधोगति में चला जाता है। अतः भक्त को कितनी सुविधा का अवसर दिया गया है।

आस्तिक नास्तिक को समझाता है कि, वेद शास्त्र क्या गलत कहते हैं ?

नास्तिक कहता है कि,'वेद शास्त्र तो इसलिए कहते हैं कि, मानव सुख–शान्ति से रह सके, अतः कई प्रकार के प्रलोभन देकर मानव को बुरा काम करने से रोकते हैं। कुछ नहीं है, सब बकवास है।'

भक्त के लिए तो अन्त में खाट में पड़ना तो एक फाँसी के तख्ते के समान है। जिसको सामने मौत दिख रही हो, उसे संसार की वस्तु याद आ सकती है ? भूख, प्यास तक उड़ जाती है, अतः भक्त हर क्षण भगवद् चिंतन में ही क्षण–क्षण बिलखता रहता है। कोई अपवाद भी इसलिए हो जाता है कि कोई भक्त अचानक भी मर जाता है। इसका कारण है वह एकदम विरक्त परमहंस तुरीया–वस्था प्राप्त मानव है। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, अतः ऐसे भक्त को शरीर छोड़ने में एक क्षण ही लगता है। भरत–हिरण के बच्चे में आसक्त होकर शीघ्र ही मर गये थे। लेकिन भक्ति अमर ही रहती है। अगले जन्म में लाभकारी बन जाती है।

नास्तिक का भी अपवाद है। कोई–कोई नास्तिक भी खटिया पर दुःख भोग कर जाता देखा गया है। इसका कारण है, उसके कुकर्म! यहाँ भी यमराज उसे भोग भुगवाकर भविष्य में मरने के बाद नरक भोग करायेगा। अब एक स्पष्ट उदाहरण द्वारा इस समस्या को हल किया जा रहा है–

एक माँ का शिशु घर के बाहर खेलता हुआ रेत में तथा मल में अपने को लिपायमान कर लेता है। जब माँ उसे बाहर आकर देखती है, तो क्या उसे फौरन गोद में चढ़ा लेगी ? पहले तो वह उसको स्वच्छ करेगी, तभी गोद में लेगी। भक्त शिशु है और भगवान् माँ है। यही इसका रूपक है। पशुओं में भी जब प्रसव होता है, तो बच्चे को मादा पशु पहले चाट–चाट कर साफ करके फिर स्तनपान कराती है। क्या भगवान् भक्त को अनदेखा कर सकता है ? जबकि वह अखिल ब्रह्माण्डों की माँ हैं। श्रीनृसिंहदेव ने अपने भक्त प्रह्लाद

को चाट–चाटकर वात्सल्य भाव दिखाया था कि मुझको प्रकट होने में देर हुई। मेरे भक्त ने बहुत कष्ट पाया है, यह सोचकर चाट–चाटकर पश्चाताप की अग्नि में जल रहे हैं।

उक्त समस्या का समाधान क्या एक तुच्छ बुद्धि मानव कर सकता है ?

भगवान् ने प्रेरित कर के सन्त सेवार्थ चरणों में अर्पित करने के हेतु यह लेख लिखवाया है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह 'महामन्त्र' बत्तीस अक्षरों से युक्त है, समस्त पापों का नाशक है, सभी प्रकार की दुर्वासनाओं को जलाने के लिए अग्नि स्वरूप है, धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को देने वाला है, दुर्बुद्धि को हरने वाला है, शुद्धसत्त्वस्वरूप भगवद्वृत्ति वाली बुद्धि को देने वाला है, सभी का आराध्य एवं सेवनीय है, सभी की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। महामन्त्र के संकीर्तन में सभी का अधिकार है, यह मन्त्र सभी का मुख्य बान्धव है, दीक्षाविधि आदि की अपेक्षा से रहित है, वाणीमात्र से पूजित करने योग्य है, बाह्यपूजा विधि की अपेक्षा नहीं करता है, केवल जिह्वा के स्पर्शमात्र से फलदायक है, देशकाल आदि के नियम से विमुक्त है। अतः यह सर्ववादीजन के द्वारा सुसम्मत है।

(श्रीभक्तिचन्द्रिका के सप्तम पटल में से उद्धृत)



॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 11/03/2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, मेरे गुरुदेव 108 श्रीश्रीभक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानु-दास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम।

जैसा नाम वैसा काम

मेरी देखा-देखी यदि ब्रह्मचारी भजन को बढ़ाकर करने लगें तो ठाकुर जी की मुझ पर अपार कृपा हो सकती है। क्योंकि मेरा ध्येय अन्यों की भजन में उन्नति करवाने का है। एक लाख हरिनाम जप रात में ब्रह्ममुहूर्त में प्रेम सहित हो जाता है। मन एकदम स्थिर रहता है। एक लाख जप दिन में हो जाता है, परन्तु रात जैसा मन नहीं लग पाता। इसके कई कारण हैं। कोई आ जाता है, खट-पट होती रहती है, आदि आदि कारण हैं।

मेरे द्वारा जो पत्र लेखन होता है, वह किसी अपरिचित शक्ति द्वारा ही होता है। यह एक तुच्छ प्राणी का काम नहीं है, जो लिखने में सक्षम हो।

श्रीगुरुदेव जी ने जो भी शिष्यों के नाम रखे उसी नामानुसार स्वभाव भी बना दिए गए।

मेरा नाम अनिरुद्ध रखा तो मेरा स्वभाव शिशु का बन गया। श्रीकृष्ण जी ने कितनी बार अपने पोते अनिरुद्ध को गोद में लेकर खिलाया होगा! रुक्मिणी, सत्यभामा आदि ने कितनी बार गोद में सुलाकर स्तनपान कराया होगा! वही चिन्तन श्रीगुरुदेव ने मुझे प्रदान किया है। शिशु से पाप अपराध कभी होने का सवाल ही नहीं है। फिर भजन स्तर क्यों गिरेगा? केवलमात्र मान-प्रतिष्ठा और दस नामापराध से बचना होता है।

शिशु का सहारा रोना है। इस रोने से कौन पत्थर दिल होगा जो पिघलेगा नहीं ?

शिव वचन–

जो सभीत आया शरणाई। ताको राखूँ प्राण की नाई।।

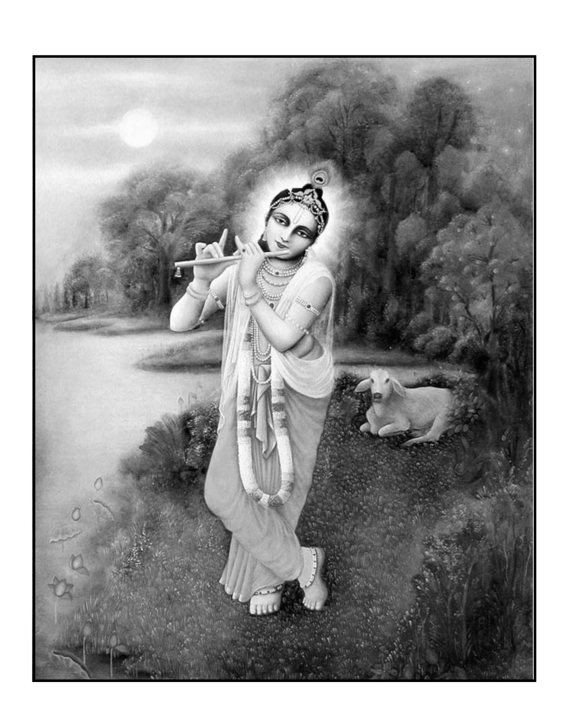
श्रीराम बोल रहे हैं!

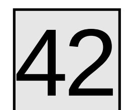
जहाँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिनाम भवानी।।
सो रघुनाथ नाम श्रुति गाई। राम कृपा कहु इक पाई।
सब कर फल हरिनाम सुहाई। सो बिन सन्तन काहु न पाई।।

राम वचन–

काहु न कोऊ सुख दुःख कर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता।।

नोट– संसार दुःखालय है। हरिनाम सुखालय है। कृपाकर जाग जाओ। मौत का कोई समय नहीं है।





॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

चण्डीगढ़

दि. 05/06/2007

परमाराध्यतम भक्तगण, अधमाधम दासानुदास का बारम्बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा नामनिष्ठा अन्तःकरण में जगने की करबद्ध प्रार्थना।

हरिनाम ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का पालनकर्ता, सृष्टिकर्ता तथा संहारकर्ता

हरिनाम की शरणागति लेना ही मानव मात्र का सर्वप्रथम तथा अन्तिम कर्तव्य है। जिस मानव ने हरिनाम को अपना लिया उसको सब कुछ प्राप्त हो गया, उसे कुछ भी पाना बाकी नहीं रहा।

अब प्रश्न उठता है शरणागति कैसे प्राप्त की जा सकती है? इसका सही उत्तर होगा, हरिनाम को जिह्वा से धीमे स्वर में उच्चारण करे, ताकि केवल कान में सुनाई पड़ सके। जोर से उच्चारण करने पर थकान जल्दी आ जायेगी।

कान व मन को केन्द्रित कर नाम को सुनना होगा। यदि कोई साधक इस तरह से चार माला कान व मन को केन्द्रित कर के सुन लेगा तो उसे शत-प्रतिशत भगवान् के लिए रोना आयेगा। लेकिन यह उक्त साधन एक माह तक होना चाहिए। यदि क्रम अर्थात् निरन्तरता टूट गई, तैलधारावत हरिनाम नहीं हुआ तो अश्रुधारा आने में सन्देह है।

विरह प्रकट होने में दो अड़चनें आ सकती हैं। 10 नामापराध व मान प्रतिष्ठा की चाह। इनकी सतर्कता से सावधानी रखनी चाहिए वरना उक्त विरह स्थिति आना बिल्कुल असम्भव ही है। जब मानव साधक का मन 64 माला स्मरण करने लग जायेगा तो स्थिति स्वर्णमय बनकर दुर्गुणों का नाश होने लगेगा तथा सद्गुण

अन्तःकरण में प्रकट होने लगेंगे। एक अलौकिक आनन्दानुभूति महसूस होने लगेगी।

सभी शब्द भगवान् से ही सम्बन्धित हैं, अतः प्रत्येक शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। शब्दों से ही मंत्र बन जाते हैं। मन्त्रों से बाण चलते हैं जो अग्नि लगा देते हैं। पानी सोंख लेते हैं। राग रागनियाँ संगठित होकर बादल बन कर बरसात कर देते हैं। हर प्रकार के विष का शोषण कर देते हैं, अमृत बरसा देते हैं। ब्रह्माण्डों को एक क्षण में नाश कर देते हैं। शब्द शक्ति क्रोध, प्रेम अर्थात् आन्तरिक भावों को जागृत कर अपना अच्छा बुरा प्रभाव प्रकट कर देती है।

इसी प्रकार हरिनाम गिरते पड़ते, साँस लेते, उबासी, छींक लेते, वैर से, प्यार से, अवहेलना से, कैसे भी मुख ने निकल पड़े तो मंगल सूचक होगा। जो तुलसी माला पर आग्रहपूर्वक अधिक से अधिक संख्या में हरिनाम स्मरण करेगा उसे इसी जन्म में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ उपलब्ध हो जायेंगे। अन्त में आवागमन रूपी दारुण दुःख से छूटकर पंचम पुरुषार्थ प्रेम को प्राप्त कर परमधाम में चला जायेगा। अमरता को प्राप्त कर लेगा।

न कलिकर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू।।
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहि आन उपाऊ।।
जाना चहिए गूढ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।
जिन कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नशाहीं।।

यदि सुख का जीवन बिताना है तो रामनाम तथा हरिनाम को अन्तःकरण (कान+मन) से स्मरण करो। फिर संसार में कोई बाल भी बांका न कर सकेगा। जो भी टकरायेगा नष्ट हो जायेगा। इसके शास्त्रो में अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

43

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दि. 04/06/2007

समर्पण

श्रीचैतन्यगौड़ीय मठ के संस्थापक नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयितमाधव गोस्वामी महाराज के तथा उनके प्रियतम शिष्य वर्तमान मठाचार्य ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज के युगल चरणकमलों में, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्ध दासाधिकारी अपने अन्तःकरण से हरिनाम स्मरण के उद्गार मठ के भक्तों के चरण-कमलों के माध्यम से अर्पित कर रहा है। कृपया अंगीकार कर और मुझ अधम पर कृपा-दृष्टि कर अनुग्रहीत करें। यह मुझ पर भक्त व भगवान् की अति कृपा होगी।

भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम आदि सब प्रकृति से अतीत हैं। श्रीभगवान् व उनके नाम, रूप, गुण, लीला आदि उनसे सर्वथा अभिन्न हैं। स्वयं भगवान् ही जीवों का उद्धार करने हेतु अपनी अहैतुकी कृपा से नाम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। अतः भाग्यशाली जीव, हरिनाम के प्रचारक-सद्गुरु द्वारा हरिनाम की शिक्षा लेकर और भगवान् के संकीर्तन तथा नाम-स्मरण का आश्रय ग्रहण करके कृतार्थ हो जाते हैं। क्योंकि कलिकाल में हरिनाम का स्मरण कान व मन को सटाकर (केन्द्रित करके) तथा सब मिलकर संकीर्तन करके अपने को शरणागति की स्थिति में प्रोत्साहित कर लेते हैं। हमारे प्राणेश्वर भगवान् श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी, शुद्ध कृष्ण-नाम का जगत् में प्रचार करने के लिए इस धरातल पर अवतीर्ण हुए तथा उन्होंने सदैव कान व मन को सटाकर हरिनाम स्मरण करने तथा सब मिलकर संकीर्तन करने का उपदेश दिया। अतः अपना मंगल चाहने वालों के लिए आवागमन (जन्म-मृत्यु का चक्कर) रूपी दारुण दुःख को हटाने के लिए यह शुभ साधन भगवान् गौरहरि ने सुलभ कर दिया।

भगवद्–कृपा से प्रेरित होकर नामामृत पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा अन्य जीवों को पिलाने के अवसर का भी संयोग हुआ। भक्त–अपराध तथा मान–प्रतिष्ठा की चाह को दूर रखते हुए यदि कोई भाग्यशाली सुकृतिवान जीव चार माला हरिनाम की मन व कान को सटाकर कर लेगा, तो उसे शत–प्रतिशत अवश्य ही भगवद् शरणागति का शुभ अवसर प्राप्त होकर विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो पड़ेगी। जिससे अन्तःकरण के सभी दुर्गुण भस्मीभूत होकर सद्गुणों का आविर्भाव हो जायेगा। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। कोई सुकृतिवान इसे आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। एक से चार माला हरिनाम, मन और कान को सटाकर करने पर भगवान् की अपार कृपा बरसेगी। यदि अपराध और मान–प्रतिष्ठा की चाह से भक्त बचता रहेगा, तो मैं गारण्टी से कह सकता हूँ कि उसकी विरहाग्नि प्रकट हो जायेगी। उसे भगवद् शरणागति, जो भगवद्गीता के प्राण हैं, सरलता से सुलभ हो जायेगी। शरणागत को भगवान् एक क्षण भी दूर नहीं करते, सदैव अपने हृदय से चिपकाकर रखते हैं, ठीक उसी प्रकार से, जिस प्रकार माँ अपने शिशु को हृदय से लगाए रहती है। जीव हरिनाम अमृत का रस पीने से अमर बन जायेगा।

जो सभीत आया शरणाई। ताको राखूँ प्राण की नाई।।

(रामचरितमानस)

यदि यह उक्त लेखन सामग्री जो ठाकुर जी ने अन्तःकरण में प्रेरित कर अंकित करवाई है, किसी एक साधक को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेगी, तो मेरा मनुष्य जन्म सफल हुआ ऐसा जान कर, स्वयं को परम कृतार्थ समझूँगा तथा भक्तों के चरण–कमलों के शरणागत होकर भवसागर से निश्चित ही पार हो जाऊँगा। इसे भक्तगण अंगीकार करेंगे ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

गुरु और भगवान् अभिन्न है। शास्त्र के अनुसार गुरुतत्व भगवान् से अभिन्न होने के कारण गुरु को भगवान् के समान पूजनीय मानकर उनका सम्मान तथा पूजा करनी चाहिये। ऐसा भगवान् का आदेश है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर रचित श्रीश्री गुर्वाष्टक से–

साक्षाद्-हरित्वेन समस्त शास्त्रैर्
उक्तस् तथा भाव्यत एव सद्भिः
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्

श्री भगवान् के अत्यन्त अन्तरंग सेवक होने के कारण, श्रीगुरुदेव को स्वयं श्री भगवान् के समान ही सम्मानित किया जाना चाहिए। इस बात को सभी प्रमाणित शास्त्रों ने माना है और सारे महाजनों ने इसका पालन किया है। भगवान् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) के ऐसे प्रमाणित प्रतिनिधि के चरणकमलों में मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु सर्वदेवता एवं महेश्वर हैं। गुरु ही साक्षात् परंब्रह्म हैं– ऐसे श्रीगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

इस उपरोक्त भाव के अतिरिक्त विद्वान् इस श्लोक की दूसरी व्याख्या भी करते हैं, जो इसप्रकार है–

ब्रह्मा गुरु हैं, विष्णु गुरु हैं, सर्व देवता गुरु हैं, महेश्वर गुरु हैं और साक्षात् परंब्रह्म गुरु हैं ऐसे गुरु को नमस्कार करता हूँ।

सात सूत्र

आदरणीय भक्तजनों! इस समय हमारी परीक्षा की घड़ी है और हमें अपनी तर्क बुद्धि को त्याग कर, अपनी बुद्धिमत्ता एवं भक्ति का दिखावा न करके, बिना विचार किये, बिना कोई तर्क किये, श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की हर बात को मानना है। इसी में ही हमारा मंगल है। गत एक महीने में जिन बातों को वे चार बार दुहरा चुके हैं, उन्हीं बातों का संक्षिप्त रूप में यहाँ वर्णन किया जा रहा है। श्रद्धेय पाठक गण! इन महत्वपूर्ण बातों को समझेंगे और उनपर चलेंगे–ऐसी मुझे आशा है और भगवान् के चरणकमलों में प्रार्थना भी। श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के प्रवचन के अंश और उनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है–

1. जो कांचन–कामिनी–प्रतिष्ठा से दूर है।

2. जिसका संग्रह–परिग्रह करने का स्वभाव नहीं होगा।

3. जो 'तृणादपि सुनीचेन' की मूर्ति अर्थात् विनम्र एवं सहनशील होगा। दूसरों का सम्मान करेगा।

4. नित्य तीन प्रार्थनाएँ करेगा।

5. जब हरिनाम जपें तब यह भाव रखें कि भगवान् मेरे पास बैठे हैं।

6. जो किसी का गुण–दोष नहीं देखेगा।

7. जो संतोषी होगा। भगवान् ने जो कुछ उसे दिया है, उसी में सन्तुष्ट होगा, सुखी होगा, प्रसन्न होगा।

जो भी मनुष्य इन सात सूत्रों को जीवन में धारण करेगा, उसे इसी जन्म में भगवान् के दर्शन हो जायेंगे। यह पक्की बात है। ये सूत्र सात ही क्यों ? आठ, नौ या दस क्यों नहीं ? इसका उत्तर है कि सात नंबर बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिये सात सूत्र कहे हैं। पहले

सात का रहस्य सुनो! देखो (1) सप्ताह में दिन सात ही होते हैं। (2) सप्ताह के सात ही दिनों में आदमी जन्म लेता है, इन्हीं सात दिनों में वह मरता है। (3) सप्त ऋषियों से ही सृष्टि चली। (4) श्रील व्यासदेव जी के आत्मदर्शी सुपुत्र श्रील शुकदेव जी ने, महाराज परीक्षित को सात दिन में ही श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर उन्हें भगवान् के धाम में भेजा था। (5) भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सबसे छोटी उंगली पर सात दिन तक श्रीगिरिराज जी को धारण किया था। (6) उस समय उनकी आयु भी सात वर्ष की ही थी। (7) श्रीगिरिराज की परिक्रमा भी सात कोस की ही है। (8) सात ऋषि (सप्तऋषि) ध्रुवलोक की परिक्रमा करते रहते हैं। (9) सात महीने बाद अर्जुन द्वारका से इंद्रप्रस्थ वापिस आए थे। (10) दुल्हा व दुल्हन अग्नि की सात ही परिक्रमा करते हैं। (11) इंद्रधनुष में सात ही रंग होते हैं। (12) संगीत के स्वर भी सात ही हैं। (13) राजा प्रियव्रत ने पृथ्वी की सात परिक्रमा की थीं। (14) राजा प्रियव्रत द्वारा पृथ्वी पर सात समुद्र बनाए गए थे। (15) प्रियव्रत ने सात ही द्वीप (सप्त द्वीप) बनाए। (16) प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को सात द्वीपों का स्वामित्व दिया। (17) राजा इन सात आवरणों से घिरा रहता है– गुरु, मंत्री, दुर्ग (किला), कोश, सेना, मित्र तथा प्रजा (18) श्रीनारद जी ने बोला– सात रात में संकर्षण के दर्शन होंगे। (19) श्रीनारद जी के कहे अनुसार महाराज चित्रकेतु ने सात दिन अनुष्ठान किया। (20) सात आवरणों से ब्रह्माण्ड कोष घिरा रहता है। (21) इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति के अभी तक सात भाग प्रकाशित हुए हैं।

सात आचरणशील व स्वभाव वाले भक्त के पीछे श्रीकृष्ण छायावत् चिपके रहते हैं।

आईये! इन सातों सूत्रों के बारे कुछ और जानें।

(1) कांचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर

कनक-कामिनी, प्रतिष्ठा, बाघिनी, छाडियाछे यारे सेई त वैष्णव।
सेइ अनासक्त, सेई शुद्ध भक्त, संसार तथाय पाय पराभव॥

(दुष्ट मन तुमि किसेर वैष्णव, श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपाद)

"धन, स्त्री व प्रतिष्ठा रूपी बाघिनी का परित्याग करने वाला ही यथार्थ वैष्णव है। इस प्रकार की आसक्ति से रहित शुद्ध भक्त ही संसार का उद्धार करने की सार्मथ्य रखता है।"

कांचन

कनक या कांचन में रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, मकान-दुकान-खेत सब आ जाता है। शंकराचार्य जी कहते हैं-

अर्थमनर्थ भावय नित्यं, नास्तिततः सुखलेशः सत्यम।

यानि साधक का यह भाव बना रहना चाहिए कि अर्थ सदा अनर्थ करने वाला है, इसके द्वारा लेशमात्र भी सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भागवत में धन के दोषों का वर्णन करते हुए कहा है- "धन कमाने में, कमा लेने पर उसको बढ़ाने, रखने व खर्च करने में तथा उसके नाश और उपभोग में, जहाँ देखो, वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है। चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, बैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब - ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्य में धन के कारण ही माने गए हैं। इसलिए अनर्थकारी अर्थ को कल्याण कामी को दूर से ही त्याग देना चाहिए।" मनुष्य को उतने ही धन का उपार्जन करना चाहिए, जिससे निर्वाह मात्र हो सके **(यावदर्थमुपासीनो)**। अधिक के फेर में पड़ने पर भजन का समय कहाँ रहेगा ? और ऐसे मनुष्य को धन की तृष्णा व अभिमान, भक्ति पथ में बहुत बाधा देगा।

तब एक प्रश्न उठता है कि जिसके पास अधिक धन है, क्या वह सारा धन दान कर दे या नष्ट कर दे ? नहीं! अर्थ जहाँ अनर्थ

लाने वाला है वहीं अर्थ परमार्थ भी देने वाला है। जब धन अपनी सुविधा सुख भोग के लिए लगाया जाए तो अनर्थकारी है परन्तु जब भगवान् की, भक्तों की, सेवा में लगाया जाए तो परमार्थकारी है। श्रील रूप गोस्वामी बताते हैं कि मनुष्य जब धन के प्रति आसक्ति न रखता हुआ, भगवान् की सेवा के सम्बन्ध से उसका प्रयोग करता है तो उसके त्याग की आवश्यकता नहीं है।

तोमार धन, तोमार दिये, तोमार हय रई।

"हे प्रभु! आपका धन, आपकी ही सेवा में लगाकर, आपका ही बनकर रहता हूँ।" भगवान् के अर्पित होने पर वह सब प्रकार से मंगलकारी हो जाता है– **कृष्णार्पित कुशलदम्** (पाद्मे)। भगवान् के भक्त उल्लू की सवारी करने वाली, स्वर्ण रेखा रूप में नारायण के हृदय पर विराजमान, रजोगुण–प्रिया, चंचला लक्ष्मी (धन) की इच्छा नहीं करते। वे तो सदैव नारायण की चरण सेवा में नियोजित, सफेद गज की सवारी करने वाली, सत्वगुण–प्रिया, अचला, धर्मयुक्त, हरिसेवा में लगाने वाली महालक्ष्मी (धन) की ही इच्छा करते हैं।

कुछ लोग ऐसी इच्छा करते हैं कि हमारे पास अधिक धन होता तो हम बहुत अच्छी प्रकार से प्रभु की सेवा कर पाते। परन्तु शास्त्र कहते हैं कि कीचड़ में पाँव डालकर, उसे धोने से बेहतर है कि कीचड़ में पाँव डाले ही न जाएँ। यानि धन रूपी कीचड़ को सेवा रूपी पानी से धोने से अच्छा है ये कीच इकट्ठा ही न किया जाए। तब प्रश्न आता है कि धन के बिना सेवा कैसे हो ? सेवा तन से, मन से व धन से होती है। इसमें धन से की गई सेवा अभिमान–युक्त होने के कारण सबसे निम्न मानी जाती है। धनहीनों में धन का अभिमान नहीं होता। दीनता होती है।

दीनेर अधिक दया करे भगवान्।

"दीनों पर भगवान् की विशेष दया रहती है।" दीन जनों की 1 रुपये की सेवा भी भगवान् 1 लाख की तरह ग्रहण करते हैं, तभी तो कुरुक्षेत्र में अपनी एकमात्र संपत्ति–खुरपे का दान करने वाले

माली के दान को भगवान् ने मनों सोने का दान करने वालों से श्रेष्ठ माना।

धनहीन जन, तन से सेवा कर सकते हैं। और मन से सेवा वे तीन प्रकार से कर सकते हैं। पहली है अनुमोदना सेवा। अर्थात् किसी ने भी, जो भी सेवा की, उसमें परम प्रसन्न हो जाना, उसका अनुमोदन करना। इससे आप भी उस सेवा के भागीदार बन जाते हैं, भगवान् की प्रसन्नता के पात्र बन जाते हैं–

आद्रतो वानुमोदितः सद्यः पुनाति

(भा 11.2.12)

दूसरी, मन में वह सेवा करने की इच्छा रखना। जैसे धाम में जाने की इच्छा मात्र से वहाँ जाने का कुछ पुण्य मिल जाता है। क्योंकि भगवान् तो भक्त का भाव ग्रहण करते हैं– **भावग्राही जनार्दनः**।

तीसरा है, मन ही मन उस सेवा का सम्पादन करना। कलियुग में मन से किये पुण्य का फल मिलता है, पाप का नहीं– **मानस पुण्य होय नहि पापा**। जैसे प्रतिष्ठानपुर के ब्राह्मण ने लक्ष्मीनारायण का मन ही मन पूजन व बढ़िया खीर भोग अर्पण कर उनका दर्शन पाया व वैकुण्ठ गमन किया। धन से उत्कृष्ट तन की व उससे श्रेष्ठ सेवा मन की है क्योंकि बिना मन के की गई सेवा से इंसान खुश नहीं होता, भगवान् तो कैसे होंगे ? **वास्तव में भक्त के हृदय में जो प्रेम व प्रीति है, उसी से भगवान् की प्रसन्नता होती है, वस्तु से नहीं – प्रेम्णैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात (पद्यावली 13)**। तभी तो सूरदास जी ने कहा– **दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाई। सबसे ऊँची प्रेम सगाई**। अतः साधक को **'सादा जीवन उच्च विचार'** का आर्दश ले, धन संग्रह व आसक्ति का त्याग करना चाहिए।

कामिनी

कामिनी अर्थात् स्त्री। स्त्री देवताओं की माया का वह प्रबल हथियार है जिससे जीव भगवान् की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। दत्तात्रेयजी कहते हैं–

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां, तद्भावैरजितेन्द्रियः।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्रे पतङ्गवत्॥

(भा 11.8.7)

इन्द्रियों को वश में न रखने वाला पुरुष जब स्त्री को देखता है तो उसके हाव-भाव पर आसक्त हो, परमार्थ मार्ग से गिरकर अपना सर्वनाश उसी प्रकार कर लेता है जैसे पतिंगा अग्नि के रूप पर मोहित हो आग में कूद जाता है और जल मरता है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि तेज गरमी, जलाशयों के जल को सुखा देती है। उसी प्रकार नारी की आसक्ति जप, तप नियम रूपी जलाशय को पूरा सुखा देती है- **जप तप नेम जलाशय झारी। होई ग्रीष्म सोषइ सब नारी**। पुरुरवाजी भी कहते हैं कि स्त्री ने जिसका मन चुरा लिया है उसकी विद्या व्यर्थ है। तप, त्याग, शास्त्राभ्यास से उसे कोई लाभ नहीं है। उसका एकांत सेवन और मौन भी निष्फल है।

जगन्नाथपुरी में युवक भक्त 'छोटा हरिदास' ने 84 वर्षीय भक्ता माधवी देवी से जब चावल भिक्षा ग्रहण की तब श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने छोटा हरिदास का पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया। महाप्रभु हम सबको स्त्री से दूर रहने की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। जगदानंद पण्डित कहते हैं कि यदि आप श्रीमहाप्रभु की प्रीति चाहते हो, उनके कहे अनुसार भक्तिमार्ग में आगे बढ़ना चाहते हो तो छोटा हरिदास की कथा कभी न भूलें-

यदि चाह प्रणय राखिते गौरांगेर सने।
छोटा हरिदासेर कथा थाके येन मने॥

यह आसक्ति स्त्रीलंपटों व स्त्रियों के संग से आ जाती है। श्रीकृष्ण कहते हैं अपना कल्याण चाहने वाले को स्त्री को देखना, स्पर्श करना, वृथा बातचीत या हंसी-मस्खरी करना छोड़ देना चाहिए। **साधक को परस्त्री के प्रति सदा माता का भाव रखना चाहिए- मातृवत परदारेशु**। भक्तिमती नारी सदैव वंदनीय है। परन्तु उससे भी मर्यादा के अनुसार व्यवहार करते हुए दूरी रखनी ही श्रेष्ठ है। शुकदेव

गोस्वामी कहते हैं कि इन्द्रियाँ इतनी बलवान हैं कि वह बड़े-बड़े विद्वानों को भी मोहित कर देती हैं। इसलिए माँ-बहिन-बेटी के साथ भी एक आसन पर अकेले नहीं बैठना चाहिए। तभी तो कहा है-

काजल की कोठरी में, कैसों भी सयानो जाय
काजल की एक रेख, लागी है रे लागी है।

यहाँ तक गृहस्थ के लिए भी अपनी पत्नी में आसक्ति उचित नहीं बताई गई। पत्नी संतान प्राप्ति मात्र के लिए है, भोग विलास के लिए नहीं- **एवं व्यवायः प्रजया न रत्या** (भा 11.5.13)। जैसे आग में घी डालने पर आग बुझती नहीं है बल्कि बढ़ती है। उसी प्रकार स्त्रीसंग से स्त्री आसक्ति बढ़ेगी, घटेगी नहीं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि सद्गृहस्थ, पत्नी-पुत्र-भाई आदि को अपनी नहीं, बल्कि भगवान् के सेवक-सेविकाएं जानता है। सब कुछ भगवान् का मानकर, उनके साथ भगवान् की सेवा में नियुक्त रहता है-**बन्धु दारा सुत सुता तब दासी दास। सेइ त सम्बन्धे सबे आमार प्रयास॥** गलत संग का त्याग करने से और निरंतर भक्तों का संग करने से यह भाव पक्का हो जाता है।

जिस प्रकार पुरुष साधकों को स्त्री आसक्ति से बचना है वैसे ही सब स्त्री साधिकाओं को पुरुषों की आसक्ति से अपनी रक्षा करनी है।

प्रतिष्ठा

जो मनुष्य कांचन व कामिनी रूपी भक्ति बाधा को पार कर गया है उसके लिए भी सूक्ष्म रूप से कार्य करने वाली प्रतिष्ठा, यश मान की इच्छा को दूर करना बड़ा कठिन है। प्रारंभिक अवस्था के साधक में इस प्रकार के मान की आशा होती है कि- **आमि वैष्णव**-मैं तो भक्त हूँ, मैं इतना हरिनाम करता हूँ, मैंने सब विषयों को छोड़ दिया है और ऊँची अवस्था के साधक में ऐसा मान पाने की इच्छा रहती है- मैंने शास्त्रों का अर्थ जान लिया है, मैं इतने

सालों से भजन कर रहा हूँ, मैं भजन में सिद्ध हो गया हूँ और प्रतिष्ठा पाते-पाते अति तो तब हो जाती है जब अपना विशेष सम्मान न होना ही उसे अपमान प्रतीत होता है। जैसे दक्ष प्रजापति को शिवजी का, उसके सम्मान में खड़ा न होना, भयंकर अपमान लगा था। कई महात्मा तो माला न पहनाने व प्रणाम न करने पर अपमानित अनुभव करते हैं। सत्य दैन्य (दीनता) आए बिना इस बाधा को दूर करना असंभव है।

सनातन गोस्वामी पाद कहते हैं कि यह प्रतिष्ठा, विष्ठा (मल) के समान घृणित है। जिस प्रकार से विष्ठा का स्पर्श न ही करना अच्छा है, उसी प्रकार से प्रतिष्ठा रूपी विष्ठा का भी यत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए-

कुर्य्युः प्रतिष्ठा विष्टया यत्नमस्पर्शने वरम्।

श्रील रघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं कि जब तक हृदय में प्रतिष्ठा की इच्छा रूपी चाण्डालिनी उद्दण्ड होकर नृत्य कर रही है तब तक भक्तिपथ पर मार्गदर्शन करने वाले निर्मल साधुओं के प्रति प्रीति कैसे हो सकती है। (मनः शिक्षा 7)।

अतः भक्तों का सदा भाव रहता है- **गुण तोमार समुझई निज दोषा**। यानि जितने भी गुण या अच्छाई हैं वह प्रभु की कृपा है और जितने भी अवगुण व दोष हैं उसका कारण मैं हूँ। भक्त सदैव यश, मान सम्मान का कारण हरिनाम, गुरुजनों व भगवान् को मानता है। जो भी मान सम्मान मिलता है उसका मूल कारण गुरु-वैष्णव-भगवान् को जान उनके ही चरणों में उसे समर्पित कर देता है- **तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा**।

साधारण तौर पर कोई अपने भजन के कठोर नियमों व भजन की अनुभूतियों को सबको बताए, तो उसका पतन हो जाता है जैसे राजा ययाति स्वर्ग से पृथ्वीलोक पर गिर गया था। पतन का कारण है अपनी प्रतिष्ठा। परन्तु यदि कोई भक्त इन सब दिव्य अनुभवों को भगवान् की कृपा, महिमा के रूप में देखे तो यह उसको नीचे

नहीं गिराती बल्कि भजन में और आगे बढ़ा देती है। अवधूत श्री गार्ड साहिब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उन पर की गई अद्भुत कृपाओं (उनके रूप में ट्रेन चलाना, बेमौसम आम पैदा करना, फेल को पास करना, बच्ची के प्राण बचाना, दुर्गियाना मन्दिर सरोवर जल के अंदर रहकर 10-12 घण्टे कालिय नाग लीला का साक्षात् दर्शन करना) का बार-बार बखान करते थे। परन्तु उन्होंने इसे सदा भगवान् की कृपा समझा, अपना चमत्कार नहीं। श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी भी अपने भजन के रहस्य बताकर भी, प्रेम सागर, विरह सागर में गोते लगाते रहते हैं।

(2) संग्रह - परिग्रह से दूर

संग्रह-परिग्रह का अर्थ है सांसारिक वस्तुओं को इकट्ठा करना। सांसारिक सुख की वस्तुओं को इकट्ठा करना मनुष्य का स्वभाव है। लगता तो यह है कि यह सुख-भोग की वस्तु संग्रह करने पर सुख देगी पर वास्तविकता यह है कि उससे अन्त में दुख की ही प्राप्ति होती है। अब एक धन का ही उदाहरण लें। कामनाओं के भोग के लिए मनुष्य अन्याय पूर्वक भी इसको इकट्ठा करता है-

काम भोगार्थमन्यायेनार्थ सञ्चयान्

(गीता 16.12)

धन कमाना तो कठिन है ही, फिर उसे संभालने में, बढ़ाने में, खर्च करने में निरंतर भय, चिंता व परिश्रम है। फिर 99 के फेर में पड़ा मनुष्य अपने कल्याण के बारे में तो कुछ समझता ही नहीं है और यदि कोई इसे लूट ले या घाटा हो जाय तो मनुष्य को यह भयंकर दुख दे जाता है। यही बात बाकी प्रिय वस्तुओं के संग्रह पर भी खरी उतरती है-

परिग्रहो हि दुखाय, यद यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनंतं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः।

(भा. 11.9.1)

"मनुष्य को जो वस्तुएँ अत्यन्त प्रिय लगती हैं, उन्हें इकट्ठा करना ही उसके दुख का कारण है। जो बुद्धिमान मनुष्य यह समझ लेता है, वह अकिञ्चन भाव से रहता है, यानि शरीर तो क्या मन से भी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता, वह अनंत सुख का भागीदार बन जाता है, भगवत्–प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है।"

दतात्रेय जी अपने 18वें गुरु कुकुर पक्षी का उदाहरण देते हैं। एक कुकुर पक्षी चोंच में मांस का टुकड़ा लिए जा रहा था। तभी एक बलवान पक्षी उस टुकड़े को छीनने के लिए कुकुर पक्षी पर चोंच से प्रहार करने लगा। मॉस के टुकड़े का त्याग करने पर ही उसे सुख मिला। इसी प्रकार मधुमक्खी भी अपने शहद के संग्रह के कारण ही जीवन से हाथ धो बैठती है।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस् तु महाफला (मनु संहिता 5.56)। सुख भोग की वस्तुओं के संग्रह की तो मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है परन्तु यदि कोई इसको छोड़ता है तो महाफल की प्राप्ति करता है। इस संग्रह–परिग्रह का त्याग करने वाला निष्किंचन या अकिंचन कहलाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपाद कहते हैं कि जब तक जीव भोगोन्मुख रहता है तब तक प्रेम (भक्ति) का आस्वादन करना उसके लिए असंभव है। जिस प्रकार शहद से भरी काँच की बोतल पर बैठा भौंरा, काँच को भेदकर शहद का रस कभी नहीं पी सकता, उसी प्रकार निष्किंचन हुए बिना ब्रजरस (भक्तिरस) का आस्वादन कभी नहीं हो सकता है।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँकि रहि सकै, रवि रजनी इक ठाम॥

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि संग्रह–परिग्रह से रहित अकिंचन, संयमी, शांत, समदर्शी व संतोषी के लिए आकाश का कोना–कोना आनंद से भरा है। रुक्मिणीजी से तो भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कह दिया कि हम सदा के अकिंचन हैं और अकिंचन भक्तों से ही हम प्रेम करते हैं और वे हमारे से प्रेम करते हैं– **निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचन–जनप्रियाः** (भा 10.60.14)। फिर भगवान् दर्शन

भी अकिंचन भक्तों को ही देते हैं–**त्वामकिंचन- गोचरम्** (भा 1.8. 26)।

तब यह प्रश्न उठता है कि जिसके पास पहले से ही बहुत वस्तुओं का संग्रह है वह क्या उनको नष्ट कर दे ? भगवान् कृष्ण उद्धवजी से कहते हैं कि संसार में जो वस्तु अपने को सबसे प्रिय, सबसे अभीष्ट जान पड़े, वह मुझे समर्पित कर दे। ऐसा करने से वह अनंत फल देने वाली हो जाती है (भा 11.11.41)। वह साधक प्रिय वस्तुऐं भगवान् की सेवा में लगाए और आगे से संग्रह की आदत को कम करे। और जिसकी संसार में आसक्ति समाप्त हो गई है वह सारे धन–वैभव–संपत्ति को बिना विचार किए छोड़कर निकल जाएगा और उन्मुक्त पक्षी की तरह वृन्दावन में विचरण करेगा–

बहवः इव विहंगा भिक्षुचर्या चरन्ति

(भा 10.47.7)

जैसे राजा भरत, रघुनाथदास गोस्वामी, नरोत्तम ठाकुर।

इसलिए शास्त्रों में जहाँ भी भक्त के लक्षण बताए गए हैं, अकिंचनता का वर्णन किया गया है। महाप्रभु ने कहा–**मृदु शुचि अकिंचन (चै.च 22/74)** तुलसीदास जी ने कहा–

तेहि ते कहहि संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥

(मानस 1.161.3)

भागवत के अनुसार जितने से पेट भर जाए उससे अधिक को अपना मानने वाला चोर है और दण्ड का पात्र है– **स स्तेनो दण्डमर्हति**। इस दृष्टि से मनुष्य को संग्रह–परिग्रह छोड़ना चाहिए और वैसे भी यह जीवन कमल के पत्ते पर पड़ी जल की बूंद के समान अस्थायी है– **कमलदल–जल, जीवन टलमल**। इस जीवन की समाप्ति के साथ सारे संग्रह भी समाप्त हो जाऐंगे तो पहले परित्याग कर अनंत सुख के भागीदार क्यों न बना जाए। धन, मकान, गाड़ी, गहने संग्रह करने में लगा मनुष्य, इन्हीं में उलझा रहेगा। भजन के लिए तो उसे समय मिल ही नहीं पाएगा। अतः सब भोग की

वस्तुओं का संग्रह छोड़कर, केवल और केवल, नाम धन का संग्रह करना चाहिए–

कबीरा सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोइ।
धनवंता सोई जानिये, रामधनी जो होई॥

(3) 'तृणादपि सुनीचेन' की मूर्ति

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरि॥

(शिक्षाष्टक 3)

साधक स्वयं को तिनके से भी अधिक हीन समझकर, वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनकर, स्वयं अभिमान से रहित होकर, दूसरों को उचित सम्मान देकर, सदा हरिनाम कीर्तन करता रहेगा।

भगवत्–दर्शन के इच्छुक को इस श्लोक में वर्णित गुणों से युक्त होना चाहिए।

तृणादपि सुनीचेन– सबके पैरों के नीचे कुचले जाने वाले तिनके से भी अधिक अपने को दीन–हीन समझना। **दैन्य प्रियत्वाच्च** – भगवान् को दीनता अति प्रिय है। अपने पापों व अपराधों के फलस्वरूप जन्म–मरण के चक्र में फंसा मैं, आपकी अहैतुकी कृपा से दुर्लभ मानव जन्म लाभ कर पाया हूँ। साधुसंग से भजन की महिमा जानकर भी मैं भोगों का त्याग कर भजन में नहीं लग पा रहा हूँ। इस प्रकार का विचार साधक का बना रहना चाहिए। सूरदास जी कहते हैं–

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसौ नमक हरामी।
भरि भरि उदर विषयन कों धायो, जैसे सूकर–ग्रामी।
हरिजन छांड़ि, हरि विमुखन की, निसदिन करत गुलामी॥

इसी प्रकार से रूप गोस्वामी जी दीनता से कहते हैं– हे प्रभु! मेरे जैसा पापी और अपराधी कोई नहीं है। मैं कौन–सा मुख लेकर आपके सामने आऊँ। और श्रील कृष्णदास कविराज कहते हैं–

पुरीशीर कीट हय मुई से लघिष्ट

"मैं तो मल के कीड़े से भी ज्यादा तुच्छ हूँ।" वास्तव में जितनी भक्ति बढ़ती है साधक में उतनी दीनता आ जाती है। सूखा पेड़ झुकता नहीं है परन्तु फलवान वृक्ष झुक जाते हैं। वैसे ही गुणी महात्मा झुक जाते हैं, दीन हो जाते हैं– **नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनः।**

जिसके पास दीनता का पात्र (बर्तन) नहीं है वह साधु व भगवान् की कृपा को रखेगा कहाँ ? विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद कहते हैं कि वर्षा (भगवत–कृपा) सब पर समान रूप से बरसती है पर जल पहाड़ (अभिमानी जनों) पर नहीं रुकता, गड्ढे में (दीन जनों पर) आकर ठहरता है। अतः यत्नपूर्वक साधक को '**भक्ति के भूषण**' – दीनता को धारण करना चाहिए।

तरोरपि सहिष्णुना– वृक्ष सहनशीलता की मूर्ति है। वह अपने काटने वाले को भी फल व छाया देता है। स्वयं धूप, सर्दी, वर्षा सहन करता हुआ भी सबकी धूप व वर्षा से रक्षा करता है। साधक को ऐसा सहनशील, सहिष्णु बनना चाहिए। सहनशील न होने पर साधक, भक्तिमार्ग की बाधाओं से परेशान होकर इसे छोड़ देगा। जड़भरत को लोगों ने कितना सताया, कोई उस पर थूक देता, कोई मूत्र ही कर देता परन्तु वह सब सहन कर लेता। चंदन को भी बार–बार घिसने पर ही उसकी सुगंध फैलती है। गन्ने को भी पेरने पर ही उसमें से रस निकलता है। सोने को अग्नि में बार–बार तपाने पर ही उसका सुंदर रूप प्रकट होता है–

'दग्धं–दग्धं पुनरपि पुनरः कांचनं कांतरूपः।'

इसी प्रकार भगवान् के भक्त भी सब प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन कर जाते हैं, उनसे प्रभावित नहीं होते। इससे उनकी भक्ति पूर्ण रूप से मार्जित होती है और जगत को प्रकाशित करती है। इस प्रकार सहनशील होने से ही भजन हो सकेगा।

अमानिना– साधक को अभिमान से रहित होना चाहिए। इस शरीर के सम्बन्ध से होने वाले अभिमान क्षणिक हैं, झूठे हैं। यह शरीर ही हमेशा रहने वाला नहीं है तब इसके सम्बन्ध से होने वाले अभिमान–धन–वैभव, बल, जन्म, सुंदरता, जाति, कला, विद्या, बुद्धि, तप कहाँ तक सत्य हो सकते हैं ? सत्य अभिमान तो आत्मा का अभिमान है और वह एक ही है–

अस अभिमान जाई जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

मानस 3.11

कृष्णादेव समुन्धितं जगदिदं, कृष्णस्य दासोऽस्म्यहं॥

(मुकुन्द माला स्तोत्र 50)

मैं भगवान् का सेवक हूँ और वह मेरे स्वामी हैं। कोई इसे मानता है और कोई नहीं मानता है। इस सत्य अभिमान को जो मानता है उसका कल्याण हो जाता है और जो नहीं मानता, इसी पाप से उसका नाश हो जाता है–

केह माने केह न माने, सब तार दास।
ये न माने, तार हय, सेइ पापे नाश॥

(चै.च. 1.6.83)

झूठे अभिमान का त्याग कर सही अभिमान में रहने पर व सम्मान पाने की इच्छा से रहित होने पर ही साधक निरंतर हरिनाम कर सकेगा।

मानदेन– भक्त सबको यथा–योग्य, उचित सम्मान देगा। साथ ही वह जगत के किसी भी प्राणी, यहाँ तक कि चींटी, पतिंगा व आततायी मच्छर से भी द्वेष या हिंसा नहीं करेगा। भगवान् कहते हैं कि अनंत ब्रह्माण्डों में जितने भी जीव हैं सब मेरे दास हैं, जो उनकी हिंसा करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है–

अनंत ब्रह्माण्डे जत, सब मोर दास। ऐतेके ये परहिंसे सेई जाय नाश॥

(चै भा. 2.19.210)

कनिष्ठे आदर, मध्यमे प्रणति, उत्तमे शुश्रुषा जानि। साधक एक बार भी कृष्ण नाम बोलने वाले को मन ही मन प्रणाम करेगा,

गुरु–आश्रय में भजन करने वाले को दण्डवत् प्रणाम करेगा और निंदा आदि दोषों से मुक्त महापुरुषों को केवल प्रणाम ही नहीं करेगा, बल्कि सब प्रकार से उनकी सेवा करेगा (उपदेशामृत 5)। इस प्रकार के उचित आचरण से ही भक्त अपराधों से बचता हुआ, हरिनाम कर पाएगा।

(4) सब जीवों में भगवान् का दर्शन करें

भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

(गी. 15/15)

अर्थात् मैं ही सब जीवों के हृदय में ईश्वर रूप से विराजमान हूँ। श्रीमद्भागवत में भी वे उद्धवजी को भक्ति के श्रेष्ठ साधन के रूप में समस्त प्राणियों में ईश्वर को देखना ही बताते हैं– **सर्वभूतेषु मन्मतिः (भा 11/19/21)।**

अतः हर प्राणी में भगवान् का वास है। किसी भी प्राणि को दुख देने वाला, सताने–मारने वाला, भगवान् को ही सताता व दुख देता है। उसके द्वारा की गई भगवान् की पूजा तो बेकार हो ही जाती है, उसको भीष्म दुख भी सहन करना पड़ता है–

पूजाओ विफल जाये, आर दुख मरे।

हरे वृक्षों को काटना भी पाप है क्योंकि उनमें भी भगवान् का वास है। इस सृष्टि में भक्त भगवान् के अति प्रिय हैं। उनकी निंदा मात्र ही सौ जीवों को सताने के बराबर है, अतः सौ गुणा अधिक पाप लगता है–

तार शत गुण हय वैष्णव निन्दिले।

सब जीवों में भगवद्–दर्शन का हमें क्या लाभ है ? सब जीवों में भगवान् विराजमान हैं, यह जानने पर हम सबका सम्मान करेंगे। किसी के भी प्रति बुरी भावना, द्वेष, ईर्ष्या हमारे हृदय में नहीं आएगी–

निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं विरोध।

किसी भी जीव का जब हमसे अपराध नहीं होगा तो भगवद्-प्राप्ति का मार्ग अति सुगम हो जाएगा॥

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
वंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि॥

(मानस बालकण्ड)

(5) सब काम भगवान् का समझ कर करता है

संसार में मनुष्य अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के कर्म करता है। अच्छे कर्मों का फल पुण्य व बुरे कर्मों का फल पाप होता है। यह पाप ही दुख के रूप में व पुण्य ही सुख के रूप में मनुष्य को मिलता रहता है। यहाँ मनुष्य जो भी कर्म करता है, अपने व अपनों के लिए करता है। अतः उसका फल भी उसे ही भोगना पड़ता है। अब यदि वह कर्म भगवान् के लिए करे, तो पाप-पुण्य का सारा बोझ भगवान् को जाता है। भगवान् समस्त लोकों के, ईश्वरों के भी ईश्वर **(सर्वलोकमहेश्वर)** व समस्त यज्ञ व तपस्याओं को भोगने वाले **(भोक्तारं यज्ञतपसां)** होने से पाप-पुण्य से परे हैं, इस के प्रभाव से रहित हैं। अतः यदि यह सब कर्म, मनुष्य भगवान् के लिए करता है या भगवान् का समझ कर करता है तो उसे कर्मों के बंधन में फँसना नहीं पड़ता।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि भगवान् के लिए किए गए कामना-रहित कर्म के सिवा, सब प्रकार के कर्मों से मनुष्य को बँधना पड़ता है, अर्थात् पाप-पुण्य का फल भोगना पड़ता है। इसलिए अर्जुन तुम फल की इच्छा से रहित हो, भगवान् के निमित्त, ठीक प्रकार से कर्म करो। (गीता ३.९)

परन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि शास्त्र-विरोधी पाप-कर्म भगवान् के अर्पित नहीं हो सकते **(कामिनाम तु सर्वथैव न दुष्कर्मार्पणम्-जीव गोस्वामी)**। तो ऐसा साधक जिससे पाप कर्म अभी नहीं छूटते वह क्या करे! वह पाप कर्मों को छोड़ सब कर्म भगवान् का समझकर (भगवान् के अर्पित), करता रहे। बहुत शीघ्र

ही उसकी पाप–कर्मों की इच्छा छूट जाएगी और वह धर्मात्मा बन जाएगा– **क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, गीता 9.31।**

श्रीधर स्वामी बताते हैं कि भक्त केवल शास्त्र–विहित कर्म ही भगवान् को अर्पित नहीं करता बल्कि साधारण व्यावहारिक क्रियाएं (चलना, बैठना, सोना आदि) भी उन्हें अर्पित करता है। कर्मी (कर्मयोगी) तो ये सब कर्म, करने के बाद अर्पित करते हैं ताकि उनसे कर्म बंधन न हो परन्तु अनन्य भक्त उन्हें भगवान् के सुख के लिए, प्रीति के लिए, करने से पहले अर्पित करता है– **(भगवत्यर्पितैव क्रियते–विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद)**। अर्थात् पाप से बचने के लिए भगवान् को भोजन का भोग नहीं लगाता बल्कि रसोई में भोजन बनाता ही भगवान् के सुख के लिए है।

श्रीमद्भागवत के नव–योगेश्वर संवाद में योगेश्वर श्रीकविजी द्वारा भागवत–धर्म भगवद् प्राप्ति का सुगम साधन बताया गया है जिसपर चलने से मनुष्य सारे विघ्नों को आसानी से पार कर लेता है व इस मार्ग पर नेत्र बंद करके दौड़ने पर भी न कभी गिरता है व न ही फल से वंचित होता है। वहाँ उन्होंने इसी प्रकार 'सब कर्म भगवान् के समझ कर करने' को भगवान् की प्राप्ति का आसान तरीका बताया है–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै, नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

(भा 11/2/36)

साधक शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियों, बुद्धि, अहंकार से अनेक जन्मों की आदतों से स्वभाव वश जो–जो करे, वह सब परमपुरुष भगवान् नारायण के लिए ही है– इस भाव से उन्हें समर्पण कर दे।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा ये सब शास्त्रों का सार दूसरी प्रार्थना के रूप में हमें दिया गया है, जिसके रोज बोलने से हम भागवत–धर्म का पालन करते हुए, कर्म बंधन से मुक्त होते हुए, भगवान् के दर्शन प्राप्त करने के पात्र बनते जा रहे हैं।

(6) किसी के भी गुण-दोष नहीं देखता

प्रत्येक मनुष्य में कुछ गुण व कुछ दोष अवश्य होते हैं। भगवत्-प्राप्त संतों को छोड़कर कोई भी पूर्ण रूप से दोषों से रहित नहीं हो सकता। और कोई भी मनुष्य सृष्टि में ऐसा नहीं है जिसमें कोई गुण न हो।

हम जिसके गुण या दोष का चिंतन करते हैं, वह गुण व दोष हमारे में आ जाते हैं। अतः शास्त्रों में अनेक स्थानों पर गुण-दोष चिन्तन को छोड़ने को कहा गया है- **अन्यस्य दोष-गुण चिंतनम् आशु मुक्त्वा (गोकर्ण)**। भगवान् कृष्ण ने उद्धवजी से तो यहाँ तक कह दिया कि गुण-दोष पर दृष्टि जाना ही सबसे बड़ा दोष है- **गुणदोष दृशि दोषो (भा 11.19.45)**। हम लोगों की दोष वर्णन की इतनी आदत बन चुकी है कि अगर हम किसी के गुणों की बात करना आरम्भ करेंगे, तो भी शीघ्र ही उसके दोषों का गान करने पर आ जाएेंगे। इसलिए गुण-दोष दोनों का ही चिंतन निषेध किया गया है।

परन्तु यह भी विचारणीय है कि समस्त धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर गुणों व दोषों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। जब हमें गुण दोष पर दृष्टि करनी ही नहीं तब जानने का क्या अर्थ है? इसका उत्तर यह है कि गुण-दोष इसलिए बताए गए हैं ताकि हम जब तक निर्गुण अवस्था तक नहीं आ जाते, गुण-दोष देखना छोड़ नहीं देते, तब तक हम अपने गुण-दोषों को परख सकें व दोषों को त्यागकर गुणों को आत्मसात कर सकें। निश्चित रूप से गुण, दोषों से श्रेष्ठ हैं। तुलसीदास जी कहते हैं-

तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
अस विवेक जब देहि विधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥

रामचरितमानस 1.6.1-2

"यहाँ कुछ गुण व दोषों का वर्णन किया है क्योंकि बिना पहचाने गुणों का संग्रह व दोषों का त्याग नहीं किया जा सकता है।

विधाता जब इस प्रकार का (हंस का सा) विवेक देते हैं तब ही मनुष्य का मन दोषों को छोड़कर गुणों में अनुरक्त होता है।"

वास्तविकता यह है कि संसार के विषयी प्राणी प्रमुख रूप से अपने नहीं, बल्कि दूसरों के दोष देखने में लगे रहते हैं व शेषनाग की तरह हजारों मुखों से उनके दोषों का वर्णन करते रहते हैं **(सहस वदन बरनई पर दोषा)**। जिस दोष का हम बार–बार चिंतन करेंगे उसको बोलेगें भी और यही दोषों का वर्णन श्रीधर–स्वामी के अनुसार निंदा है– **निन्दनं दोष कीर्तनं**। जिस प्रकार से सूअर मल खाकर गाँव को स्वच्छ रखता है उसी प्रकार निंदक साधु के बचे–खुचे दोषों (पापों) को खाकर उसे शुद्ध कर देता है– **शुद्ध्यन्ति शूकराः ग्रामं साधुनः शुद्ध्यन्ति निन्दकाः**।

दोष चर्चा करने पर दोष शीघ्र हमारे में आ जाते हैं परन्तु गुण वर्णन करने पर गुण धीरे–धीरे ही हमारे स्वभाव में आते हैं। कैसे ? जैसे बड़ा पत्थर अगर पहाड़ पर चढ़ाना हो तो कितना अधिक समय व परिश्रम लगेगा पर चोटी से अगर उसे गिराना हो, तो एक धक्का ही काफी है।

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।

कलि के प्रभाव से मनुष्य का मन पापों में ऐसा रमता है जैसे जल में मछली। अतः दुर्गुण शीघ्र आते हैं व सद्‌गुण बहुत प्रयास से।

जो भक्ति के पथ पर अभी नया–नया है (कनिष्ठ वैष्णव), उसमें भी दोष–देखने की ही प्रवृत्ति विशेष होती है। जो भक्त, भक्ति की मध्यमावस्था (मध्यम वैष्णव) तक आ जाता है वह गुण व दोष दोनों को देखना व परखना जानता है व उसके अनुसार व्यवहार करता है। और भक्ति की ऊँची अवस्था पर पहुँचा भक्त (उत्तम वैष्णव) केवल गुण ही गुण देखता है। और जो परमहंस, अवधूत, भगवत्–दर्शन प्राप्त संत (सिद्ध–वैष्णव) होता है, वह दूसरों के दोषों को भी गुण रूप में देखता है। ऐसे संत पूर्ण रूप से

समदृष्टि वाले होते हैं, अर्थात् सब जीवों व प्राणियों में भगवद् दर्शन करते हैं। जैसे वंशीदास बाबाजी महाराज के नवद्वीप स्थित कुटी से जब चोर बर्तन चोरी करके ले गए तो वे खिल-खिलाकर हँसते हुए कहते हैं- एक चोर देता है, एक चोर लेता है। अर्थात् वह चोर का दोष नहीं देख रहे हैं और कह रहे हैं कि देने वाले भी कृष्ण व लेने वाले भी कृष्ण ही हैं।

गुण-दोष व्यवस्था अधिकार के अनुसार होती है वस्तु के अनुसार नहीं अर्थात् अपने अधिकार के अनुसार कार्य करना गुण है व अधिकार से बाहर कार्य दोष है (भा 11/21/2)। जैसे गृहस्थी अगर अपनी स्त्री के साथ रहता है तो गुण है और संन्यासी यदि स्त्री के साथ रहे तो दोष। वैश्य यदि दूध बेचे तो गुण व ब्राह्मण यदि बेचे तो दोष। किसी साधारण मनुष्य से कोई गलत कार्य हो जाए तो 'पाप' और यदि शुद्ध भक्त से कोई गलत कार्य बन जाए तो 'कुछ नहीं'- **न हन्ति न निबध्यते (गीता 18.17)**। भगवान् कहते हैं मेरे परम प्रेमी ऐकान्तिक भक्तों का गुण-दोषों से उत्पन्न होने वाले पाप-पुण्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता, वे पाप-पुण्य से अछूते रहते हैं-

न मय्येकान्त भक्तानां, गुणदोषोद्भवा गुणाः

(भा 11.20.36)

मनुष्य अधिकार का विचार किए बिना साधारण मनुष्य व वैष्णव को एक तराजू पर तोलता है और वैष्णव दोष दर्शन व वर्णन कर अपना सर्वनाश कर बैठता है-

ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्त पुण्य रूपिणम्।
शतजन्मर्ज्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम्।
ते पतन्ति महाघोरे कुम्भी पाके भयानके।
भक्षिताः कीटसंघेन यावद् चन्द्र दिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

भगवान् हृषीकेश के पुण्यशाली भक्तों की निंदा करने वाला, अपने सौ जन्मों में अर्जित पुण्यों का नाश कर बैठता है। इतना ही

नहीं, मरने पर वह भयानक कुम्भीपाक नरक में सूर्य व चन्द्र की आयु तक अति भीषण कीड़ों द्वारा खाया जाता है।

अतः साधक किसी भी अवस्था का हो, उसे दूसरों के गुण–दोष देखने से बचने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। गुण–दोष देखने की सार्थकता इसी में है कि अगर **दूसरे में कुछ दिखे तो केवल गुण और अपने में कुछ दिखे तो केवल दोष**!

(7) संतोषी

संतुष्टस्य निरीहस्य, स्वात्मारामस्य यत् सुखम्।
कुतस्तत् कामलोभेन, धावतोऽर्थेहया दिशः॥

(भा 7.15.16)

"नारद जी कहते हैं– जितना मिल जाए उतने में संतोष रखने वाला, जीविका के लिए अधिक प्रयास न करने वाले, भगवान् के सम्बन्ध से युक्त हो कार्य करने वाले को, जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह उस मनुष्य को भला कैसे मिल सकता है जो कामना और लोभ से धन के लिए हाय–हाय करता हुआ इधर–उधर दौड़ता फिरता है।"

संतोषी सदा सुखी। इस कहावत को लोग जानते व कहते तो हैं पर इसे जीवन में उतारते नहीं हैं। आज के समय में हर मनुष्य एक व्याधि, रोग, से पीड़ित है। वह रोग है असंतोष व तृष्णा का। जिसके पास सौ हैं वह हजार चाहता है और हजार वाला लाख। लाख वाला करोड़ और करोड़ वाला अरब चाहता है। इस असंतोष का कोई अंत नहीं है। मनुष्य तृष्णा को पूर्ण करता–करता बूढ़ा हो जाता है परन्तु तृष्णा बूढ़ी नहीं होती– **तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णः**। जब तक मनुष्य संतोषी नहीं होता, कामना व इच्छा का अंत नहीं हो सकता और कामनाओं के रहते हुए मनुष्य को स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती–

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाही॥

(रा.च.मानस 9.90)

भगवान् श्रीराम ने अयोध्यावासियों को कहा, "कहो तो भक्ति-मार्ग में कौन सा परिश्रम है ? केवल सरल स्वभाव हो, मन में कपट न हो और जो मिल जाए उस में संतोष रहे।"

श्रीमद्भगवद्गीता की अपनी टीका में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रश्न करते हैं कि भक्त का निर्वाह कैसे होता है ? उसके उत्तर में वह कहते हैं- **संतुष्टः (गीता 12/14)**। अर्थात् भक्त भाग्य से प्राप्त या बहुत थोड़े यत्न से प्राप्त वस्तु से ही संतुष्ट रहते हैं क्योंकि वह भक्ति के विषय में सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।

अगर कोई यह प्रश्न करें कि कोई व्यक्ति संतोषी न हो व अधिक वस्तुएं संग्रह करें, तो इसमें हानि ही क्या है ? भक्त प्रह्लाद बताते हैं कि जैसे बिना प्रयास हमें दुख मिलता है वैसे ही बिना प्रयास के सुख भी मिलेगा ही। हम सुख-भोगों का संग्रह अधिक करने लगेंगे तो हमारे क्षणभंगुर जीवन का सारा बहुमूल्य समय इसी में नष्ट हो जाएगा और हम भगवान् मुकुन्द के चरणारविन्द की प्राप्ति से वंचित रह जाऐंगे। इसलिए संतोष धारण करने पर ही भजन संभव होगा। संतोष रूपी तलवार और वैराग्य रूपी ढाल ही हमारे इस संसार-युद्ध में सहायक होगी- **विरति चर्म संतोष कृपाना।**

भगवान् कृष्ण संतोष-रहित मनुष्य को 'गरीब' (दरिद्र) कहते हैं- **दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः (भा 11/19/44)**। धर्मशास्त्रों में यहाँ तक कह दिया गया कि जिसकी जितनी बड़ी इच्छा, असंतोष है, वह उतना ही गरीब है। जिस दिन हमें संतोष रूपी धन की प्राप्ति हो गई, उस दिन हमें गाड़ी, मकान, जमीन, मोती, हीरे, रुपये सब धूल के समान प्रतीत होंगे-

गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

सांसारिक सुखों की प्राप्ति में तो जो मिल जाए उसमें ही संतोष करना है परन्तु भगवान् के भजन में, नाम-जप में, भक्त-भगवान् सेवा में, श्रवण-कीर्तन-स्मरण में कभी संतोष नहीं करना है, सदा असंतोषी ही रहना है।

(8) फलश्रुति

यह सात प्रकार के आचरण जिस भक्त में दृष्टिगोचर होते हैं छाया की तरह भगवान् उसके पीछे रहते हैं– **अनुव्रजाम्यहं नित्यं (भा 11.14.16)**। भगवान् ऐसे भक्त को स्वप्न में आदेश देते रहते हैं। यहाँ तक कि भगवान् उसकी आज्ञा का पालन भी करते हैं– **भगवान् भक्त भक्तिमान (भा 10.86.59)**।

हरिनाम–निष्ठ, इन सात आचरणों से युक्त भक्त को शीघ्र ही भगवान् प्रकट होकर दर्शन देते हैं–

संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान।

(नारद भक्ति सूत्र 80)

अतः भक्तों को अपना स्वभाव इस प्रकार का बनाने का प्रयास करना चाहिए।

ऐसे भक्तों को निश्चित रूप से अंत समय में भगवान् कृष्ण स्वयं लेने आते हैं। वेदान्त सूत्र में कहा गया है–

विशेषं च दर्शयति।

(वे. सू. 4/8/16)

"परम भागवतों की भगवद् प्राप्ति की भी विशेषता को श्रुतियाँ बताती हैं।"

नयामि परमं स्थानमर्च्चिरादि गतिं विना।
गरुड स्कन्धमारोप्य यथेच्छमनिवारितः।

(वराह पुराण)

"अर्च्चिरादि गति के बिना ही, मैं अपने निरपेक्ष भक्तों को गरुड़ के स्कन्ध पर बिठा कर, इच्छागति से अपने परम धाम में उपस्थित कराता हूँ।"

इसलिए इस प्रकार के आचरण से युक्त भक्तों को वैकुण्ठ या गोलोक धाम की प्राप्ति होती है। इस में कोई संशय नहीं है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

नाम संकीर्तन

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः॥१॥

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।
गिरिधारी गोपीनाथ मदनमोहन॥२॥

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द श्रीअद्वैत सीता।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता॥३॥

जय रूप सनातन भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास-रघुनाथ॥४॥

एइ छय-गोसाञिर करि चरण-वन्दन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट-पूरण॥५॥

एह छय-गोसाञि याँर-मुञि ताँर दास।
ताँ' सबार पदरेणु मोर पञ्च-ग्रास॥६॥

ताँदेर चरण सेवि भक्तसने वास।
जनमे-जनमे हय एइ अभिलाषा॥७॥

एइ छय गोसाञि जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण-नित्यलीला करिला प्रकाश॥८॥

आनन्दे बलह हरि, भज वृन्दावन।
श्रीगुरु-वैष्णव-पदे मजाइया मन॥९॥

श्रीगुरु-वैष्णव-पादपद्म करि आश।
नाम-संकीर्त्तन कहे नरोत्तमदास॥१०॥

श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग

(अहैतुकी भक्ति हृदये जागे अनुक्षणे)

प्रस्तुति : अनिरुद्ध दास अधिकारी

गौर पूर्णिमा : 16 मार्च 2014

सबसे पहले मैं अपने श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णु पाद परमहंस 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी, सभी वैष्णवों, वृन्दादेवी तथा भगवान् श्रीश्री राधागोविन्दजी को स्मरण करता हूँ और उन्हें कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। इन चारों को स्मरण करने से सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं और हृदय में अहैतुकी भक्ति जागृत होती है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' नामक इन ग्रंथों में मेरे श्रीगुरुदेव जी की वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रंथों का नाम भी श्रीगुरुदेव ने ही मुझे बताया था और इस लेख में, मैं जो कुछ भी वर्णन करूँगा, वह उनकी प्रेरणा से ही होगा। जो कोई भी इन ग्रंथों में लिखी बातों पर श्रद्धा एवं विश्वास करेगा, इनमें बताये गये मार्ग पर चलेगा, इसमें बताये गये क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा, उसे इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति होगी। उस पर भगवद्-कृपा बरसेगी। इन ग्रंथों के शीर्षक को सार्थक करने के लिये ही, मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझे यह लेख लिखने की प्रेरणा की है। सभी भक्तजनों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे इन ग्रंथों में लिखी किसी भी बात पर सन्देह न करें। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ कि संशय करने से अमंगल होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है-

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

(गीता 4.40)

"जो मूर्ख हैं तथा जिनकी शास्त्रों में श्रद्धा नहीं है, जो शास्त्रों में संदेह करते हैं, वे नीचे गिर जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को न इस लोक में और न ही परलोक में सुख मिलता है।"

देखो! मैं तो सबका मंगल चाहता हूँ। मुझे भगवान् ने इसीलिये यहाँ भेजा है कि मैं सबको हरिनाम कराऊँ। मैं चाहता हूँ कि जिस **श्रीकृष्ण-प्रेम** की प्राप्ति मुझे हुई है, वह आपको भी हो। इस लेख में कई बातें ऐसी हैं जिनका जिक्र करना मैं इसलिये आवश्यक समझता हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। मेरे गुरुदेव ने मुझे कहा कि कुछ भी मत छुपाओ। सब कुछ बता दो। दूसरा कारण यह है कि इससे भक्तों को प्रेरणा मिलेगी, उनका मार्गदर्शन होगा और वे मुझ में श्रद्धा एवं विश्वास करेंगे। इन बातों को मैं अपने स्वार्थ के लिये नहीं लिख रहा हूँ। मुझे न तो प्रतिष्ठा की चाह है, न धन की और न ही मैं किसी उपाधि का इच्छुक हूँ। मैं तो एक छोटे से गाँव में रहने वाला, एक साधारण व्यक्ति हूँ। मुझमें कोई योग्यता भी नहीं है। जो कुछ भी है, मेरे श्रीगुरुदेव की कृपा है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

आज से लगभग 84 वर्ष पूर्व, 23 अक्टूबर सन् 1930 को मेरा जन्म हुआ था। वह शरद-पूर्णिमा की रात थी। समय था लगभग सवा दस बजे। शरद-पूर्णिमा यानि भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला की रात। आज से लगभग 5232 वर्ष पहले, शरद्-पूर्णिमा की इसी रात में, भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसी मधुर बंसी बजाई थी जिसे सुनकर गोपियों की विचित्र गति हो गई थी। सारे विश्व को मोह लेने वाले, मदनमोहन ने, अपनी बाँसुरी पर कामबीज 'क्लीं' की मधुर तान छेड़कर, ब्रजसुंदरियों के प्राण, मन और आत्माओं का अपहरण कर लिया था। अपने प्यारे श्यामसुंदर की विरह-वेदना में, विरह-अग्नि में, उन गोपियों के अशुभ संस्कार जलकर भस्म हो

गये थे और भगवान् श्रीकृष्ण उनके सामने प्रकट हुये थे। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि इसका मेरे जीवन से विशेष संबंध है।

सन् 1954 में, मैं राजस्थान के कोटा शहर में कार्यरत था। वहीं पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनकर, मैंने छः महीने में अठारह लाख 'कृष्णमंत्र' (गोपाल मंत्र) का जाप किया जिससे मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला के दर्शन हुये और भगवान् श्री कृष्ण ने मुझे हरे रंग की साड़ी पहनाई, मेरा श्रृंगार किया और मुझे रासलीला में ले गये। वहां उन्होंने मुझे नाम दिया 'ओम अलि'। वहां मैंने अपने उस दिव्य स्वरूप के दर्शन किये और श्रीमती राधा रानी तथा असंख्य गोपियों के दर्शन मुझे हुये। जिस प्रकार ब्रजसुंदरियों को शरद–पूर्णिमा की रात में दर्शन हुए थे, वैसे ही दर्शन मुझे हुए और मेरा उस रात में जन्म लेना सार्थक हुआ। मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हुआ। यह दर्शन कृष्ण मंत्र के पुरश्चरण का फल था। भक्तवत्सल भगवान् ने मुझ अधम पर अहैतुकी कृपा की। ऐसे परमदयालु भगवान् श्रीकृष्ण को मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ।

एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि 'कृष्ण–मंत्र' (गोपाल मंत्र) जाप करना बहुत कठिन है। जरा सी भूल भी हो गई तो आदमी पागल हो सकता है। कई भक्तों ने मेरी नकल करने की कोशिश की है, पर वे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके। उनका जप पूरा ही नहीं हुआ और एक तो पागल हो गये। इस मंत्र का पुरश्चरण करते हुये मन में काम की गंध भी नहीं होनी चाहिये और नियमों का दृढ़ता से पालन करना पड़ता है। **इसलिये मेरे गुरुदेव ने, मुझे शिशु भाव देकर केवल हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र) करने का आदेश दिया है। उन्होंने मुझे भविष्य में 'कृष्ण–मंत्र' का कोई भी अनुष्ठान या पुरश्चरण करने से मना कर दिया था।**

बृहन्नारदीयपुराण में हरिनाम की महिमा इस प्रकार गायी गयी है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात् कलियुग में हरिनाम से ही जीव की गति है यह तीन बार कहा और पुनः तीन बार ही कहा कि इसके बिना गति नहीं ही है, नहीं ही है और नहीं ही है।

अतः अब तो मैं केवल हरिनाम ही करता हूँ और हरिनाम से मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ है। अपने प्राणनाथ गोविंद के चरणों की सेवा करने, उनके नाम का रसास्वादन करने तथा उनके नाम का प्रचार करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। जिन्हें अहैतुकी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनका जीवन ही धन्य है।

यह भगवान् की अहैतुकी कृपा का ही चमत्कार है कि मैं जिसे भी हरिनाम करने को कहता हूँ, वह हरिनाम करने लग जाता है। मेरे पास बहुत लोग मिलने आते हैं। उनमें बहुत से संसारी कामनाओं के लिये भी आते हैं पर मैं तो सबको हरिनाम करने के लिये ही कहता हूँ और जब वे मेरी बात मानकर हरिनाम करते हैं तो उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। कई दम्पति ऐसे भी आये जिनके 20 वर्षों से संतान नहीं हुई थी पर हरिनाम करने से उन्हें संतान की प्राप्ति हो गई।

मैं पिछले 40 वर्षों से गरीब लोगों को होम्योपैथी की दवाई मुफ्त दे रहा हूँ। जब शरीर निरोग होगा तभी तो भजन होगा। मैं गंगा जल से आँखों की दवाई बनाकर सबको मुफ्त देता हूँ जिससे एक लाख से भी अधिक लोगों के चश्मे उतर गये, नजर बढ़ गई। मैं कोई डॉक्टर नहीं हूँ, यह शक्ति मुझे केवल और केवल हरिनाम से मिली है। इसीलिये मैं सबको बार-बार यही कहता हूँ-

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करते रहो। संकीर्तन करते रहो।

यह 'हरे कृष्ण' महामंत्र तारक–पारक व पारक ब्रह्म नाम है जो संकटों से बचाता है, मुक्ति प्रदान करता है और दुर्लभ प्रेम भी प्रदान करता है।

वेद, उपनिषद्, पुराण और संहिता आदि सात्वत–शास्त्रों के अनुसार कलियुग का महामंत्र है। कलिकाल में यह महामंत्र ही समस्त साधनों का शिरोमणि है। कलियुग पावनावतारी श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी सदा–सर्वदा श्री हरिनाम–संकीर्तन करने का उपदेश दिया है–

"कीर्तनीयः सदा हरिः।"

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सदा कीर्तन करने को कहा है और मेरे श्रीगुरुदेव ने भी मुझे उच्च स्वर में (उच्चारणपूर्वक) हरिनाम करने को कहा है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करना संकीर्तन ही है। कोई इसे अकेला भी कर सकता है और सामूहिक रूप से भी कर सकता है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करने वाला अपने को और अपने साथ के श्रोताओं को भी पवित्र कर देता है। पशु–पक्षी, कीट–पतंग, पेड़–पौधे इत्यादि जो बोल नहीं सकते, वे भी हरिनाम को सुनकर भवसागर से तर जाते हैं। शास्त्रों में उच्चारण पूर्वक नाम करने की महिमा अधिक बतलाई गई है। चुपचाप हरिनाम करने की अपेक्षा उच्चारणपूर्वक हरिनाम करना सौ–गुणा श्रेष्ठ है।

यह 'हरेकृष्ण' महामंत्र देवर्षि नारद जी ने अपने गुरु श्रीब्रह्मा जी से प्राप्त किया था।

कलियुग के प्रारम्भ में, नारद मुनि ब्रह्मा जी के पास गए और उनसे पूछा कि, 'कलियुग के पतित लोगों का उद्धार किस प्रकार होगा ? तब ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इति षोडषकम् नाम्नं कलि कल्मष नाशनं।
नातः परतरोपायः सर्व वेदेषु दृश्यते॥

(कलि सन्तरण उपनिषद 2-7)

यह सोलह नामों का (बत्तीस अक्षर) महामंत्र कलियुग के समस्त दोषों तथा पापों को नष्ट करने वाला है। इससे श्रेष्ठ उपाय समस्त वेदों में कहीं नहीं है। सोलह नाम युक्त यह महामंत्र जीवात्मा के भौतिक आवरण का नाश करता है। जब हरे कृष्ण महामंत्र के जप द्वारा, जीवात्मा के स्थूल व सूक्ष्म भौतिक आवरण नष्ट हो जाते हैं, तब परम भगवान् श्रीकृष्ण जीवात्मा के समक्ष उसी प्रकार प्रकट होंगे, जिस प्रकार बादल छट जाने पर सूर्य की प्रखर किरणें प्रकट होती हैं।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य - रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

नाम और नामी परस्पर अभेद तत्त्व हैं। इसलिए नामी कृष्ण के समस्त चिन्मय गुण उनके नाम में हैं, नाम सर्वदा पूर्ण तत्त्व है, हरिनाम में जड़-संस्पर्श नहीं है, वे नित्यमुक्त हैं, क्योंकि वे मायिक गुणों द्वारा कभी आबद्ध नहीं होते। नाम स्वयं कृष्ण है, अतएव चैतन्य-रस के घन-विग्रह हैं। नाम-चिन्तामणि हैं, उनसे जो कुछ भी माँगा जाये, वे सब कुछ देने में समर्थ हैं।

(संदर्भ : पद्मपुराण/भक्तिरसामृतसिन्धु पू. वि. 2, लहरी 108)

ब्रह्मयामल ग्रंथ में शिव जी पार्वती को कहते हैं- "हे महादेवि! कलियुग में हरिनाम के बिना कोई भी साधन सरलता से पापों से छुटकारा नहीं दिला सकता। इसलिये हरेकृष्ण महामंत्र को प्रकाशित करना आवश्यक है। 'हरेकृष्ण' महामंत्र में पहले दो बार 'हरेकृष्ण' 'हरेकृष्ण' बोलना चाहिये। उसके बाद दो बार 'कृष्ण' 'कृष्ण' और बाद में दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार दो बार 'हरेराम' 'हरेराम', दो बार 'राम' 'राम' और दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार सभी पापों को विनाश करने वाले हरेकृष्ण महामंत्र का जप, उच्चारण व कीर्तन करना चाहिये।

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों वाला यह महामंत्र त्रैकालिक-पापों को नष्ट कर देता है। इस महामंत्र का नित्य जप करने वाला वैष्णव,

श्रीश्रीराधाकृष्ण के गोलोक – वृन्दावन धाम को प्राप्त कर लेता है। इस महामंत्र में जो सोलह नाम हैं, वे सम्बोधनात्मक हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती है अतः श्रीराधा ही 'हरा' नाम से कही गई हैं। 'हरा' – शब्द का संबोधन में 'हरे' रूप बनता है। एकमात्र आनन्दरसविग्रह, गोकुल के आनन्दकंद, कमललोचन, नंदनंदन श्री श्यामसुन्दर ही 'कृष्ण' हैं। श्रीकृष्ण अपने रूप–लावण्य से व्रज–गोपियों के मन को आनन्दित करते रहते हैं।

इसी कारण वे 'राम' कहे जाते हैं। इस महामंत्र में 'हरे' 'कृष्ण' और 'राम' तीनों नामों का बार–बार उच्चारण होता है।

जो फल सत्ययुग में ध्यान के द्वारा, त्रेता में यज्ञों का अनुष्ठान करने तथा द्वापर में अर्चना पूजा द्वारा प्राप्त होता है, कलियुग में वही फल एकमात्र हरिनाम–कीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

हर युग का एक तारक–ब्रह्म महामंत्र होता है। अनन्त संहिता में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है।

• सतयुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

नारायण परावेदाः नारायण पराक्षराः।
नारायण परामुक्तिः नारायण परागतिः।।

• त्रेतायुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

रामानारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन।।

• द्वापर का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।।

• कलियुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसलिये समस्त मन्त्रों का सार हरिनाम है। हरिनाम से ही समस्त जगत् का उद्धार होता है। हरिनाम सब प्रकार के मंगलों में

श्रेष्ठ मंगल स्वरूप है। "नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ" हरिनाम करने से मंगल ही होगा। कैसे भी करो। श्रद्धा से करो अथवा अवहेलना से, जो एक बार भी 'कृष्ण' नाम का उच्चारण कर लेता है, कृष्ण नाम उसी समय उसको तार देता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इन नामों में अपनी सभी शक्तियों को भर दिया है। पतित जीवों का उद्धार करने के लिये, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अहैतुकी कृपा करके 'नाम' रूप में अवतीर्ण हुए हैं। भगवन्नाम भगवान् का शब्दावतार है। इस शब्द ध्वनि का अभ्यास करके अर्थात् उच्चारणपूर्वक हरे कृष्ण महामंत्र का जप करके हम भगवान् के साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हरिनाम करते करते हम उस दिव्य अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं जिसे पंचम पुरुषार्थ अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करना ही इस मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। यही अवस्था सर्वोच्च सिद्धि की अवस्था है।

भगवान् ने तो कृपा कर दी और हमें सरल, सुगम व सहज मार्ग भी बता दिया पर फिर भी हमारी नाम में रुचि नहीं है। इसका एकमात्र कारण है– नाम अपराध। पद्मपुराण–स्वर्गखण्ड अध्याय 48 में हरिनाम के संबंध में दस प्रकार के नाम अपराधों का वर्णन आता है। कई साधकों ने मुझे नामापराधों के बारे में पूछा है अतः मैं संक्षिप्त रूप में उनका वर्णन कर रहा हूँ।

पहला नामापराध है– साधुनिन्दा।

श्रीमद्भागवत में साधु के लक्षण बताये गये हैं। दयालु, सहनशील, सबको समान देखने वाला, सच बोलने वाला, विशुद्ध आत्मा, हमेशा दूसरों का हित करने वाला, कामना–वासना से दूर, जितेन्द्रिय, अकिंचन, विनम्र, पवित्र, जितनी जरूरत हो उतना ही भोजन करने वाला, शांत मन वाला, धैर्यवान्, स्थिर, किसी भी वस्तु की कामना न करने वाला, श्रीकृष्ण का शरणागत, भगवान् का भक्त, दूसरों को हरिकथा सुनाने वाला, काम–क्रोध आदि से मुक्त, मान–सम्मान की परवाह न करने वाला, दूसरों को सम्मान

देने वाला तथा ज्ञानवाला व्यक्ति ही साधु है। ऐसे साधु की निंदा करना पहला अपराध है।

दूसरा अपराध है- शिव आदि देवताओं को भगवान् से स्वतंत्र समझना, भगवान् से अलग समझना।

हरिनाम करने वाले साधकों को समझ लेना चाहिये कि गोलोकविहारी श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं। वे 64 गुणों से अलंकृत एवं सभी रसों के आधार हैं। बाकी जितने भी देवी-देवता हैं, वे उनके दास-दासियाँ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने से सभी देवी-देवताओं की पूजा हो जाती है और वे प्रसन्न हो जाते हैं। साधकों को सदा सभी देवी-देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। उन्हें भगवान् का प्रसाद निवेदन करना चाहिये और कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

श्रीगीता में भगवान् ने स्वयं कहा है कि जो भी दूसरे-दूसरे देवताओं की पूजा किया करता है वह एक प्रकार से मेरी ही उपासना करता है परन्तु वह अविधिपूर्वक है।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

(-श्रीमद्भगवद्गीता 9.23)

तीसरा नाम अपराध है- गुरु की अवज्ञा करना।

गुरुदेव को आचार्य कहा गया है वे हरिनाम की शिक्षा देते हैं अतः उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।

चौथा अपराध है- श्रुति-शास्त्रों की निंदा करना।

वेदों में भागवत धर्म का वर्णन है। उनमें भगवान् नाम की महिमा बताई गई है। श्रुति-शास्त्र, वेद, उपनिषद्, पुराण ये सब श्रीकृष्ण के श्वास से उत्पन्न हुए हैं और भागवत-तत्व निर्णय में प्रामाणिक हैं। इसलिये इनकी निंदा नहीं करनी चाहिये।

पाँचवाँ अपराध है– हरिनाम में अर्थवाद करना।

कुछ लोग समझते हैं कि वेदों में जो हरिनाम की महिमा का वर्णन है, वह काल्पनिक है, नाम की प्रशंसा के लिये है। ऐसी धारणा नहीं करनी चाहिए।

छठा नामापराध है– हरिनाम के बल पर पाप करना।

कुछ लोग समझते हैं कि हरिनाम प्राप्त करके हमें पाप करने की छूट मिल गई है। इसी धारणा के साथ वे चोरी, ठगी, बदमाशी, डकैती करते हैं तथा झूठ बोलते हैं। वे सोचते हैं कि इन पापकर्मों को करके, हरिनाम कर लेंगे और सारे पाप कट जायेंगे। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं। उनकी दुर्गति होती है। इसलिये हरिनाम का सहारा लेकर कभी भी पाप नहीं करना चाहिए।

सातवाँ अपराध है– जिन व्यक्तियों को हरिनाम में श्रद्धा नहीं है, ऐसे अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम का उपदेश करना।

जब किसी की हरिनाम में श्रद्धा हो जाये, उसके बाद ही उसे नाम का उपदेश करना चाहिये। श्रद्धावान् व्यक्ति ही हरिनाम करने का असली अधिकारी है।

आठवाँ अपराध है– दूसरे शुभ कर्मों को हरिनाम के बराबर समझना।

कुछ लोग समझते हैं कि जैसे यज्ञ, दान, तीर्थ–यात्रा आदि शुभ कर्म हैं, शुभकर हैं, हरिनाम भी वैसे ही है। ऐसे लोग भी नामापराधी हैं।

नौवाँ अपराध है– प्रमाद।

प्रमाद का अर्थ है– असावधानी, आलस्य, उदासीनता। भजन करते हुये आलस्य करना, उदासीन होना तथा मन का इधर–उधर जाना ही प्रमाद है। एकांत भाव से उच्चारणपूर्वक हरिनाम करने से, धीरे–धीरे यह अपराध खत्म हो जाता है और हरिनाम का दिव्य रस आने लगता है।

दसवाँ नामापराध है– हरिनाम की अगाध महिमा को जानते हुए भी हरिनाम न करना।

जो हरिनाम के शरणागत होकर हरिनाम करता है, वही भाग्यवान् है, वही धन्य है।

यहाँ दस नामापराधों का संक्षेप में वर्णन किया गया है, जो भी साधक कृष्ण–भक्ति में आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें इन अपराधों से अवश्य बचना चाहिये। अपराधों से बचकर हरिनाम करना ही भजन–साधन में निपुणता है। इसके लिये हरिनाम प्रभु के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिये कि **'हे हरिनाम प्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मैं सदा–सर्वदा नामापराधों से बचकर शुद्ध हरिनाम करता रहूँ।'**

यहाँ जिन अपराधों का वर्णन हुआ है, इनसे बचने का एकमात्र उपाय भी हरिनाम ही है। निरंतर हरिनाम करते रहने से नामापराध खत्म हो जाता है और अपराध खत्म होने से शुद्ध नाम उदित हो जाता है और अहैतुकी भक्ति जागृत हो जाती है।

नामापराधयुक्तानां नामानि एव हरन्ति अघम्।
अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तानि एवार्थकराणि च॥

(पद्मपुराण, स्वर्ग खंड 48, 49)

निरन्तर नामभजन द्वारा हरिनाम के प्रति अपराधी व्यक्ति धीरे–धीरे पापों और अपराधों से मुक्त हो जायेगा। वह निरपराध जप के स्तर पर पहुँच जाएगा, और अंततः वह जीवन के चरम लक्ष्य, **कृष्णप्रेम** को प्राप्त करेगा।

जो साधक पूर्ण रूप से नाम पर आश्रित हो जाता है, ऐसे शुद्ध–नामाश्रित व्यक्ति को कभी भी, किसी भी रूप में नामापराध स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि नामाश्रित व्यक्ति की, श्रीहरिनाम सदा ही रक्षा करते हैं। उससे अपराध होगा ही नहीं। जब तक जीव के हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं होता तब तक अपराध होने का डर बना रहता है। इसलिये हर वक्त हरिनाम करते रहो।

जिनकी नाम में श्रद्धा है, नाम में जिनका विश्वास है, वे ही सर्वोत्तम साधक हैं। **भगवद्-प्राप्ति करने के जितने भी साधन हैं, उनमें एकमात्र नामाश्रय से ही सर्वसिद्धि होती हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है।** नाम का आश्रय लेकर यह पद्धति श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के समय से चली आ रही है। इससे पहले भी प्राचीनकाल में व्रजमण्डल के वैष्णव-संतों ने इसी भजन-प्रणाली के अनुसार भजन किया है। श्री हरिनाम का तत्व किसी सौभाग्यशाली को ही समझ में आता है। जब कोई भाग्यवान् जीव, भगवान् श्रीकृष्ण के किसी नामनिष्ठ भक्त का संग करता है तब उसकी हरिनाम में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

श्रीकृष्ण नाम चिंतामणि है, अनादि है, चिन्मय है। चूंकि श्रीकृष्ण अनादि हैं, दिव्य हैं इसलिये उनका नाम, उनका रूप, उनके गुण तथा उनकी लीलायें भी अनादि एवं दिव्य हैं। **श्रीकृष्ण का नाम और उनका रूप एक ही वस्तु है।** उनके नाम का स्मरण करने से, उनके नाम का कीर्तन करने से, उनका रूप स्वतः ही हृदय में प्रकट हो जाता है।

सुमरिए नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण का रूप सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार उनके नाम में भी यह आकर्षण नित्य विराजमान रहता है। यद्यपि भगवान् के नाम, रूप, गुण व लीला उनसे अलग नहीं है फिर भी उनका नाम सभी का आदि है, सबका मूल है। हरिनाम करते-करते उनका रूप, उनके गुण और उनकी समस्त लीलायें हृदय में स्वतः ही प्रकाशित हो जाती हैं।

'नाम', 'विग्रह', 'स्वरूप'-तिन एकरूप।
तिने 'भेद' नाहि-तिन 'चिदानंद-रूप'॥

(चैतन्यचरितामृत मध्यलीला 17.131)

भगवान् का नाम, उनका विग्रह (शरीर) और उनका स्वरूप-ये तीनों एक ही हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं है। तीनों ही चिदानन्द स्वरूप हैं। कृष्ण के शरीर तथा स्वयं कृष्ण में या उनके नाम तथा उनमें कोई अन्तर नहीं है।

सार बात यह है कि हरिनाम ही सर्वश्रेष्ठ तत्व है और वैष्णवों का एकमात्र धर्म है– हरिनाम करना। आज से 529 वर्ष पूर्व, इस युग के युगधर्म– श्रीहरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुये हैं। उन्होंने स्वयं हरिनाम करके दिखाया। उनके आदेशानुसार, उनकी शिक्षाओं पर चलकर, आज अनंतकोटि जीव श्रीकृष्ण–प्रेम रूपी महाधन (परमधन) को प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीचैतन्य देव ने हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करने के लिये ही उपदेश क्यों किया ?

श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णन है कि जब संन्यासियों के प्रधान प्रकाशानन्द जी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से पूछा कि केशव भारती के शिष्य होकर तथा अनुमोदित सम्प्रदाय में संन्यास ग्रहण करने के बाद भी आप संन्यासी धर्म का पालन नहीं करके, भावुकों के कर्म करते फिरते हो, संन्यासी होकर भी पागलों की तरह नृत्य–गान करते हो, संकीर्तन करते हो। आप ऐसा अनुचित व हीन कर्म क्यों करते हो ? तो श्री महाप्रभु जी ने कहा–

"श्रीपाद! मैं इसका कारण बताता हूँ। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे मूर्ख देखकर कहा कि तुम मूर्ख हो तथा वेदान्त पढ़ने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। अतः तुम नित्य–निरंतर श्रीकृष्ण का महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन किया करो। वेदांत का निचोड़ यही महामंत्र है। इस महामंत्र का कीर्तन करने से तुम्हारे सभी बंधन समाप्त हो जायेंगे और तुम्हें श्रीकृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति हो जायेगी।

इस कलिकाल में श्रीकृष्ण के नाम के बिना और कोई धर्म नहीं है। जितने भी मंत्र हैं, जितने भी साधन हैं, उन सबका सार है– हरिनाम। यही बात सभी शास्त्रों ने कही है।"

नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म।
सर्वमन्त्रसार नाम एई शास्त्र मर्म॥

(चैतन्यचरितामृत आदि लीला 7.74)

कलियुग में नाम के बिना और कोई धर्म नहीं है। समस्त मन्त्रों का सार हरिनाम है, यही सभी शास्त्रों का मर्म है।

इस प्रकार अपने श्रीगुरुदेव केशवभारती की आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु प्रतिक्षण कीर्तन करने लगे

एइ आज्ञा पाञा नाम लइ अनुक्षण।

नाम–संकीर्तन के सिवा उन्हें कुछ भी याद नहीं रहा। वे सब कुछ भूल गये। कीर्तन करते–करते कभी हंसते, कभी रोते, कभी नाचते, कभी पागलों की तरह सुध–बुध खो देते। उनकी हालत पागल जैसी हो गई। एक दिन उन्होंने अपने श्रीगुरुदेव से कहा कि आपने मुझे कैसा उपदेश किया है। इस मंत्र ने तो मुझे पागल कर दिया है। इस महामंत्र में बहुत शक्ति है। महाप्रभु जी की बात सुनकर उनके श्रीगुरुदेव हँसने लगे और बोले–

कृष्णनाम महामंत्रेर एइत स्वभाव।
जेइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव।।

अर्थात् श्रीकृष्ण नाम का यही स्वभाव है। जो भी इस महामंत्र का जप करता है, उसमें श्रीकृष्ण प्रेम उत्पन्न हो जाता है। श्रीनाम संकीर्तन का मुख्य फल श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति है पर यह फल उसे ही मिलता है जो उसी शुद्ध–प्रेम की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करता है। इस लोक तथा परलोक के सुख–भोगों की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। ये सब सुख–भोग तो हरिनाम करने से स्वतः ही मिल जायेंगे। हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति के लिये, श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये, श्रीकृष्ण के सुख के

लिये हरिनाम करना है। नाम की महिमा असीम है, अपार है। यहां तक कि नवविधा भक्ति की पूर्णता श्रीनाम संकीर्तन से ही होती है–

नवविधा–भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।।

इसलिये हरिनाम ही सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग है।

देखो! भगवान् श्रीकृष्ण का मेरे प्रति वात्सल्य भाव है। इस संबध से, वे मेरे दादा हैं और मैं उनका पोता हूँ, मेरा नाम अनिरुद्ध है और मेरी उम्र है डेढ़ वर्ष। मुझे इस सम्बन्ध का पहले कुछ भी पता नहीं था। मैं नहीं जानता था कि मैं कौन हूँ और मेरा भगवान् से क्या सम्बन्ध है? पर मेरे श्रीगुरुदेव ने कृपा करके मुझे यह सम्बन्ध ज्ञान दिया है। इस संबंध में, कोई अपराध नहीं होता। बाकी संबंधों में अपराध होने का भय बना रहता है। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे केवल और केवल मात्र हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

करने की आज्ञा दी है और वही मैं कर रहा हूँ। हरे कृष्ण महामंत्र करते–करते मेरी आँखों से अश्रुपात होने लगता है और मैं अपने दादा (भगवान् श्रीकृष्ण) को मिलने के लिये व्याकुल हो जाता हूँ। तब भगवान् मुझे दर्शन देते हैं। उन्हें देखकर मैं उनकी गोदी में चढ़ने के लिये मचल जाता हूँ। रोने लगता हूँ। भगवान् मुझे दोनों हाथों से उठाकर गोदी में ले लेते हैं। मुझे बहुत प्यार करते हैं, दुलारते हैं, पुचकारते हैं, मेरा माथा चूमते हैं, मेरे घुँघराले बालों को सँवारते हैं। मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ और उनकी गोदी में ही रहना चाहता हूँ। थोड़ी देर बाद, वे मुझे रुक्मिणी जी को पकड़ा देते हैं और आप सोने के रथ में सवार होकर सुकर्मा सभा में जाने लगते हैं। रथ का सारथी दारुक रथ लेकर तैयार खड़ा है पर ज्यों ही वे जाने लगते हैं– मैं जोर–जोर से रोने लगता हूँ और उनकी गोदी में चढ़ने की जिद करता हूँ। मुझे रोते हुये देखकर वे रुक जाते हैं और फिर मुझे गोदी में उठा लेते हैं। इस प्रकार बार–बार होता है और उस दिन से वे सुकर्मा सभा में जाने से ही मना कर देते हैं।

कई बार मैं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करता हूँ। महाप्रभु गंभीरा में सबको हरिनाम की महिमा सुनाते हैं। गंभीरा में नित्यानंद प्रभु, श्री अद्वैताचार्य, श्रीगदाधर पंडित, श्री निवासाचार्य, श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामी, वृन्दावन के छः गोस्वामीगण, देवर्षि नारद, व्यासजी, ब्रह्माजी तथा शिवजी सब महाप्रभु के मुखारविन्द से हरिनाम की महिमा सुन रहे हैं। मेरे श्रील गुरुदेव पूरी गुरु-परम्परा तथा सभी वैष्णव-संत भी वहाँ विराजमान होते हैं। मैं डेढ़ वर्ष के शिशु के रूप में घुटनों के बल चलकर महाप्रभु जी की गोदी में जाकर बैठ जाता हूँ। वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। मुझे प्यार करते हैं, मुझे चूमते हैं, दुलारते हैं। मैं गद्गद् हो जाता हूँ। गंभीरा में विराजमान सारा वैष्णव समाज मुझे देखता है। उसी समय मेरे श्री गुरुदेव एक सोने के गिलास में कोई आसव (मधुर पेय) लेकर आते हैं। महाप्रभु उस आसव में से कुछ घूँट पीते हैं और बाकी आसव मुझे पिला देते हैं।

कई बार मैं शिवजी और माँ-पार्वती जी के दर्शन करता हूँ। शिवजी की गोदी में, मैं सांपों से डर जाता हूँ और रोने लगता हूँ। तब माता पार्वती मुझे गोद में लेकर प्यार करती हैं और स्तनपान कराती हैं। उस समय मुझे परम सुख की अनुभूति होती है।

इसी प्रकार हरिनाम करते-करते मुझे भगवान् एवं उनके भक्तों के दर्शन होते रहते हैं। कभी ब्रह्मा जी, कभी नारद जी, कभी माँ लक्ष्मी, कभी माया देवी के दर्शन मुझे होते हैं और मुझे सबका आशीर्वाद एवं प्यार मिलता है। **मैं ये सब इसलिये बता रहा हूँ क्योंकि मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है कि मैं अपने बारे में सब कुछ बता दूँ, कुछ भी छुपा के नहीं रखूँ।** मैं अपनी बड़ाई के लिये यह सब नहीं बता रहा हूँ। मैं तो आपको हरिनाम की महिमा बता रहा हूँ। हरिनाम से क्या नहीं हो सकता ? हरिनाम की कृपा से मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुए हैं। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे गोलोक धाम के दर्शन भी करवाये हैं।

मैं उम्र में तो डेढ़ वर्ष का शिशु हूँ पर अपने दादा भगवान् श्रीकृष्ण से बड़े-बड़े प्रश्न पूछता हूँ। कभी पूछता हूँ कि तुम्हारे वस्त्र का रंग

पीला क्यों हैं ? कभी पूछता हूँ राधारानी की साड़ी का रंग नीला क्यों है ? कभी पूछता हूँ प्रकृति का रंग हरा और समुद्र का पानी नीला क्यों है ? भगवान् श्रीकृष्ण मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं और कई बार कहते हैं कि तू बड़ा नटखट है, बड़े-बड़े प्रश्न पूछता है। मेरी बातें सुनकर वे मुस्कराते हैं और गोदी में बिठाकर मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

यह सम्बन्ध बड़ा दिव्य है। यह भाव अलौकिक है। जबतक संबंध ज्ञान नहीं होता तब तक इन भावों को समझा नहीं जा सकता। भगवान् से हमारा कोई भी संबंध हो सकता है– पिता का, पुत्र का, पति का, सखा का, स्वामी का। जिसका जैसा भाव होगा, उसे वैसा ही संबंध ज्ञान मिलेगा पर यह सब मिलेगा हरिनाम करने से। नित्य-निरंतर हरिनाम करते रहने से, आगे का रास्ता अपने आप बनता जाता है और श्री गुरुदेव ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संबंध ज्ञान दे दिया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का जो सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है, उससे बहुत शीघ्र संबंध-ज्ञान हो जायेगा और इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी।

यह मार्ग भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं मुझे बताया है। यह मार्ग आजतक किसी ने नहीं बताया और न ही इसका किसी ग्रंथ में वर्णन है। यह अति गोपनीय था पर अब मैं सबको यह गोपनीय रहस्य बता रहा हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा कि तुमने तो मेरी पोल खोलकर रख दी। मैं सब कुछ दे देता हूँ पर अपनी भक्ति नहीं देता क्योंकि मुझे भक्त का गुलाम बनना पड़ता है। मैंने कहा कि "जब आपने मुझे इस पृथ्वी पर भेजा ही इसलिये है तो मैं क्यों न बताऊँ ? मैं यह बात सबको बताऊँगा और आपके धाम में ले जाऊँगा। यदि आपको मुझसे हरिनाम का प्रचार नहीं करवाना था तो मुझे यहाँ भेजा ही क्यों ?" मेरी बात सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले – "तू बड़ा चतुर है"।

भगवान् को प्राप्त करने का रहस्य तो मैं आप को बता रहा हूँ पर जो सुकृतिशाली होगा, वही मेरी बात पर विश्वास करेगा। जो

सुकृतिशाली नहीं होगा, वह इसे सच ही नहीं मानेगा। यह मार्ग इतना सहज एवं व्यावहारिक है कि कोई भी, कहीं भी, कैसे भी, इस पर चलकर हरिनाम कर सकता है। इसके लिये आपको कुछ भी विशेष नहीं करना है। आप अपने घर, दुकान, कार्यालय, फैक्ट्री, कहीं भी हरिनाम कर सकते हो। जहाँ भी रहो, जैसी भी परिस्थिति हो, इसे करना बहुत आसान है। यह मार्ग इतना प्रभावशाली है कि इससे आपका जीवन ही बदल जायेगा। आपको संसार के सुख तो मिलेंगे ही, आपका आध्यात्मिक जीवन भी निखर जायेगा। आपको भगवान् के दर्शन हो जायेंगे। भगवान् के दर्शन तीन प्रकार हुआ करते हैं – स्वप्न में, छद्म रूप में और साक्षात्–दर्शन। साधक के हृदय की जैसी वृत्ति होगी, उसी वृत्ति के अनुसार उसे दर्शन होगा। यदि साधक की वृत्ति निर्गुणी है तो साक्षात् दर्शन होगा। यदि सतोगुणी वृत्ति है तो छद्म दर्शन होगा और यदि कोई इस क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा तो उसे स्वप्न में तो दर्शन जरूर होंगे। भगवान् के द्वारा अपने भगवत् स्वरूप के अलावा किसी अन्य रूप में अपने दर्शन और अनुभूति कराना छद्म दर्शन है।

आप कह सकते हो कि इसका प्रमाण क्या है ? मैं कहता हूँ, करके देख लो। देखो ! जो नामनिष्ठ भक्त होता है, वह भगवान् को बहुत प्यारा होता है। भगवान् कभी भी उसकी बात टालते नहीं हैं। हरिनाम की कृपा से, मुझे वाक् सिद्धि प्राप्त है इसलिये मैं सबको हरिनाम करने को कहता हूँ और लोग हरिनाम करने लगते हैं। पिछले वर्ष (18 मार्च, 2013) मैं गोवर्धन के पास चन्द्र सरोवर पर गया था। वहां मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुये। उस दिन मेरे साथ आठ भक्त और थे। दो जयपुर के, एक चण्डीगढ़ के, एक दिल्ली के डाक्टर, एक संन्यासी तथा तीन विदेशी भक्त। ये मेरे साथ थे पर इन्हें भगवान् ने साक्षात् दर्शन नहीं दिये क्योंकि उनकी निर्गुणी वृत्ति नहीं है। ये सभी भक्त हरिनाम तो करते हैं पर अभी अधकचरे हैं इसलिये इन्हें दर्शन नहीं हुए। पर जब मैंने भगवान् से प्रार्थना की तो भगवान् ने उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिये। यह सब हरिनाम का चमत्कार है।

हरिनाम की इतनी अगाध महिमा सुनकर और महाप्रभु की आज्ञा का पालन करके आज पूरा विश्व हरिनाम कर रहा है। हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन कर रहा है। आज असंख्य भक्त हरिनाम कर रहे हैं। कोई सोलह माला करता है, कोई बत्तीस माला करता है और बहुत सारे भक्त चौसठ माला (एक लाख हरिनाम) करते हैं। दो लाख व ढाई लाख हरिनाम नित्य प्रति करने वाले भी हैं पर उनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। कुछेक तो तीन लाख हरिनाम भी प्रतिदिन करते हैं। मेरे पास बहुत से भक्तजन आते हैं। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या आपको स्वप्न में भगवान् के दर्शन होते हैं? क्या हरिनाम करते-करते आपकी आँखो में अश्रु आते हैं? क्या भगवान् के लिये छटपटाहट होती है? क्या संसार की आसक्ति कम हुई? क्या विरह होता है? क्या काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार छूटा या कम हुआ कि नहीं? उत्तर मिलता है- नहीं।

एक दिन मैंने अपने बाबा भगवान् श्रीकृष्ण से बोला- "बाबा! क्या आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है?"

मेरा प्रश्न सुनकर बाबा बोले, 'अरे अनिरुद्ध! तू कैसी पागलों जैसी बातें करता रहता है। क्या मेरे नाम में शक्ति नहीं है?'

"हाँ! आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है। जो भक्त आपका एक लाख, डेढ़ लाख नाम प्रतिदिन जपते हैं उनका राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार तक नहीं गया। फिर आपका नाम जपने से क्या फायदा हुआ?"

मेरी बात सुनकर बाबा ने कहा- "अरे! तू जो कुछ कह रहा है, वह ठीक ही है लेकिन मेरी बात सुन। जब मैं अवतार लेता हूँ तब जो भी मेरे संपर्क में आता है, उसका उद्धार हो जाता है पर मेरा नाम तो अनंतकोटि ब्राह्मांडों में रहने वाले जीवों का उद्धार कर देता है। इसलिये मेरे से भी अधिक मेरे नाम की महिमा है। मेरे नाम का जप करके मेरे भक्त मुझे वश में कर लेते हैं। काल, महाकाल भी मुझ से थर-थर काँपते हैं पर मैं अपने भक्तों से डरता हूँ। अब

मेरी बात ध्यान से सुन। ये संसार क्या है ? ये संसार दुःखालय है। दुःखों का घर है। जो भक्त एक लाख या डेढ़ लाख हरिनाम प्रतिदिन कर रहे हैं, वे सब हरिनाम के बदले मुझसे इस संसार की वस्तुएं ही माँगते हैं। कोई घर माँगता है, कोई कहता है मेरी बेटी की शादी हो जाये, कोई कहता है मेरे बेटे की नौकरी लग जाये, मेरा कारोबार अच्छी तरह चलता रहे। मेरा नाम है चिंतामणि! उससे जो मांगोगे, वही दे देगा। संसार की वस्तुऐं मांगोगे तो संसार ही मिलेगा। दुःखों के घर में सुख कैसे मिलेगा ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा अहंकार– ये सब माया का परिवार है। जब कोई अपने स्वार्थ के लिये नाम जप करता है तो माया का परिवार, माया के हथियार उसे प्रताड़ित करते हैं और वह माया द्वारा बुरी तरह सताया जाता है। पर जो मेरे लिये, मेरी प्रसन्नता के लिये नाम–जप करता है, माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती अपितु भगवद्–प्राप्ति में उसकी सहायता करती है। अपने स्वार्थ के लिये नाम–जप करना अविधिपूर्वक है और मेरी प्राप्ति, मेरी प्रसन्नता के लिये जप करना ही विधिपूर्वक जप करना है। **नाम जप करने वाले की जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल मिलता है।** यदि कोई गोपियों तथा भीलनी (शबरी) जैसे भाव से नाम जप करता है, मुझे बुलाता है, याद करता है तो मैं उससे कभी दूर नहीं रह सकता। पर मुझे चाहता ही कौन है ? मुझे चाहने वाला तो कोई विरला ही होता है।"

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

श्रीमद्भगवद्गीता 4.11

अर्थ : हे पार्थ! जो मनुष्य जिस प्रकार मुझे भजते है, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही पथ का अनुसरण करते हैं।

"अच्छा बाबा! अब ये बताओ कि हमें सुख कैसे मिलेगा ?"– मैंने पूछा।

"सुख मिलेगा मेरे भक्तों से तथा मुझसे, क्योंकि मैं सुख का सागर हूँ। गोपियाँ हर पल, हर क्षण मेरे सुख के लिये सब काम करती थीं इसलिये उन्हें हर पल सुख मिलता था। मेरे भक्तों के चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाओ। मैं अपने भक्तों के हृदयों में रहता हूँ। जब कोई मेरे प्यारे भक्तों को हरिनाम सुनायेगा तो मैं भी सुनूँगा। मेरे प्यारे भक्त हरिनाम सुनेंगे तो उनकी कृपा मिलेगी, उनका आशीर्वाद मिलेगा और मैं हरिनाम सुनूँगा तो मैं गद्गद् हो जाऊँगा। मैं खुश हो जाऊँगा तो सुख अपने आप मिलेगा।"

मैंने अपने बाबा (श्रीकृष्ण) से पूछा कि यह बात आपने पहले कभी नहीं बताई तो वे बोले– "तुमने पहले कभी ये बात पूछी नहीं, इसलिये मैंने नहीं बताई। आज पूछी है तो बता दी। अब मैं तुम्हें हरिनाम करने का सर्वोत्तम मार्ग बताता हूँ।"

इस प्रकार कहने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे हरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग बता दिया। वही मार्ग मैं आपको बता रहा हूँ। हरिनाम करने से पहले वृन्दा देवी (तुलसी महारानी) को प्रणाम करो। वृन्दा देवी की प्रसन्नता से ही सब कुछ होगा। तुलसी माँ की प्रसन्नता कैसे होगी–वह इसी पुस्तक में लिखा है, भक्तगण उसे अवश्य पढ़ें और उसके अनुसार हरिनाम शुरु करें। साथ ही प्रतिदिन तीन प्रार्थनाएँ तथा वैष्णव प्रार्थनाएँ भी करें।

जितने भी नामनिष्ठ हैं, वे भगवान् को अतिप्रिय हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो भगवान् को बहुत सुख मिलता है। इन नामनिष्ठ भक्तों को प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय है उनके चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाना। ऐसा करने से भगवान् के प्यारे भक्तों की कृपा भी मिलेगी और भगवान् भी आनन्दित हो जायेंगे। जब भगवान् ही प्रसन्न हो गये तो बाकी क्या बचा ? सब कुछ मिल गया।

भगवान् के नामनिष्ठ भक्त अनगिनत हैं, असंख्य हैं पर भगवान् ने अहैतुकी कृपा करके मुझे दो ग्रुप बताये हैं जिसका मैं

वर्णन करने जा रहा हूँ। इन सबके चरणों में बैठकर, इन्हें हरिनाम सुनाना है पर यह होगा **मानसिक रूप** से।

पहला ग्रुप है **श्रीगुरुदेव** का। इस ग्रुप का क्रम इस प्रकार है–

1. श्री गुरुदेव
2. श्रीनृसिंह देव
3. श्रीगौरहरि
4. श्रीकृष्ण
5. श्रीराधा
6. पुरी मंदिर में विराजमान श्री बलदेव, सुभद्रा एवं भगवान् जगन्नाथ
7. श्रीगौरहरि का विलाप
8. नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर
9. षड्–गोस्वामी पाद
10. श्री माधवेन्द्र पुरी पाद एवं ईश्वर पुरीपाद

इस क्रमानुसार सबको चार–चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार क्रमांक एक से दस तक, चार–चार माला हरिनाम की करने से चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी।

इसी प्रकार दूसरे ग्रुप का क्रम है। यह ग्रुप है **देवर्षि नारद जी का**।

11. श्री नारद जी
12. श्री सनकादिक जी (चार कुमार)
13. श्री ब्रह्मा जी
14. श्री शिव जी
15. श्री नित्यानंद प्रभु
16. श्री अद्वैताचार्य जी
17. श्री गदाधर पंडित जी
18. श्रीवास (निवास) जी
19. षड्–गोस्वामी पाद
20. श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद एवं श्री ईश्वरपुरीपाद।

(श्रीपाद षड्-गोस्वामी तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद एवं श्री ईश्वरपुरी पाद दोनों ग्रुपों में शामिल हैं।)

इस क्रमानुसार हर बार चार-चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार दूसरे ग्रुप में भी चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी। इन दोनों ग्रुपों को पूरा करने के बाद अस्सी (40+40=80) माला हरिनाम की हो जायेंगी यानि 1,25,000 हरिनाम पूरा होगा। इस पूरे क्रम को दो बार करने से 160 माला यानि 2,50,000 हरिनाम पूरा हो जायेगा। तीन बार करने से 3,75,000 तथा चार बार करने से पाँच लाख (5,00,000) हरिनाम पूरा हो जाता है। **यह सब भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशानुसार है।** जो इसे अपनायेगा उसे भगवान् का दर्शन अवश्य होगा। इस बात की शत-प्रतिशत गारंटी है।

क्रम में बदलाव न करें। अगर आप 4 माला कर रहे हैं, तो गुरुदेव को ही 4 माला सुनाइये, 8 माला कर रहे हैं, तो 4 माला गुरुदेव और 4 माला नृसिंहदेव को सुनाइये, इस तरह से आगे बढ़िये। किसी को 1 माला, किसी को 2 माला सुनाईं ऐसी मनमानी न करें।

इन दोनों ग्रुपों में जो नाम आये हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इसी ग्रंथ के **आमुख** नाम के लेख में आगे दिया गया है, भक्तगण, उसे जरूर पढ़ें।

अब मैं आपको हरिनाम का चमत्कार बता रहा हूँ। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। मेरी उम्र है 85 वर्ष। उम्र के हिसाब से तो मुझे खटिया में पड़ जाना चाहिये पर इस उम्र में भी, मेरे शरीर में बीस वर्ष के नौजवान जैसी शक्ति है। मेरी दृष्टि पाँच वर्ष के बच्चे जैसी है। मेरे सारे दाँत हैं और मुझे कोई भी रोग नहीं है। मैं हर रोज रात को 12 बजे उठकर हरिनाम करता हूँ। पहले मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करता था। 24 नवम्बर, 2013 को जब भगवान् ने मुझे यह क्रम बताया तो मैं इस पूरे क्रम को तीन बार करता था और मेरा 3,75,000 हरिनाम प्रतिदिन होता था। अब मैं इस पूरे क्रम को चार बार प्रतिदिन करता हूँ और 24

दिसंबर, 2013 से मैं प्रतिदिन पाँच लाख हरिनाम करता हूँ और यह सब 16–17 घंटों में पूरा हो जाता है। बाकी समय में मैं खाना–पीना, सोना करता हूँ तथा भक्तों से मिलता हूँ। इस जन्म में मैं अबतक लगभग 800 करोड़ हरिनाम कर चुका हूँ। आपको सच नहीं लग रहा न! मैं कहता हूँ, करके देख लो! जब मैं 85 वर्ष का बूढ़ा आदमी पाँच लाख हरिनाम कर सकता हूँ तो आप क्यों नहीं कर सकते। पर मैं आपको पाँच लाख हरिनाम करने को नहीं कहता। मैं कहता हूँ आप कम से कम पूरे क्रम को एक बार तो करो यानि 80 माला (1,25,000) हरिनाम। इसी से आपको विरह होने लगेगा और इसी जन्म में श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति हो जायेगी।

देखो! हरिनाम में अमृत भरा पड़ा है। इस अमृत को जितना पी सकते हो, पी लो। यह हरिनाम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में हमें दिया है। हे रसिक व भावुकजनो! श्रीचैतन्य महाप्रभु के मुख का संयोग होने से हरिनाम रूपी यह अमृतरस परिपूर्ण है और इस हरिनाम का रस इसी लोक में, इसी जन्म में सुलभ है। इसलिये जब तक शरीर में प्राण हैं, चेतना है तब तक हर पल, हर सांस में इस अमृत का पान करते रहो। यह मौका फिर नहीं मिलेगा। यह हरिनाम वैष्णवों का परमधन है। परमहंसों का प्राण धन है तथा भक्तों का जीवन धन है। इसलिये मेरे प्यारे भक्तो! इस हरिनाम रस का खूब पान करो। इसे कभी मत छोड़ना। जो नित्य–निरंतर हरिनाम करता है, वे त्रिलोकी में अत्यन्त निर्धन होने पर भी परम धन्य है क्योंकि इस हरिनाम की डोरी से बँधकर, भगवान् को, अपना परमधाम छोड़कर, भक्त को साक्षात् दर्शन देना पड़ता है। हरिनाम की महिमा इससे अधिक और क्या हो सकती है! हरिनाम का आश्रय लेकर, इसे स्वयं करने तथा दूसरों से करवाने वाले– दोनों को ही श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। **फिर इस हरिनाम को छोड़कर और कुछ करने से क्या प्रयोजन है?**

भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का यह सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है। इस मार्ग से हरिनाम करने पर, हरिनाम

करते रहने की इच्छा बढ़ती जायेगी और जो आनन्द प्राप्त होगा, उस आनंद की कोई सीमा नहीं है। वह आनन्द अलौकिक है, अगाध है, असीमित है, अपरिमित है, अवर्णनीय है और भगवान् का साक्षात्-दर्शन कराने वाला है। इसीलिये मैं सबसे बार-बार कहता हूँ-

हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

"गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।"

यह हरिनाम-संकीर्तन व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के गोलोक धाम का प्रेमधन है। हरिनाम की कृपा से ही श्रीश्रीराधाकृष्ण, राधाकुण्ड, गोवर्धन, यमुना, कुसुम-सरोवर, मानसी-गंगा, वृन्दावन, वंशीवट, गोकुल, व्रज के वृक्ष-लता-पत्ते-गोप-गोपियाँ, गाय-बछड़े, पशु-पक्षी, भौंरे, वन-उपवन, मुरली तथा बरसाना सबके दर्शन होंगे।

एक दिन मैंने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि माया तो आपकी दासी है। फिर यह आपके भक्तों को प्रताड़ित क्यों करती है? क्यों उन्हें कष्ट देती है? आपके आदेश के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता फिर मनुष्यों को सताने के लिये आपने माया को आदेश क्यों दिया?

मेरी बात सुनकर मेरे बाबा बोले, "अनिरुद्ध! इस प्रश्न का उत्तर तुम मेरी माया से ही पूछो न!"

भगवान् के आदेश से उसी क्षण माया देवी वहाँ प्रकट हो गई। मैं उन्हें देखकर हतप्रभ रह गया। सुन्दर स्वरूप, विलक्षण तेज और सबको आकर्षित करने वाली दिव्य आभा। मुझे पहचानने में देर नहीं लगी। यही भगवान् की दैवीशक्ति माया है- यह जानकर मैंने तुरंत माया देवी को प्रणाम किया। मैंने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से माया देवी से पूछा कि, आप मनुष्यों को कष्ट क्यों देती हो? क्यों उन्हें प्रताड़ित करती हो?

माया देवी ने कहा- "देखो! अनादिकाल से यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। इन चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य की योनि ही कर्म प्रधान है। बाकी सभी योनियाँ भोग

भोगने के लिये हैं। इन योनियों में जीव कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं है पर मनुष्य योनि में वह कुछ भी करने को स्वतन्त्र है। उसे कर्म करने की पूरी आज़ादी है। मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतंत्र तो है पर उसे इन सभी कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है। मनुष्य पाप-पुण्य आदि जो भी कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना ही होगा पर दूसरी योनियों में कोई पाप नहीं लगता।

मनुष्य को यह जन्म भगवद्-प्राप्ति के लिये मिला है। उसने गर्भ में भगवान् से प्रार्थना की थी कि मैं आपका भजन करूँगा। भगवान् ने उसकी प्रार्थना सुनकर, बिना कारण, उस पर कृपा करके इस संसार में भेज दिया ताकि वह भगवद्-भजन कर सके। पर यह मनुष्य भगवान् को ही भूल गया और अपने सुख की खोज में लग गया। वह अपने स्वामी, जिसका वह नित्यदास है, उसको छोड़कर अपनी दुनियाँ बसाने में लग गया। वह मेरे स्वामी की सेवा छोड़कर, पति-पत्नि, परिवार की सेवा में लग गया और मेरे स्वामी को भूल गया। इसलिये वह दुःखी है। मेरे स्वामी को प्रसन्न करने की बजाय, उसे सुख देने की बजाय, यह मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में लग जाता है इसलिये मैं उसे परेशान करती हूँ। मैं उसे भ्रमित कर देती हूँ, उसके मार्ग में बाधाएं खड़ी करती हूँ।

कभी भूकंप आता है, कहीं सुनामी सब कुछ मलियामेट हो जाता है, कहीं बादलों के फटने से गाँव के गाँव उग्र धाराओं में बह जाते हैं। कहीं सूखा पड़ जाता है, कहीं भुखमरी पैदा हो जाती है। यह सब मेरा ही खेल है। मेरा यह खेल इतना रहस्यमय है कि मनुष्य इसे समझ नहीं पाता और असहाय बनकर रह जाता है। मेरे चंगुल में फँसकर बड़े-बड़े विद्वान, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि तथा साहित्यकार भी यह मान लेते हैं कि यह जीवन केवल मात्र खाने-पीने, सोने तथा मौजमस्ती करने के लिये मिला है और ऐसे लोग, अपने जीवन की अंतिम सांस तक, अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने में लगे रहते हैं। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है।

भगवान् श्रीकृष्ण मेरे स्वामी हैं अर्थात् मायापति हैं। उनको प्रसन्न किये बिना, कोई भी जीव मेरे चंगुल से बच नहीं सकता। कोई भी उसे छुड़ा नहीं सकता। इस जीव को वही मेरे चंगुल से छुड़ा सकते हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो वे मुझे आदेश देते हैं कि मैं उनके प्रिय पुत्र (जीव) को मुक्त करूँ और उनके पास ले जाने में उसकी सहायता करूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग-द्वेष, ईर्ष्या ये सब मेरे हथियार हैं- मेरा परिवार है। जब तक जीव मेरे स्वामी को प्रसन्न नहीं करता, उनका भजन नहीं करता तब तक वह इसी प्रकार कष्ट भोगता रहेगा।"

यह कहकर माया देवी अन्तर्धान हो गईं। मायादेवी के इस वार्तालाप से जो बात निकल कर आई है वह यह है कि **यदि आप काम को भगाना चाहते हैं, तो हरिनाम करो। क्रोध को मिटाना चाहते हैं तो हरिनाम करो। राग-द्वेष को समाप्त करना चाहते हैं तो हरिनाम करो। केवल और केवलमात्र हरिनाम करने से भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे और माया मैया हरिनाम में आपकी सहायता करेगी।**

हरिनाम करने से ही अहैतुकी भक्ति हृदय में जागृत हो जायेगी और आपकी सारी जिम्मेदारी भगवान् अपने ऊपर ले लेंगे। जैसे एक माँ, अपने नन्हे-मुन्ने बच्चे का पालन-पोषण करती है। उसे स्नान कराती है, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाती है, उसका शृंगार करती है, दुलारती है, पुचकारती है, दूध पिलाती है, उसको किसी की नजर न लग जाये इसलिये काला टीका लगाती है, उसे चूमती है, खेलने के लिये उसे खिलौने देती है, पालने में सुलाती है, लोरी सुनाती है, गोद में बिठाती है, उससे बातें करती हैं। एक माँ यह सब काम निःस्वार्थ भाव से अपने बच्चे को सुख देने के लिये करती है। उसकी रक्षा का भार उठाती है क्योंकि वह बच्चा अपनी माँ के आश्रित है, उस पर निर्भर है, उसकी शरणागत है और बच्चा भी अपनी माँ की हर भावना को समझता है, देखता है, अनुभव करता है और उसकी छाती से चिपक जाता है। माँ की गोद में उसे कोई डर नहीं सताता। कोई दुःख नहीं होता और वह ममतामयी माँ को ही अपना सब कुछ समझता है। यह एक उदाहरण है।

जिस प्रकार जब बच्चा माँ के शरणागत हो जाता है, उस पर आश्रित होता है तो उसकी सारी जिम्मेदारी माँ उठाती है, ठीक उसी प्रकार यदि यह जीव हरिनाम का आश्रय लेकर भगवान् श्रीकृष्ण रूपी माँ की शरण में चला जाये, उसके हाथों में अपने जीवन की डोर सौंप देता है तो क्या भगवान् उसके सुख में, उसकी खुशी में कोई कमी आने देंगे ? जिस प्रकार माँ–बेटे का रिश्ता है उसी प्रकार भगवान् का अपने भक्त से रिश्ता है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को प्यार करती है, उसी प्रकार भगवान् उससे भी अधिक प्यार अपने प्रिय भक्त को करते हैं और सदा–सदा के लिये अपनी गोदी में बिठा लेते हैं। भगवान् अपने भक्त के समान और किसी को नहीं मानते। उन्हें अपना भक्त सबसे प्रिय होता है। वे हर पल, हर क्षण अपने भक्तों पर दृष्टि रखते हैं, उन पर कृपा बरसाते हैं! यही उनकी भक्तवत्सलता है! यही है उनकी अहैतुकी कृपा! जिस पर भगवद्–कृपा हो जाती है उस पर सभी कृपा करते हैं।

जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करें सब कोई।।

•••

विषयेर अन्न खाईल मलिन हय मन।
जाँहा मलिन हय मन ताँहा नाहिं कृष्णेर स्मरण।।

विषयी व्यक्ति का अन्न खाने से चित्त मलिन हो जाता है। चित्त मलिन होने से कृष्ण–स्मृति का अभाव हो जाता है तथा कृष्ण–स्मृति के अभाव में जीवन निष्फल हो जाता है। इसलिये सभी लोगों के लिये यह निषिद्ध है, विशेषतः धर्माचार्यों के लिये तो विशेष रूप से निषिद्ध है।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

आमुख

प्रस्तुति : श्रीहरिपद दास

गौर पूर्णिमा : 16 मार्च 2014

परम भागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास अधिकारी (श्री अनिरुद्ध प्रभुजी) ने अपने लेख के अन्तर्गत '**श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग**' बताया है जो अति गोपनीय था पर उन्होंने सब पर कृपा करके, उस परम गोपनीय रहस्य को उजागर कर दिया है। इसलिए वे आत्यन्तिकी प्रीति के भाजन हो रहे हैं। स्वयं भगवान् श्रीगौर–सुन्दर और उनके निजजन एवं श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्‌भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी भी उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव एवं अखिल भारतव्यापी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के वर्तमान अध्यक्ष एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजजी ने अहैतुकी कृपा करके 'श्रीगौर पार्षद' एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत नामक अपने ग्रंथ के रूप में शुद्ध भक्ति प्रार्थी साधकों को एक महान प्रेरणादायक एवं अनमोल उपहार दिया है। उस ग्रंथरत्न में से, मैं कुछ श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस लेख में इसलिये दे रहा हूँ क्योंकि इसका श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी के लेख से संबंध है। इन श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की कृपा के बिना श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होना दुर्लभ ही नहीं, असंभव है।

श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी का भजन है–

''शुद्ध भक्त चरण रेणु भजन–अनुकूल
भक्त–सेवा परमसिद्धि प्रेम लतिकार मूल।''

''शुद्ध–भक्तों की चरण रज (चरणधूलि) भजन के अनुकूल है। भक्तसेवा ही सर्वोच्चसिद्धि है एवं प्रेम भक्ति लता का मूल है।''

शुद्ध भक्त–साधु भगवान् का बड़ा प्रिय होता है इसलिये भगवद्–भक्त के जीवनामृत का रसास्वादन श्रीभगवान् की कृपा प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। भगवान् अपनी पूजा से अधिक अपने भक्त की पूजा से प्रसन्न होते हैं। अपने प्यारे भक्तों का गुणगान सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। भक्तों के गुणों का गुणगान करते हुए वे अपने आपको भूल जाते हैं। जिन पर भक्तवत्सल भगवान् के प्रिय भक्तों की कृपा हो जाती है, उनके हृदय में भगवान् अति शीघ्र अपनी लीला को प्रकाशित कर देते हैं। भक्तकृपा से ही भगवद्–कृपा प्राप्त होती है।

ग्रुप ए : श्रीगुरुदेव का ग्रुप

1. श्रीगुरुदेव

श्रीगुरुदेव साक्षात् हरि स्वरूप हैं। भक्ति–शास्त्रानुसार श्रीगुरुदेव श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त हैं। श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त होते हुए भी शास्त्रों ने श्री गुरुदेव को श्रीकृष्ण तुल्य ही कहा है। श्री कृष्ण में जैसी प्रीति करनी चाहिये, वैसी ही प्रीति श्रीगुरुदेव में करनी चाहिये, जैसे श्रीकृष्ण पूज्य हैं, श्रीगुरुदेव भी उसी प्रकार पूज्य हैं। इसलिये गुरु भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण–भक्ति करने से ही अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्ण मान लेते हैं और श्रीकृष्ण भक्ति छोड़कर केवल श्रीगुरु भक्ति में लगे रहते हैं, वे भटक जाते हैं। उनके निस्तार में शंका है। गुरु दो प्रकार के हैं– **दीक्षा गुरु** तथा **शिक्षा गुरु**। भगवान् का भजन करने के लिये जिनसे मूल मंत्र ग्रहण किया जाये, वे दीक्षा गुरु होते हैं और जो भजन संबंधी शिक्षा देते हैं, वे शिक्षा गुरु कहलाते हैं। शिक्षा गुरु

अनेक हो सकते हैं परन्तु दीक्षा गुरु एक होते हैं और अपरिवर्तनीय हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण की शक्ति ही श्रीगुरुदेव के चित्त में आविर्भूत होकर शिष्य पर कृपा करती है। इसीलिये श्रीगुरुदेव का वैशिष्ट्य है।

2. श्री नृसिंह देव

श्रीमद्भागवत पुराण के सातवें स्कन्ध में भगवान् श्रीनृसिंह देव के आविर्भाव का प्रसंग मिलता है। अपने प्रिय भक्त प्रहलाद जी की रक्षा करने के लिये, वे वैशाख की शुक्ला चतुर्दशी को आविर्भूत हुए थे। श्रीनृसिंह देवजी का स्वरूप दो प्रकार का है। अभक्तों के लिये उनका उग्ररूप है और भक्तों के लिये वे वात्सल्य-युक्त हैं, स्नेहपूर्ण हैं। श्रीनृसिंहदेव जी की भक्ति, प्रतिकूल भावों का नाश करके, भक्ति को समृद्ध करती है। अनर्थयुक्त साधकों को भक्ति विघ्न विनाशन श्रीनृसिंह देव की कृपा की आवश्यकता है इसलिये सभी भक्तों की भगवान् नृसिंह देव से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही, रात को सोते समय और सुविधानुसार दिन में दो बार किसी भी समय इस प्रार्थना को चार-बार करना चाहिये।

1. इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो, यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहों, नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।
2. नमस्ते नरसिंहाय प्रहलाद-आह्लाद दायिने
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटंक नखालये।
3. वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदय संवित तं नृसिंहमहं भजे।।
4. श्री नृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह
प्रह्लादेश जय पद्म मुख पद्म भृंग।।

3. श्रीगौरहरि

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीगौरहरि हैं और वे ही कलियुग में श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से अवतीर्ण हुए हैं। कलियुग का युगधर्म हरिनाम है। उस हरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण पीले वस्त्र धारण करके, श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुए। उनका शरीर परमोज्जवल सोने के समान सुंदर एवं आकर्षक है। उनकी कण्ठ ध्वनि अति मधुर है। उनका मुखचन्द्र भी अति सुंदर एवं ज्योतिर्मय है। कमल के समान बड़े–बड़े एवं सुंदर उनके नेत्र हैं और उनकी भुजायें घुटने पर्यन्त लंबी हैं, नासिका भी बहुत सुंदर है। अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा उठाकर जब वे 'हरि' 'हरि' उच्चारण करते हैं और अपने प्रेम पूर्ण नेत्रों से जिसे देखते हैं उसी क्षण उस जीव के जन्म–जन्मान्तरों के समस्त कर्मों का नाश हो जाता है और उस जीव को कृष्ण–प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
गदाधर प्राणधन संकीर्तन बिहारी।।
जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी।।
जय शचीनन्दन गौर गुणाकर।
प्रेम परसमणि भाव रस सागर।।

श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात महाप्रभु ही श्रीगौरहरि हैं वही गौरांग है, नीमवृक्ष के नीचे जन्म होने से उनका एक नाम निमाई भी है। अपनी अहैतुकी कृपा से, अपनी सेवा के अत्यन्त उत्कृष्ट रस को हरिनाम के रूप में प्रदान करने के लिये वे अवतीर्ण हुये। जो साक्षात् कृष्ण होते हुए भी श्रीमती राधारानी के भाव तथा स्वरूप में प्रकट हुए हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

पौर्णमास्यां फाल्गुनस्य फल्गुनी ऋक्षयोगतः।
भविष्ये गौररूपेण शचीगर्भे पुरन्दरात॥

स्वर्ण दीतीरमास्थाया नवद्वीपे जनाश्रये।
तत्र द्विजकुलं प्राप्तो भविष्यामि जनालये॥
भक्तियोग प्रदानाय लोकस्यानुग्रहाय च।
संन्यासरूपमास्थाय कृष्ण चैतन्यनामधृक॥

(वायु पुराण)

भगवान् स्वयं कहते हैं– हे देवताओ! उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग से युक्त फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन, द्विजेन्द्र पण्डित श्रीजगन्नाथ (मिश्र पुरन्दर) द्वारा, श्रीशचीमाता के गर्भ से, गौरांग रूप से अवतीर्ण होऊँगा।

गंगा तट का आश्रय लेकर, विराजमान भक्तजनों का जो प्रधान स्थान नवद्वीप है, वहाँ पर मैं, उत्तम ब्राह्मण कुल का आश्रय लेकर, भक्तों के स्थान में आविर्भूत होऊँगा। उस समय श्रीहरिनाम संकीर्तन यज्ञ द्वारा भक्तियोग को प्रदान करने के लिए जनमात्र को अनुग्रहीत करने के लिये, संन्यास वेष धारण कर, श्रीकृष्णचैतन्य नाम से विख्यात होऊँगा।

4. भगवान् श्रीकृष्ण

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

(श्रीब्रह्मा द्वारा रचित ब्रह्मसंहिता 5.1)

श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं तथा वे स्वयं भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। वे स्वयं अनादि हैं किन्तु सबके आदि हैं। वे गोविन्द हैं तथा सब कारणों के कारण हैं। वे ब्रजराज श्रीनन्द महाराज के पुत्र हैं। उनमें समस्त ऐश्वर्य हैं, समस्त शक्तियाँ हैं तथा वे समस्त रसों से पूर्ण रसस्वरूप हैं। वे श्रृंगार रस की मूर्ति हैं इसलिये दूसरों की तो बात ही क्या, वे तो अपने चित्त को भी हरण करने वाले हैं।

श्रीकृष्ण चन्द्र का ऐसा अद्भुत सौंदर्य–माधुर्य है कि वे अपने आपको आलिंगन करना चाहते हैं। श्रीकृष्ण की चरण–सेवा ही जीव

की एकमात्र अभीष्ट वस्तु है और वह प्राप्त होती है हरिनाम करने से। हरिनाम करने में जो सुख है, वह अतुलनीय है, सर्वोपरि है, सर्वश्रेष्ठ है।

किसी समय असंख्य ब्रह्मा द्वारिकापुरी में द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए उपस्थित हुए। उनमें किसी के दस, किसी के बीस, किसी के सहस्र, किसी के लक्ष और किसी के करोड़ों मुख थे। उनकी संख्या की गणना करना असम्भव था। उसी समय दस, बीस एवं करोड़ों मुख वाले रुद्र भी उपस्थित हुए। इतने में ही उसी प्रकार के मुख वाले करोड़ों इन्द्र भी उपस्थित हुए। वे सभी ब्रह्मा, रुद्र एवं इन्द्र कृष्ण के सम्मुख दण्डवत् करने लगे। उस समय उनके रत्ननिर्मित मुकुटों की ध्वनि से सारा आकाश मण्डल झंकृत हो गया। मानों वे मुकुट भी श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे हों। ब्रह्मा और रुद्र आदि हाथों को जोड़कर द्वारिकाधीश का स्तव करने लगे। वे स्तव-स्तुति करने के पश्चात् बोले-प्रभो! आपने कृपाकर हमें दर्शन दिया। हमारा परम सौभाग्य है कि आपने हमें यहाँ बुलाया और अपने दास के रूप में अंगीकार किया। आपकी क्या आज्ञा है ? हम उस आदेश को शीश पर धारण कर उसका पालन करेंगे।

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला 21/66-74)

5. श्रीराधा

भगवान् श्रीकृष्ण की अनंत शक्तियाँ हैं, श्रीराधा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं। श्रीराधा के महाभाव को अंगीकार करके ही श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से प्रकट हुए हैं। श्रीराधा जी की भावमयी भक्ति में जीव का अधिकार नहीं है। जीव तटस्था शक्ति है, उसका श्रीराधाभाव की आनुगत्यमयी सेवा में ही अधिकार है। उस आनुगत्यमयी सेवा में जो सुख है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। श्रीराधा दयामयी हैं, कृपामयी एवं करुणामयी हैं।

श्रीराधाजी की कृपा प्राप्त करने के लिये जरूरी है कि उनके श्रीचरणकमलों में बैठकर उन्हें कृष्णनाम सुनाया जाये। हरे कृष्ण महामंत्र में 'हरे' का अर्थ है– 'श्रीराधा'। जब हम हरे कृष्ण महामंत्र का जप या कीर्तन करते हैं तो सबसे पहले हरे (श्रीराधा) का नाम लेते हैं। 'हरे' शब्द को सुनकर श्रीकृष्ण गद्‌गद्‌ हो जाते हैं और 'कृष्ण' नाम सुनकर श्रीराधा कृपा करती हैं। अतः उच्चस्वर में हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन करने से श्रीराधाकृष्ण दोनों की कृपा प्राप्त होती है। जय जय श्रीराधे!

6. भगवान् जगन्नाथ, श्रीबलदेव एवं सुभद्राजी

भगवान् जगन्नाथ श्रीकृष्ण ही हैं एवं श्रीबलदेव जी उनके बड़े भाई हैं। सुभद्राजी इनकी बहन हैं। ये तीनों श्रीजगन्नाथ पुरी में, महासमुद्र के किनारे, सुवर्ण के समान सुंदर, नीलाचल के शिखर में अपने मंदिर में विराजमान हैं। भगवान् जगन्नाथ करुणा के सागर हैं। उनका मुख निर्मल कमल के समान है, उनके नेत्र दिव्य हैं।

रथयात्रा के अवसर पर भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीबलदेव एवं सुभद्रा जी, जब ये तीनों विशाल रथों में बैठकर निकलते हैं तो समस्त देवी–देवता उनका स्तुति गान करते हैं। ब्राह्मण–समुदाय के द्वारा पद–पद पर उनकी स्तुति का गान होता है। भगवान् शेष जी के सिर पर अपने चरणों को स्थापित करने वाले भगवान् जगन्नाथ जी का चारु चरित्र शिवजी गाते रहते हैं। श्रीलक्ष्मीजी, शिव–ब्रह्मा, इन्द्र एवं गणेश आदि देवी–देवता उनके श्रीचरण कमलों की पूजा करते हैं। भगवान् जगन्नाथ, श्री बलदेव एवं सुभद्रा जी की कृपा से व्यक्ति सब पापों से रहित होकर, विशुद्ध चित्तवाला होकर आनन्दपूर्वक श्रीहरिनाम कर सकता है।

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।
भगवान् श्रीजगन्नाथ! मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायें।

7. श्री गौर हरि का विलाप

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।।

कहां कृष्ण प्राणनाथ मुरली वदन ?
कहां जाऊँ कहां पाऊँ ब्रजेन्द्र नन्दन ?
काहरे कहिब कथा केबा जाने मोर दुःख।
ब्रजेन्द्र नन्दन बिना फाटे मोर बुक।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु ने हरे कृष्ण महामंत्र द्वारा नाम संकीर्तन करने का उपदेश दिया है। इसी महामंत्र का रात–दिन कीर्तन करते हुए श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण–विरह सागर में निमग्न रहते थे। श्रीकृष्ण के विरह में ऐसी अद्भुत शक्ति है जो श्रीकृष्ण को भी रुलाती है, भक्त को भी रुलाती है। विरह में भक्त और भगवान् दोनों आंसू बहाते हैं।

8. नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर

ऋचीकस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना ब्रह्मा महातपाः।
प्रह्लादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन्।।

ऋचीक मुनि के पुत्र जिनका नाम महातपा ब्रह्मा था, वही प्रह्लाद के साथ जन्म ग्रहणकर अभी हरिदास रूप से आये हैं। एक दिन मुनि कुमार तुलसी पत्र लेने गया। उसने तुलसी पत्र तोड़े और बिना धोये ही अपने पिता को दे दिये जिससे पिता ने उसे यवनकुल

में जन्म लेने का शाप दिया था। वही मुनिपुत्र परमभक्त हरिदास के रूप में प्रकट हुये थे।

श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से उनके आविर्भाव से पहले ही आविर्भूत हो चुके थे। नवद्वीप माहात्म्य में लिखा है कि द्वापर युग में ब्रह्माजी ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के बछड़ों और ग्वालों का हरण करके उनकी परीक्षा लेनी चाही थी। इन सभी गाय, बछड़ों तथा ग्वाल-बालों को ब्रह्माजी ने एक वर्ष तक सुमेरु पर्वत की गुफा में छुपा कर रखा था। बाद में जब उन्हें अपनी भूल का पता चला तो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में क्षमा याचना की और भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपा करके ब्रह्माजी को अपना स्वरूप दिखाया था। वही नंदनंदन श्रीकृष्ण श्रीगौरांग रूप में अवतीर्ण हुए थे।

नवद्वीप धाम के अन्तर्गत, अन्तर्द्वीप में बैठ, ब्रह्माजी इस बात की चिन्ता कर रहे थे कि जो भूल उन्होंने श्रीकृष्ण के समय की थी, वही गौरावतार में दुबारा न हो जाये। ब्रह्माजी के मन की व्यथा भगवान् श्रीकृष्ण जान गये और उन्होंने गौरांगरूप में ब्रह्माजी को दर्शन दिया और कहा-''गौरांग अवतार के समय तुम यवन कुल में आविर्भूत होकर हरिदास ठाकुर के रूप में नाम-माहात्म्य का प्रचार करके, जीवों का कल्याण करोगे।''

इसी प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ही हरिदास ठाकुर के रूप में अवतीर्ण हुये और नाम-महिमा का प्रचार किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित ''हरिनाम- चिंतामणि'' नामक ग्रंथ में इसका वर्णन है।

श्रील हरिदास ठाकुरजी का चरित्र अद्भुत है। जो प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम लेते हैं, जिनके गुण अनंत है, श्रीअद्वैताचार्यजी ने जिनको श्राद्ध का भोजन कराया था, जिनके गुण समूह प्रह्लाद के समान हैं, यवनों द्वारा पीटने पर जिनका बाल भी बांका नहीं हुआ, उन हरिदासजी की महिमा कहने की सामर्थ्य किसमें है ?

श्रील हरिदास ठाकुर निर्जन स्थानों में कुटिया में रहा करते थे। प्रतिदिन तुलसी सेवा और तीन लाख हरिनाम करते। ब्राह्मणों के घरों पर जाकर भिक्षा करते थे। उनकी कृपा से एक वेश्या (लक्षहीरा) प्रसिद्ध वैष्णवी–परम महान्ती हो गई। बड़े–बड़े वैष्णव भी उनके दर्शन करने आते थे।

श्रीहरिदास ठाकुरजी के दर्शन से ही अनादिकाल के कर्म–बंधन छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। उनका संग ब्रह्माजी–शिवजी को भी वांछनीय है और गंगा मैया भी उनके स्पर्श की कामना करती है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्वयं अपने मुख से श्रीहरिदासजी की महिमा का कीर्तन किया है। महाप्रभुजी नित्यप्रति उनको मिलने आते थे। उनके शरीर त्यागने पर महाप्रभु जी ने उनकी देह को अपनी गोद में उठाकर, महानन्द के साथ नृत्य किया था।

श्री महाप्रभु जी के अवतार का प्रयोजन है– श्रीहरिनाम–प्रचार। उन्होंने श्री हरिनाम–प्रचार का अपना काम श्रीहरिदास जी के द्वारा करवाया। श्रीहरिदास ठाकुर जी ने श्रीहरिनाम का आचरण एवं प्रचार दोनों कार्य किये। अतः वे सबके गुरु हैं तथा समस्त जगत् के पूज्य हैं।

मैं, नामनिष्ठ श्रीहरिदास ठाकुर जी को प्रणाम करता हूँ एवं उनके प्रभु श्रीचैतन्य देव को नमस्कार करता हूँ।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की जय।

9. श्रीषड् गोस्वामी

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ।।
एइ छय गोसाञिर करि चरण–वंदन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट पूरण।।
एइ छय गोसाञि जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण–नित्यलीला करिला प्रकाश।।

श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी इन छः गोस्वामियों की जय हो। मैं इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करता हूँ। इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करने से सभी विघ्नों का नाश हो जाता है तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। इन छः गोस्वामियों ने ब्रज में वास किया और श्रीश्रीराधा-कृष्णजी की नित्यलीलाओं को प्रकाशित किया।

वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।

मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ तथा उनका संक्षिप्त परिचय देकर उनके चरण कमलों में कृपा-प्रार्थना करता हूँ।

9.1. श्री रूप गोस्वामी

श्रीधाम वृन्दावन के षड्-गोस्वामियों में और गौरलीला में, श्रीरूपगोस्वामी जी प्रधान हैं। श्रीमती राधारानी की अनुगता मंजरियों में प्रधान हैं- श्रीरूप मंजरी। पूर्वकाल में, वृन्दावन की लीला में श्रीरूप मंजरी के नाम से जो प्रसिद्ध थीं, गौर लीला में वही रूप गोस्वामी के रूप में प्रकट हुये थे।

रामकेलि ग्राम में श्रीकेलि कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के नीचे श्रीरूप और श्रीसनातन के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी का पहला मिलन हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से रूप-सनातन के हृदय में तीव्र वैराग्य पैदा हो गया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी जी के माध्यम से वृन्दावन की रसक्रीड़ा के संबंध में और ब्रज-प्रेम प्राप्ति के साधन विषय की शिक्षा प्रदान की है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' नामक ग्रंथ लिखने के लिये श्रीमन्महाप्रभुजी का प्रत्यक्ष निर्देश उन्हें प्रयाग में प्राप्त हुआ था। उनके 'ललितमाधव' और 'विदग्ध माधव' के प्रचार अंक के मंगलाचरण में लिखे दो

श्लोकों को सुनकर श्रीराय रामानंद जी ने अपने हजार मुखों से उनकी प्रशंसा की थी।

एत शुनि राय कहे प्रभुर चरणे।
रुपेर कवित्व प्रशंसि सहस्रवदने।।

श्रीनरोत्तम ठाकुर जी कहते हैं–

श्री रूप मंजरी पद, सेई मोर संपद,
सेई मोर भजन-पूजन।
सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर आमरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन।।

''श्रीरूप मंजरी के चरण ही मेरी सम्पत्ति हैं, वे ही मेरा भजन-पूजन हैं। वे ही मेरे प्राण धन हैं, वे ही मेरे आमरण हैं। वे ही मेरे जीवन के जीवन हैं।''

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीरूपगोस्वामी जी के चरण कमलों की धूलि को अपना सर्वस्व माना है। वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर के पीछे श्रीरूप गोस्वामीजी का मूल समाधि मंदिर और भजन कुटीर है।

9.2. श्री सनातन गोस्वामी

जो श्रीकृष्णलीला में, रूप मंजरी की प्रिय रतिमंजरी अथवा लवंग मंजरी थीं, गौर लीला में वही श्रीगौरांग महाप्रभुजी के अभिन्न तनु श्री सनातन गोस्वामी जी के रूप में अवतरित हुये थे। छोटी उम्र में ही उनका श्रीमद्भागवत शास्त्र में अनुराग था। उनके श्रीगुरुदेव का नाम था– श्रीविद्या वाचस्पति जी।

श्रीसनातन गोस्वामी जी भक्तिसिद्धान्त के आचार्य तथा संबंध ज्ञान के दाता हैं। उन्होंने जगत्वासियों को जो शिक्षा दी, उसका परमयत्न के साथ चिंतन व पालन करना चाहिए। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीसनातन के प्रति खुश होकर, उनमें शक्ति का संचार किया था। शुद्ध-भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना तथा वैष्णव सदाचार के

लिये उन्होंने चार ग्रंथों की रचना की। उन्होंने ब्रजमंडल में लुप्त हो चुके तीर्थों का उद्धार किया और वृन्दावन में श्रीराधामदनमोहन जी के श्रीविग्रह की सेवा का प्रकाश किया। गोकुल महावन में उन्होंने दूसरे गोप बालकों के साथ मदनगोपालजी को क्रीड़ा करते हुये देखा था।

श्रीसनातन गोस्वामी जब गोवर्धन में थे तो अयाचित भाव से प्रतिदिन गिरिराज जी की परिक्रमा करते थे। एक दिन गोपीनाथ जी ने गोपबालक के रूप में उनको दर्शन दिया और श्रीकृष्ण के चरणों से चिह्नित एक शिला देकर कहा–'अब आप वृद्ध हो गये हो। क्यों इतना परिश्रम करते हो ? लो! यह गोवर्धन शिला ले लो, इसकी परिक्रमा करने से ही आपकी गिरिराज जी की परिक्रमा हो जाया करेगी।' इतना कहकर वह गोप बालक अन्तर्धान हो गया। गोप बालक को न देखकर सनातन गोस्वामी जी रोने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी जी द्वारा सेवित वही गोवर्धन शिला आजकल वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर में विराजमान है और भक्तलोग उस शिला का दर्शन करते हैं।

श्रीसनातन गोस्वामी जी की नामभजन साधना से प्रसन्न होकर भगवान् एकदम छोटे से गिरिराज जी का रूप लेकर उनके जप माला की झोली के अन्दर प्रकट हुए।

श्रीसनातन गोस्वामी जी ने नन्दग्राम के पावन सरोवर के तट पर स्थित कुटिया में रहकर भजन किया था वहाँ भी एक गोपबालक के रूप में उन्हें श्रीकृष्ण ने दूध दिया था। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा श्रीसनातन को खीर का भोजन करवाने की इच्छा करने पर, श्रीमती राधारानी ने एक गोपबालिका के वेष में खीर की सामग्री घी, दूध, चावल व चीनी आदि लाकर दी थी।

पुराने श्रीराधा मदनमोहन मंदिर के पीछे स्थित श्रीसनातन गोस्वामी जी का समाधि मंदिर दर्शनीय है।

9.3. श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी

''रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमंजरी।
कृत श्रीराधिका-कुण्डकुटीर वसतिः स तु।।''

(गौर गणोद्देश दीपिका)

''श्रीकृष्णलीला में जो रागमंजरी हैं, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की लीला की पुष्टि के लिये वे ही श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के रूप में प्रकटित हुई हैं।''

श्रीमन् महाप्रभु जी जिस समय बंगाल देश में गये थे, उसी समय रघुनाथ भट्ट गोस्वामीजी के पिता श्री तपन मिश्रजी के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था।

श्रीरघुनाथभट्टजी लगभग 28 वर्ष तक घर में रहे। फिर समस्त सांसारिक कार्य परित्याग करके श्रीमन्महाप्रभु से मिलने नीलाचल धाम में चले गये थे। नीलाचल पहुँचकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुजी के दर्शन किये। आठ महीने तक वे नीलाचल में रहे। आठ महीने के बाद महाप्रभु जी ने उन्हें काशी जाकर वृद्ध वैष्णव माता-पिता की सेवा करने का आदेश दिया और विवाह कराने से मना कर दिया। महाप्रभु जी ने प्रेमाविष्ट होकर उनका आलिंगन किया और अपने गले की माला उनके गले में डालकर, फिर नीलाचल आने को कहा।

जब तक रघुनाथ भट्ट जी के माता-पिता प्रकट थे तब तक उन्होंने उनकी खूब सेवा की। उसके बाद वे पुनः नीलाचल में आकर श्रीमन् महाप्रभुजी के पास रहने लगे। वे रसोई बनाने में अत्यन्त निपुण थे। श्रीमन् महाप्रभु जी अपने भक्त द्वारा प्रेम से दिये, अमृत के समान पकाये व्यंजनादि का भोजन करके परम

तृप्ति का अनुभव करते थे। तब रघुनाथ भट्टजी को भी महाप्रभु जी का उच्छिष्ट प्रसाद पाने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

आठ महीने पुरी में वास करने के बाद महाप्रभु जी ने उन्हें वृन्दावन में जाकर श्रीरूप गोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जी के आश्रय में रहकर नित्य भागवत पाठ और कृष्णनाम करने को कहा। श्रीमन् महाप्रभु जी का प्रेमालिंगन प्राप्त करके और उनके हाथों से भगवान् जगन्नाथ जी की चौदह हाथ लम्बी तुलसी माला एवं प्रसादी पान बीड़ा पाकर श्रीरघुनाथ भट्ट जी प्रेमोन्मत्त होकर बेसुध हो गये।

श्रीरघुनाथ भट्ट जी का अपूर्व कण्ठस्वर था जब वे सुमधुर कण्ठ से एक–एक श्लोक का पाठ करते तो भक्तगण उनके प्रति परम आकृष्ट हो उठते थे। श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रंथ में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी की गुण महिमा का वर्णन हुआ है।

9.4. श्री जीव गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो विलास मंजरी हैं, वे ही गौरलीला की उपशाखा रूप से श्रीजीव गोस्वामी रूप में आविर्भूत हुई हैं। श्रीमन् महाप्रभुजी की इच्छा से जीव गोस्वामी जी के हृदय में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया था। नाना रत्नों से जड़ित सुखमय सुंदर वस्त्र, आरामदायक बिस्तर, नाना प्रकार की भोजन सामग्री इत्यादि इन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और राज्य आदि की चर्चा तो ये बिल्कुल भी नहीं सुनते थे।

जब श्रीजीव गोस्वामीजी ने स्वप्न में संकीर्तन के मध्य नृत्य अवस्था में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के दर्शन किये तो वे प्रेम में व्याकुल हो उठे। जब इन्होंने भक्त वात्सल्य में व्याकुल, भक्तों के प्राणप्रिय, श्रीनित्यानंद प्रभु के दर्शन किये तो नित्यानंद जी ने अपने पावन चरण कमलों को इनके माथे पर रखा। श्रीमन्नित्यानन्द

प्रभु ने उन्हें उठाया और दृढ़ प्रेमालिंगन प्रदान करके अतिशय कृपा की और उन्हें शीघ्र ही व्रज में जाने को कहा।

श्रीमन् नित्यानंद प्रभु की कृपा से इन्होंने नवद्वीप धाम का दर्शन किया। फिर वे काशी चले गये। उसके बाद वृन्दावन जाकर श्रीरूप-सनातन गोस्वामी जी का चरणाश्रय ग्रहण किया। भक्ति रत्नाकर ग्रंथ में जीव गोस्वामी जी के पच्चीस ग्रंथों का उल्लेख हुआ है। श्रीश्रीराधादामोदरजी के विग्रह जिनकी श्रीजीव गोस्वामी सेवा करते थे, आज भी वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मंदिर में विराजमान हैं। मंदिर के पीछे श्रीजीव गोस्वामी जी का समाधि मन्दिर है। श्रीराधाकुण्ड के किनारे तथा श्रीललिताकुण्ड के पास इनकी भजन कुटी आज भी हैं।

9.5. श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी

श्रीकृष्ण लीला में जो अनंग मंजरी हैं, गौर लीला में वे ही श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के रूप में अवतरित हुईं। श्रीकृष्ण लीला के पार्षद होने के कारण, श्रीगोपाल भट्टजी को यह ज्ञान हो गया था कि नंदनंदन श्रीकृष्ण ही शचीनंदन गौरहरि के रूप में अवतरित हुए हैं। जब वे छोटी आयु के थे तभी उन्हें महाप्रभु जी के चरण कमलों की साक्षात् सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की कृपा से उनका सारा परिवार श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा में लग गया था।

श्रीगोपाल भट्ट जी ने अपने चाचा त्रिदण्डि यति श्रीमान् प्रबोधा-नन्द सरस्वती पाद से दीक्षा ग्रहण की थी।

श्रीरूप गोस्वामीजी ने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी को अपने प्राणों के समान प्रिय मानकर, उन्हें श्री राधारमणजी की सेवा में नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी छः गोस्वामियों में अन्यतम हुए। वे अपने आप को बहुत दीन मानते थे। श्रीनिवासा-

चार्य जी इनके शिष्य थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगोपालभट्ट जी का स्नेह देखकर ही उनको अपनी डोर कौपीन तथा काली लकड़ी का आसन भेजा था। आज भी वृन्दावन के श्रीराधारमण मंदिर में उस डोर, कौपीन और आसन की पूजा होती है तथा विशेष अवसरों पर उनके दर्शन भी कराये जाते हैं। श्रीराधारमण मंदिर के पीछे उनका समाधि मंदिर है।

9.6. श्री रघुनाथ दास गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो रसमंजरी हैं, श्रीगौर लीला में वे ही श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के रूप में प्रकट हुई हैं। श्रीरघुनाथ दासजी ने बचपन में ही हरिदास ठाकुर के दर्शन किये थे और श्रीहरिदास जी ने भी उन पर कृपा की थी। उसी कृपा के प्रभाव से उनको श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की प्राप्ति हुई थी। जिस समय महाप्रभु जी संन्यास लेकर शान्तिपुर में आये थे, उस समय श्रीरघुनाथ दासजी को उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करने का पहला अवसर मिला था। महाप्रभु जी के दर्शन करके, उनके चरणों में लेटकर श्रीरघुनाथजी भावविभोर हो गये थे और जब महाप्रभुजी शान्तिपुर से नीलाचल चले गये तो महाप्रभु के विरह में प्रेमोन्मत्त होकर रघुनाथ दासजी जोर–जोर से रोने लगे थे। पुत्र को व्याकुल देखकर, पिता ने चिन्तित होकर, रघुनाथ जी को महाप्रभु के पास भेज दिया। महाप्रभु का दर्शन करके मानो रघुनाथ जी को दुबारा प्राण मिल गये और उन्होंने महाप्रभु जी से अपने दुःखों की बात कही और संसार से मुक्ति कैसे होगी ? यह जिज्ञासा की। महाप्रभु ने उन्हें समझाते हुये वापस घर चले जाने को कहा। श्रीमन्महाप्रभुजी के उपदेशों के अनुसार रघुनाथदासजी घर वापस आ गये और युक्त वैराग्य का सहारा लेकर अंदर से वैराग्य और बाहर से विषयी की भांति रहने लगे।

उनके पिता ने कुछ समय बाद रघुनाथ दास को संसार में बाँधने के लिये उनका विवाह कर दिया। एक साल बीतने पर

श्रीरघुनाथदासजी फिर महाप्रभु जी से मिलने के लिये घर से भाग गये।

श्रील रघुनाथदासजी का वैराग्य मानो पत्थर पर लकीर हो। उनके साढ़े सात प्रहर (साढ़े बाइस घंटे) कृष्ण-कीर्तन व स्मरण में बीतते थे। आहार और निद्रा आदि के लिये केवल चारदण्ड (डेढ़ घण्टा) का समय ही रखते थे। वे केवल प्राणरक्षा के लिये ही भोजन करते थे और परिधान में केवल एक फटी गुदड़ी ही रखते थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'स्तवावली' के 'चैतन्यकल्पवृक्ष स्तव' में श्रीमन्महाप्रभु जी की करुणा का सजीव वर्णन किया है।

श्रीस्वरूप दामोदर जी के आनुगत्य में रहकर, श्रीरघुनाथ दासजी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की अन्तरंग सेवा की थी। श्रीमन्महाप्रभुजी और स्वरूप दामोदर जी के इहलीला संवरण करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी एवं श्रीराधाकृष्ण के विरह में, उन्होंने अन्न और जल त्याग दिया था। वे केवल मात्र थोड़ी सी छाछ पीते थे। वे हजार दण्डवत्, एक लाख हरिनाम, रात-दिन राधाकृष्ण की अष्टकालीन सेवा, महाप्रभुजी का चरित्र-कथन तथा तीनों संन्ध्याओं में राधाकुण्ड में स्नान आदि करके साढ़े सात प्रहर बिताते थे। राधाकुण्ड पर राधारानी का नित्य सानिध्य प्राप्त करके भी, वे थोड़े समय का विरह भी सहन नहीं कर पाते थे। राधाकुण्ड पर ही श्रीदास गोस्वामी जी ने अन्तर्धान लीला की। वहीं पर उनका समाधि मंदिर है।

●

जिनकी प्रेरणा से, मेरे हृदय में वृन्दावन के इन छः गोस्वामियों का गुणगान करने की शक्ति मुझे प्राप्त हुई, उन श्रीचैतन्य देव श्रीगौरहरि के चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ।

संख्यापूर्वक नामगाननतिभिः कालावसानी कृतौ।
निद्राहार-विहारकादि-विजितौ चात्यन्त-दीनौ च यौ।।
राधाकृष्ण गुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ।
वन्दे रूप सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ।।

''जो अपने समय को संख्यापूर्वक नाम–जप, नाम संकीर्तन एवं संख्यापूर्वक प्रणाम आदि के द्वारा व्यतीत करते थे, जिन्होंने निद्रा–आहार–विहार आदि पर विजय प्राप्त कर ली थी एवं जो अपने को अत्यन्त दीन मानते थे तथा श्रीश्रीराधाकृष्ण जी के गुणों की स्मृति से प्राप्त माधुर्यमय आनन्द के द्वारा विमुग्ध रहते थे। मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ। मैं उनकी कृपा प्राप्त करने की कामना करता हूँ।

षड् गोस्वामिपाद जी की जय!!

10.1. श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद

श्रील माधवेन्द्रपुरी पाद जी श्री, ब्रह्म, रुद्र व सनक – इन चारों भुवन–पावन–वैष्णव सम्प्रदायों में से ब्रह्म–सम्प्रदाय के अन्तर्गत गुरु हैं। इन्हीं के अनुशिष्य श्रीचैतन्य देव जी हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादजी का प्रेममय कलेवर था और उनके संगी साथी भी प्रेम में मत्त रहते थे।

कृष्ण रसास्वादन के बिना उनका दूसरा कुछ भी आहार नहीं था। जिनके शिष्य स्वयं अद्वैताचार्य प्रभुजी हों, उनके प्रेम की बड़ाई कौन कर सकता है!

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद भक्तिरस के आदि सूत्रधार हैं– ये बात श्री गौरचन्द्र जी ने बार–बार कही है।

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति रसमय।
यार नाम स्मरणे सकल सिद्धि हय।।

(भक्तिरत्नाकर)

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति के रस स्वरूप हैं जिनके स्मरण मात्र से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। माधवेन्द्रपुरी जी नित्यानंद जी को अपना बंधु समझते थे और नित्यानंद जी माधवेन्द्र जी के प्रति गुरुबुद्धि रखते थे। जब नित्यानंद जी ने माधवेन्द्रपुरी जी को देखा था उसी क्षण वे प्रेम में मूर्छित हो गये थे और माधवेन्द्रजी भी

नित्यानंद जी को देखकर अपने आपको भूलकर मूर्छित होकर भूमि पर गिर गये थे। माधवेन्द्रपुरीजी ने नित्यानंद को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। वे उन्हें कुछ कहना चाहते थे पर प्रेम के कारण गला रुँध गया था। इन दोनों के परस्पर मिलने पर जिस प्रेम का प्रकाश हुआ, वह वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब बालेश्वर रेमुणा में पधारे तो वहाँ खीरचोरा गोपीनाथजी के दर्शन करके प्रेमोन्माद में डूब गये थे। अपने श्रीगुरुदेव, श्रीईश्वरपुरीपादजी से उन्होंने श्रील माधवेन्द्रपुरी पादजी के बारे में सुना था कि श्रीगोपीनाथ जी ने कैसे उनके लिये खीर चोरी की थी।

एक दिन गिरिराज गोवर्धन की परिक्रमा करके व श्रीगोविंदकुण्ड में स्नान करके, माधवेन्द्रपुरी जी एक वृक्ष के नीचे बैठकर सन्ध्या कर रहे थे कि तभी एक बालक दूध का बर्तन लेकर उनके पास आया और मुस्कराते हुये बोला–''तुम क्या चिंता कर रहे हो ? मांग कर क्यों नहीं खाते ? लो, मैं यह दूध लाया हूँ, पी लो।''

बालक का अद्भुत सौंदर्य देखकर माधवेन्द्रपुरीजी हैरान रह गये और बालक से पूछने लगे–

''तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ? मैं भूखा हूँ, ये तुम्हें कैसे पता चला ?''

''मैं गोप हूँ। इसी गाँव में रहता हूँ। मेरे गाँव में कोई भी भूखा नहीं रहता। कोई माँग कर खा लेता है। जो माँगकर नहीं खाता उसे 'मैं' देता हूँ। अब मेरा गो–दोहन का समय हो गया है और मुझे जल्दी जाना होगा। मैं बाद में आकर दूध का बर्तन ले जाऊँगा–'' इतना कहकर बालक चला गया।

उसी रात माधवेन्द्रपुरी जी ने एक स्वप्न देखा कि वही बालक उनका हाथ पकड़कर एक कुँज में ले गया और कहने लगा– ''मैं इस कुँज में रहता हूँ। मैं यहाँ सर्दी, गर्मी व वर्षा में बहुत दुःख पा रहा हूँ। गाँव के लोगों से मिलकर, पर्वत के ऊपर एक मठ स्थापन

करके मुझे वहाँ स्थापित करो और बहुत सारा जल लाकर मेरे अंगों का मार्जन करवाओ। मैं तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा एवं सभी को दर्शन देकर संसार का उद्धार करूँगा। मेरा नाम है **'गोवर्धनधारी गोपाल'**। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र व अनिरुद्ध के पुत्र ने मुझे यहाँ स्थापित किया था। मलेच्छों के डर से, मेरे सेवक, मुझे इस कुंज में रखकर भाग गये थे, तभी से मैं यहाँ हूँ। आप आये हैं, बहुत अच्छा हुआ आप मेरा उद्धार करो।''

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी का स्वप्न भंग हुआ और उस बालक की आज्ञा पालन करने के लिये उन्होंने गाँव के लोगों को इकठ्ठा किया और स्वप्न की बात बताई। गाँव के लोगों ने परमोल्लास के साथ घास, मिट्टी हटाई तो देखा–महाभारी ठाकुरजी का विग्रह! श्रीमूर्ति प्रकट हुई। महाभिषेक हुआ। बहुत दिनों से भूखे गोपाल जी ने सारी भोग सामग्री ग्रहण की। गाँवों के गाँव गोपालजी के दर्शन करने आते। एक मंदिर भी बन गया, दस हजार गौएँ भी हो गईं। एक दिन गोपालजी ने माधवेन्द्रपुरी जी को स्वप्न में कहा कि उनके अंगों की गर्मी अभी नहीं गयी है इसलिये मलयज चन्दन लाओ और मेरे ऊपर उसका लेप करो। गोपाल जी की आज्ञा पाकर वे चन्दन लेने के लिये पूर्व देश की ओर चल दिये। रास्ते में रेमुणा में गोपीनाथ जी का अपूर्व दर्शन करके वे प्रेम–विह्वल हो उठे। ठीक उसी समय 'अमृतकेलि' खीर का भोग ठाकुर जी को निवेदन किया गया। आरती करके वे मंदिर से बाहर चले गये और एकांत में बैठकर हरिनाम करने लगे। उनके मन में विचार आया कि यदि थोड़ा खीर प्रसाद मिल जाता तो मैं भी उसका रसास्वादन करता। ठाकुर गोपीनाथ उनके मन की इच्छा जान गये।

जब पुजारी मंदिर बंद करके सो गया तो ठाकुरजी ने स्वप्न में उससे कहा कि मैंने माधवेन्द्रपुरी संन्यासी के लिये एक पात्र खीर रखी हुई है जोकि मेरे आंचल के कपड़े से ढकी हुई है। शीघ्र वह खीर ले जाकर उसे दे दो।

पुजारी ने श्रील माधवेन्द्रपुरी जी को खीर दी, दण्डवत् प्रणाम किया और अपना स्वप्न सुनाया। माधवेन्द्रपुरी जी ने खीर प्रसाद का सम्मान किया और रात्रि समाप्त होते ही प्रतिष्ठा के भय से नीलाचल की ओर प्रस्थान किया। नीलाचल में पहुँचकर जगन्नाथ जी के दर्शन करके वे प्रेमाविष्ट हो उठे। चन्दन लेकर दुबारा रेमुणा में आकर रुके। उसी रात फिर गोपालजी ने स्वप्न में आदेश दिया।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी जगद्गुरु थे। वे अपने शिष्य श्रीईश्वर-पुरी जी की सेवा से बहुत प्रसन्न थे और ईश्वरपुरीपादजी को कृष्ण प्रेम दान कर निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुये वे अन्तर्धान हो गये।

अयि दीनदयार्द्रनाथ!
हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।।
हृदयं त्वदलोककातरं।
दयितं भ्राम्यति किं करोम्यहम्।। (पद्यावली)

''अहो दीनदयार्द्र नाथ! अहो मथुरानाथ! मैं कब आपका दर्शन करुँगा। आपके दर्शन के बिना मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है। हे दयित, मैं अब क्या करूँ?

इस श्लोक को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु जी प्रेमोन्मत्त हो गये थे तथा नित्यानंद जी ने उन्हें गोद में बिठा लिया था।

ऐसी थी श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादजी की अलौकिक प्रेम-पराकाष्ठा।

पतित पावन, परमाराध्य श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के श्रीपादपद्मों में अनंतकोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

10.2. श्री ईश्वरपुरी पाद

श्रीईश्वरपुरीपाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद के शिष्य थे। श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद भक्ति रस के आदि सूत्रधार हैं, ऐसा श्रीगौरचन्द्रजी ने बार-बार

कहा है। यद्यपि श्रीगौरचन्द्र (श्रीचैतन्य महाप्रभु) स्वयं भगवान् हैं, फिर भी सद्‌गुरु चरणाश्रय की शिक्षा देने के लिये उन्होंने श्री ईश्वरपुरीपाद जी से दीक्षा ग्रहण करने की लीला की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी का श्रीकृष्ण–प्रेम प्रकाशित हुआ। श्रीईश्वरपुरीपाद ने जब नवद्वीप में शुभ पदार्पण किया था तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने हाथों से रसोई बनाकर व अपने हाथों से परिवेषण करके, गुरु–सेवा का सर्वोत्तम आदर्श स्थापन किया था।

एकबार श्रीईश्वरपुरीपादजी ने स्वरचित 'श्रीकृष्ण लीलामृत' ग्रंथ की भूल–चूक देखने के लिये निमाई (श्रीगौरहरि) को कहा तो गौरहरि ने कहा–''एक तो भक्त वाक्य फिर उसमें भी श्रीकृष्ण का वर्णन इसमें जो दोष देखेगा, वह पापी ही होगा। इसमें अर्थात् भक्त के लेख में जो दोष देखता है वह दोष स्वयं देखने वाले में होता है। भक्त के वर्णन मात्र से ही कृष्ण का संतोष होता है। इसलिये आपका जो ये प्रेम–वर्णन है इसमें दोष देखने का साहस कौन कर सकता है ?''

श्रीईश्वरपुरीपाद जी ने अपने मन, वाणी तथा शरीर द्वारा अपने श्रीलगुरुदेवजी की सेवा करके एवं हर समय कृष्ण नाम व कृष्ण लीलाऐं सुना–सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया था।

श्रीईश्वरपुरीपादजी ने अप्रकट होने से पहले अपने दो शिष्यों– काशीश्वर तथा गोविन्द को श्रीमन्महाप्रभुजी की सेवा के लिये निर्देश किया। ''श्रीगुरुजी की आज्ञा अवश्य पालनीय है'' इस विचार से श्रीमन्महाप्रभु जी ने उन दोनों को सेवक रूप में ग्रहण किया था।

श्री ईश्वरपुरीपादजी मुझ अधम पर कृपा करें ताकि मेरी हरिनाम में रुचि नित्य–निरंतर बढ़ती रहे। उनके श्रीचरणकमलों में शत–शत प्रणाम।

ग्रुप बी : श्रीनारद जी का ग्रुप

11. देवर्षि नारद जी

देवर्षि नारद जी ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं और भक्त शिरोमणि हैं। वे सभी गोपनीय रहस्यों को जानने वाले हैं। वे वीणा बजाते हुये और 'नारायण' 'नारायण' नाम का मधुर स्वर में कीर्तन करते हुये तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं। देवर्षि नारद इसलिये भी धन्य हैं क्योंकि वे शार्ङ्गपाणि भगवान् की कीर्ति का गान करके स्वयं तो आनन्दमग्न रहते हैं और इस जगत् के प्राणियों को भी आनन्दित करते रहते हैं। देवर्षि नारद जी का दर्शन सभी पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है। **जब किसी मनुष्य का भाग्य उदय होता है, तभी उसे नारदजी के दर्शन होते हैं।** हरिनाम में हमारी रुचि बढ़े और हमारा हरिनाम तैलधारावत् चलता रहे, इसलिये देवर्षि नारद से प्रार्थना करनी चाहिये।

''देवर्षे! मैं अति दीन हूँ और आप स्वभाव से ही दयालु हैं। इसलिये मुझपर अवश्य कृपा कीजिए। हे करुणानिधान! मैं संसार सागर में डूबा हुआ और बहुत अधम हूँ। आप इस संसार सागर से मेरा उद्धार कीजिए। मैं आपकी शरण लेता हूँ।''

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि।।

'देवर्षे! आपका केवल एकबार का उपदेश धारण करके कयाधूकुमार प्रहलाद ने माया पर विजय प्राप्त कर ली थी। ध्रुव ने भी आपकी कृपा से ही ध्रुवपद प्राप्त किया था। आप सर्वमंगलमय और साक्षात् ब्रह्मा जी के पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

12. श्री सनकादिक जी

भगवान् ने कौमार सर्ग में सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ये चारों भाई बड़े योगी, बुद्धिमान और विद्वान् हैं। देखने में तो पाँच–पाँच वर्ष के बालक से जान पड़ते हैं किन्तु हैं पूर्वजों के भी पूर्वज। ये सदा वैकुण्ठ धाम में निवास करते हैं। ये निरंतर हरि कीर्तन में तत्पर रहते हैं। एकमात्र भगवान् का नाम ही इनके जीवन का आधार है। 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) – यह वाक्य सदा उनके मुख में रहता है।

13. श्री ब्रह्मा जी

ब्रह्मा जी को 'स्वयंभू' भी कहते हैं। तीनों लोकों के परमगुरु आदिदेव ब्रह्मा जी का जन्म भगवान् की नाभि से हुआ है। गर्भोदशायी के नाभिकमल से उत्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्माजी व्यष्टि जीवों की सृष्टि करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं उन्होंने अपने तत्त्व का ज्ञान सबसे पहले, सृष्टि के प्रथम जीव, चतुर्मुख ब्रह्माजी को ही दिया था।

14. श्री शिव जी

शिवजी परम वैष्णव हैं। उन्हें कैलासपति भी कहते हैं। वे हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गंभीर हैं। उनके सिर पर सुंदर गंगा जी विराजमान हैं। उनके ललाट पर द्वितीय का चन्द्रमा और गले में सांप रहते हैं। उनके कानों में विशाल कुण्डल हैं, उनके नेत्र विशाल हैं। वे प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं। वे सिंह चर्म का वस्त्र धारण करते हैं और मुण्डमाल पहने रहते हैं। वे रुद्ररूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखंड, अजन्मा, कल्याणस्वरूप और हाथ में त्रिशूल धारण किये रहते हैं। वे निराकार, ओंकार के मूल, महाकाल के भी काल, गुणों के धाम तथा कामदेव के शत्रु हैं। शिवजी की

कृपा के बिना भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति नहीं हो सकती। भोलेनाथ सबके गुरु और माता-पिता हैं।

''हे शम्भो! मैं न योग जानता हूँ, न पूजा जानता हूँ। मैं तो सदा-सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! मुझे हरिनाम करने की शक्ति प्रदान कीजिये। हे ईश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।''

श्री शिवजी से यही प्रार्थना करनी चाहिये।

15. श्रीनित्यानन्द प्रभु

जय जय नित्यानंद चरणारविंद।
जाहां हैते पाइलाम श्रीराधागोविन्द।।

''श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की जय हो। जय हो। जिनकी कृपा से मुझे श्रीराधागोविन्द देव के दर्शन प्राप्त हुए।''

श्रीनित्यानंद प्रभु कृपा के अवतार हैं, वे कृपा की प्रकट मूर्ति हैं। श्रीमन्नित्यानंद प्रभुजी 'ईश्वर का प्रकाश' हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानंद में कोई भेद नहीं है। वे एक ही हैं। केवल देह से वे भिन्न-भिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के अवतार हैं। वे स्वयं भगवान् हैं और उन्हीं का दूसरा विग्रह हैं श्रीबलराम। श्रीबलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण के सहायक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप से नवद्वीप में अवतरित हुए तो बलरामजी नित्यानंद रूप में अवतीर्ण हुए। श्री बलराम संकर्षण के अंशी हैं अथवा मूल हैं। ब्रजलीला में जैसे श्रीबलराम श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं उसी तरह नवद्वीप लीला में नित्यानंद जी भी कभी गुरु, कभी सखा, कभी दास भाव से लीला करते हैं।

त्रेतायुग में श्रीकृष्ण ही श्रीराम रूप में लीला करते हैं और बलराम जी उनके साथ श्रीलक्ष्मण रूप से सहायता करते हैं। श्रीराम जी श्रीकृष्ण का अंश हैं और श्रीलक्ष्मण जी बलराम जी का

अंश है। वही श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप में अवतीर्ण हुए तो श्री बलरामजी नित्यानंद रूप से अवतीर्ण हुये।

श्री नित्यानंद जी की महिमा का सिंधु अनंत एवं असीम है। उनके गुणों की महिमा का वर्णन अपार है। शेष भगवान् भी उसका वर्णन करके पार नहीं पा सके।

आईये श्रीनित्यानंद प्रभु के श्रीचरण कमलों में कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम करके, उनसे अपने अपराधों की क्षमा मांगें और प्रार्थना करें कि हरिनाम में हमारी रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती रहे।

जय जय नित्यानंद नित्यानंद राम।
जय जय नित्यानंद जय कृपामय।।

16. श्री अद्वैताचार्य

श्री अद्वैताचार्य प्रभु महाविष्णु तथा सदाशिव के सम्मिलित अवतार हैं। हरि से अभिन्न तत्त्व होने के कारण ही उनका नाम 'अद्वैत' है तथा भक्ति-शिक्षक होने के कारण उन्हें 'आचार्य' कहा जाता है। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी की अलौकिक प्रेम-चेष्टाएं देखकर ही, श्री अद्वैताचार्य जी ने उनसे शिक्षा ग्रहण की थी। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले ही अद्वैताचार्य जी ने जान लिया था कि कलियुग की प्रथम संध्या में तथा भविष्य में अनाचारों की प्रबलता होगी। सारा संसार श्रीकृष्ण भक्ति शून्य होगा। ऐसी स्थिति में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने से ही जगत् का कल्याण होगा। इसलिये श्रीअद्वैताचार्य जी गंगाजल व तुलसी मंजरी के द्वारा श्रीकृष्ण के पादपद्मों की पूजा करते हुए, उन्हें अवतीर्ण करवाने के लिये हुंकार भरने लगे। श्री अद्वैताचार्यजी की प्रेम-हुंकार से गोलोकपति श्रीहरि की अवतीर्ण होने की इच्छा हुई और वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुये।

श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखा है कि महाप्रभु जी कहते हैं- ''श्री अद्वैताचार्य जी के कारण ही मेरा अवतार हुआ है। आज भी

मेरे कानों में उनकी हुंकार गूंज रही है। मैं तो बड़े आराम से क्षीर सागर में सो रहा था, इन्हीं अद्वैताचार्य की हुंकार ने मुझे जगा दिया।''

श्री अद्वैताचार्य श्री चैतन्य महाप्रभुजी से अभिन्न शरीर हैं। उनकी कृपा के बिना श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानंद प्रभुजी की सेवा प्राप्त नहीं हो सकती।

महाविष्णुर्जगत्कर्ता मायया यः सृजत्यदः।
तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरः।।

मैं भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य ईश्वर का आश्रय ग्रहण करता हूँ। जो महाविष्णु, माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि करते हैं, उन जगत्कर्ता के ही अवतार हैं– ईश्वर अद्वैताचार्य जी।

एकबार महाप्रभुजी का महाऐश्वर्य दर्शन करके श्रीअद्वैताचार्य स्तम्भित हो गये थे और उन्होंने निम्न मंत्र द्वारा उन्हें प्रणाम किया था–

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो–ब्राह्मण हिताय च।
जगद्–हिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः।।

श्री अद्वैताचार्य जी के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि प्रणाम है। हमारी हरिनाम में रुचि निरंतर बढ़ती रहे, यही कृपा–प्रार्थना है।

17. श्री गदाधर पण्डित

श्रीकृष्ण लीला में जो श्रीमती राधिका हैं, श्रीगौरलीला में वे ही गदाधर पण्डित गोस्वामी हैं। गौर नारायण जी की शक्ति हैं लक्ष्मी प्रिया तथा विष्णुप्रिया और गौर कृष्ण की शक्ति हैं– श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभुजी के अन्तरंग भक्तों में से सर्वप्रधान भक्त हैं। श्रीराधागोविन्द जी का मधुररस से भजन करने वाले शुद्ध भक्त, श्रीगदाधरजी का आश्रय ग्रहण करते हैं और इनका आश्रय लेने पर ही उनकी गिनती श्रीगौरांग महाप्रभुजी

के अन्तरंग भक्तों में होती है। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के अन्तरंग पार्षदों के अतिरिक्त, श्रीगदाधरजी की अद्भुत गौरांग प्रीति को समझने की सामर्थ्य और किसी में नहीं है।

श्री मन्महाप्रभु जी के अन्तर्धान होने के बाद श्रीगदाधर पण्डित मात्र ग्यारह महीने प्रकट रहे। श्रीगौरांग महाप्रभुजी के विरह में श्रीगदाधर पण्डित जी की जो दारुण अवस्था हुई थी, उसका वर्णन 'भक्ति-रत्नाकर' ग्रंथ में हुआ है।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी आप मुझ दीन पर कृपा करें कि तैलधारावत् मेरा हरिनाम चलता रहे। आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

18. श्रीवास पण्डित

श्रीवास पण्डितो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः।।

श्रीनारद मुनि ही गौरलीला में श्रीवास पण्डित के रूप में अवतरित हुए थे। चैतन्य चरितामृत में लिखा है-

शचीर मंदिरे, आर नित्यानंद नर्तने।
श्रीवास कीर्तने, आर राघव भवने।।
एइ चारि ठाञि प्रभुर सदा आविर्भाव।
प्रेमाकृष्ट-हय, प्रभुर सहज स्वभाव।।

''शचीमाता के भवन में, श्रीनित्यानंदप्रभु के नृत्य में, श्रीवास पण्डित के कीर्तन में तथा श्री राघवजी के भवन में- इन चार स्थानों पर श्रीमहाप्रभु नित्य निवास करते हैं।''

श्रीमन्महाप्रभुजी ने एक साल तक सारी-सारी रात श्रीवास आंगन में संकीर्तन किया था। उस समय श्रीमन्महाप्रभु जी केवल अपने पार्षदों को लेकर ही संकीर्तन विलास करते थे। एकदिन महाप्रभु जी ने, श्रीवास आंगन में 'महाप्रकाश लीला' प्रकट की थी और सात प्रहर तक चलने वाली इस लीला में, उन्होंने विष्णु के अवतारों के सभी रूपों को प्रकाशित किया था। श्रीवास आंगन में

संकीर्तन करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु अपने गणों के साथ गंगा–स्नान के लिये जाया करते थे।

एकदिन श्रीवास आंगन में रात को संकीर्तन के समय, उनका इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र वियोग में घर की स्त्रियाँ रोने लगीं। श्रीवासजी तुरंत घर के अंदर गये और सबको चुप करा दिया। कीर्तन चलता रहा। कुछ देर बाद महाप्रभुजी ने पूछा–

पण्डित के घर में कोई दुःख हुआ है क्या ? महाप्रभुजी की बात सुनकर श्रीवासजी ने कहा–

प्रभु मोर कौन दुःख?
यार घरे सप्रसन्ने तोमार श्रीमुख

''हे प्रभो! जिस घर में आपका सुप्रसन्न श्रीमुख हो, वहाँ भला क्या दुःख हो सकता है ?''

जब भक्तों ने बताया कि श्रीवासजी का इकलौता पुत्र आधी रात में गुजर गया था पर आपके कीर्तन में बाधा न हो, इसलिये श्रीवासजी ने आपको बताने से मना कर दिया था तो महाप्रभु रोने लगे और मृत–शिशु के पास आकर बोले– अहो बालक! तुमने श्रीवास जैसे भक्त के घर को क्यों त्याग दिया ?

इस पर मृत–शिशु बोला– ''प्रभो! मैं आपका नित्य दास हूँ। आपकी इच्छा के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। जितने दिन मुझे इस घर में ठहरना था, उतने दिन मैं यहाँ रहा। अब आपकी इच्छा से मैं यहाँ से जा रहा हूँ। आप मुझ पर कृपा कीजिये कि मुझे कभी भी, किसी भी अवस्था में आपके चरण–कमलों की विस्मृति न हो''– मृत–शिशु के मुख से ये बातें सुनकर, श्रीवास और उनके परिवारजनों का शोक दूर हो गया और उनको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्रीवास जी की नित्यानंदजी में दृढ़–निष्ठा देखकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने इन्हें वर प्रदान किया था कि उनके घर में कभी भी लक्ष्मी का

अभाव नहीं होगा और उस घर के कुत्ते-बिल्ली तक की भी श्रीभगवान् में अचला भक्ति होगी।''

वस्तुतः श्रीगौरांग महाप्रभु! श्रीनित्यानंद प्रभु! श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर तथा श्रीवास – इन पंच तत्त्वों में कोई भेद नहीं हैं परन्तु रसास्वादन के लिये, वह विचित्र लीलामय एक ही तत्व पांच भागों में बंटा हुआ है। श्रीगौरांग महाप्रभुजी, श्रीनित्यानंद प्रभु जी तथा श्रीअद्वैताचार्यजी यह तीनों ही विष्णु तत्त्व हैं और भक्तरूप, भक्त स्वरूप एवं भक्तावतार के रूप में प्रकट हुये हैं जबकि श्रीगदाधरजी भक्तशक्ति और श्रीवास जी शुद्ध भक्त हैं।

पंचतत्त्वात्मकं कृष्ण भक्तरूप स्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त शक्तिकम्।।

मैं, पंचतत्त्वात्मक श्रीकृष्ण को अर्थात् श्रीकृष्ण के भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्त और भक्तशक्ति को प्रणाम करता हूँ।

19. श्रीषड् गोस्वामिपाद

इनका वर्णन पूर्व में पृष्ठ 314 पर दृष्टव्य है।

20. श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद एवं श्रीईश्वरपुरीपाद

इनका वर्णन पूर्व में पृष्ठ 323 पर पठनीय है।

उपरोक्त क्रम के अनुसार श्रीगुरुदेव का ग्रुप ए और श्रीनारदजी का ग्रुप बी के नामनिष्ठों को 4-4 माला मानसिक रूप से उनके चरणों में बैठकर सुनानी हैं। जिससे कुल माला संख्या 80 हो जायेगी।

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये !!

प्रकाशन–अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन–केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर–घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ–सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

अभी कुछ समय से ये ग्रन्थ अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा। अतः ग्रन्थों के पूरी तरह निःशुल्क वितरण के साथ–साथ स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 9068231415

email-harinampress@gmail.com